श्रीपादरघुनाथदास
गोस्वामि-
विरचित





श्रीमुक्ता चरित्र

॥ सङ्गणकसंस्करणं दासाभासेन हरिपार्षददासेन कृतम् ॥

❀ श्रीश्रीकृष्णचैतन्य नित्यानन्दौ जयतः ❀

श्रीपाद रघुनाथदास गोस्वामि विरचित

श्रीमुक्ताचरित्र

(मूल एवं हिन्दी अनुवाद)

डॉ० श्रीकृष्णविहारी शास्त्री-कृत
हिन्दी अनुवाद सहित

सम्पादक

श्रीश्यामदास

श्रीहरिनाम संकीर्तन मण्डल, श्रीधाम वृन्दावन

प्रथम संस्करण : अगस्त ९५ : १००० प्रतियां
मुद्रण : श्रीहरिनाम प्रेस, वृन्दावन— २८११२१

Rs. 25

॥ सङ्गणकसंस्करणं दासाभासेन हरिपार्षददासेन कृतम्

❀ श्रीहरिः ❀

दो-शब्द !

श्रीश्रीश्यामा-श्याम के ललित-ललाम चिन्मय-धाम श्रीवृन्दावन में अनन्त अचिन्त्य लीला-रस-राशि सागर की उफनती-उछलतो उत्तंग तरङ्गों का क्या आर-पार ? रस का प्राण चमत्कार ही लीलारसज्ञ भक्तों के चिन्मयता-प्राप्त हृदय-पटल पर न जाने कैसी अद्‌भुत लीलाओं का चित्रण कर देता है ? आज तक किसी ने मोतियों की खेती होती देखी है क्या ? सुनी भी है ऐसी अनोखी बात किसी ने ? उन मोतियों का व्यापार, खुला बाजार ! कैसा चमत्कार ! लीलारस के ऐसे अपार प्रवाह में जो रसका पारखी उतरा, खो ही गया, उन्मत्त होकर "हा राधे ! हा प्राणेश्वरि !" पुकारता–रोता ही निकला ।

श्रीपाद रूप गोस्वामी ने अपनी महा विप्रलम्भ-रस प्रधान रचना 'श्रीललितमाधव नाटक" श्रीपाद दासगोस्वामी रघुनाथ को पाठ करने को दी । उस विप्रलम्भ-रस प्रवाह में उतरते ही वे विरह-व्याकुल, परम अधीर हो उठे । ग्रन्थरत्न को वक्षस्थल पर रखे, प्रेमाश्रुओं की अजस्र-धारा द्वारा पंकिल पृथ्वी पर पड़े रहे । श्रीराधाकुण्डतट–विहारिणी श्रीस्वामिनी का नित्य सान्निध्य प्राप्त करते हुए भी वे विरह आवेश में मूर्च्छित । उनकी इस अवस्था को देख श्रीपाद रूप ने संशोधन के बहाने श्रीललितमाधव नाटक को लौटा लिया और नित्यसंयोग रस प्रधान अपनी रचना "श्रीदानकेलि कौमुदी" दे दी । उसे पाठ कर जैसे-तैसे श्रीदास गोस्वामी का मनोनिवेश रसान्तर–प्रवाह में परिवर्तित हुआ ।

इसी अवस्था में उनके हृदय में एक अनिर्वचनीय स्फूर्ति शुभ्रोज्ज्वल मुक्ताओं की कान्ति से अलंकृत होकर उजागर हो उठी । उस स्वयं-प्रकाश अतुलनीय संयोगरस माधुर्य-परिपूरित स्फूर्ति की श्रीमूर्ति है यह "**श्रीमुक्ताचरित्र**" । रसास्वादक-शिरोमणि स्वयं श्रीमाधव तथा निखिलरसाधीश्वरी श्रीराधा रानी जब सपरिकर इस लीलारस के आस्वादन में चमत्कृत हो उठते हैं तब उनके चरणारविन्द-अनुकम्पित रसिक पाठकजन कैसे चमत्कार-पारावार में निमज्जित होंगे—इसका अनुमान वे स्वयं ही करेंगे ।

बहुत दिन पहले की बात है—पूजनीय डा० श्रीकृष्णविहारी जी ने अतीव परिश्रम कर 'श्रीमुक्ता-चरित्र' का मूल बंगला ग्रन्थ से अनुवाद किया । इसको संशोधित कर मण्डल को प्रकाशित कराने की प्रेरणा की । किन्तु यह कार्य शीघ्र सम्पन्न न हो सका । हिन्दी-अनुवाद छपने के पश्चात् ही श्रीजी की कृपा से संस्कृत मूल उपलब्ध हुआ । इसलिये मूल पाठ भीअन्त में प्रकाशित कर दिया गया है ।

अत्यन्त उन्नतोज्ज्वल रस-प्रधान रचना होने से केवल प्रबुद्ध रसिकजन की आस्वाद्य वस्तु है यह । अतः इसके प्रकाशन का साहस मण्डल को नहीं हो रहा था । यही विलम्ब का विशेष कारण रहा । किन्तु "**समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वलरसां स्वभक्तिश्रियम्**" व्रतधारी श्रीनदिया-विहारी के कृपाग्रह से यह अतुलनीय रसमय खण्डकाव्य रसिकों के आस्वादन के लिये प्रस्तुत है ।

इसके दिव्य-रसास्वादन की एक किरण भी यदि किसी महानुभाव के हृदय में विशुद्ध प्रेम-भक्ति को प्रकाशित करती है, तो अनुवादक, सम्पादक तथा प्रकाशक भी अपना महान सौभाग्य जानेंगे ।

श्रीवृन्दावन धाम
श्रीपादरूप तिरोभाव तिथि
दि० ८ अगस्त १९९५

वैष्णवचरणरजाभिलाषी
श्रीश्यामदास

❀ श्रीगौरांगविधुर्जयति ❀

" श्रीश्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः "

श्रीपाद रघुनाथदास–गोस्वामि विरचित

श्रीश्रीमुक्ताचरित्र

मंगलाचरण

जो कोटि कामदेवों से भी सुन्दर, विकसित नीलकमल सदृश कान्ति वाले हैं और जिनकी लीलाएं स्थावर जंगमात्मक सम्पूर्ण विश्व को विमोहित करने वाली हैं, उन ब्रजराज-तनय श्रीकृष्णचन्द्र को मैं प्रणाम करता हूँ ।।१।। मुक्ताओं के क्रय 'विक्रयात्मक व्यापार रूप क्रीड़ा समुद्र में जिनका चित्त निमग्न हो रहा है और जो मुक्ता विषयक वादानुवाद में परस्पर विजय की होड़ लगा रहे हैं, उन श्रीराधामाधव की जोड़ी की मैं वन्दना करता हूँ ।।२।।

जो भूमण्डल पर सभी जीवों के कल्याण के हेतु अपनी उज्ज्वल भक्ति सुधा उड़ेलने को शची-गर्भ रूप आकाश में उदित हुए हैं, उन पूर्णचन्द्र श्रीगौरांग महाप्रभु का मैं भजन करता हूँ ।।३।। अहो ! जिनकी सुविख्यात कृपा से मुझे सम्पूर्ण नामों में श्रेष्ठ श्रीहरिनाम महामन्त्र, श्रीशचीनन्दन महाप्रभु, स्वरूप, रूप, सनातन एवं विशाल मथुरापुरी की गोष्ठवाटी (ब्रजमण्डल), श्रीराधाकुण्ड गिरिवर गोवर्धन, और श्रीराधामाधव के चरण सेवन आदि विविध आशाओं की उपलब्धि हुई है, उन श्रीगुरुदेव को मैं प्रणाम करता हूँ ।।४।।

श्रीवृन्दावन समुद्र में समुत्पन्न श्रीहरिचरितामृत-लहरी रस के रसज्ञ देवगण किंवा वृन्दावन-रस के रसिक प्रेमीजन के परमानन्द वर्द्धन के लिए सम्यक् विस्तार करता हूँ । उनको नम्रता पूर्वक सत्कार करता हूँ ।।५।। श्रीकृष्णचन्द्र ने एक लता उत्पन्न की जिससे फल रूप में मुक्ता उत्पन्न हुए, ऐसी एक चर्चा श्रीसत्यभामा से संक्षेप में सुन रखी थी । आज उसे विस्तार से सुनने की इच्छा से उन्होंने श्रीकृष्ण चन्द्र से पूछा ।।६।।

"हे नाथ ! मेरे कंकण में लगे मुक्ताफल (मोती) जिन लताओं से उत्पन्न हुए हैं, वे मधुर लताएं किस धन्य प्रदेश में उत्पन्न होती हैं ? ।।७।। सत्यभामा का यह प्रश्न सुन श्रीकृष्णचन्द्र का हृदय ब्रज-सम्बन्धी इस चरित्र की स्मृति से भीतर से दुखी हो गया तथापि उद्वेलित हो गया । तथापि उसको आन्तरिक तथा बाहरी मुस्कान से छिपाते हुए बोले" ।।८।।

" प्रिये अब वह समय कहाँ जब लताओं से मुक्ताफल उत्पन्न होते थे । अब तो सभी मुक्ता सीपियों में होते हैं ।" श्रीसत्यभामा की उत्कण्ठा और भी तीव्र हो गयी । वह बार-बार उस चरित्र

को सुनाने के लिये श्रीकृष्ण से अनुरोध करने लगीं। तब श्रीकृष्ण कहने लगे—एक बार कार्तिक मास में गोवर्धन पर्वत पर दीपमाला (दिवाली) का उत्सव था। ग्वाल-बाल उत्सव के लिये अनेक प्रकार की सामग्रियों के निर्माण में लगे थे। गोपगण अपने को अलंकारादि से सुसज्जित कर गौओं को अलंकृत करने में लगे थे। गोपियाँ अपने अपने घरों को मार्जित और सुसज्जितकर नाना प्रकार के संस्कार एवं अलंकारों से अपने को विभूषित कर रही थीं। श्रीराधा भी मालहरण नामक सरोवर के तट के समीप स्थित माधवी चतु:शाला में अपनी सखी मण्डली के साथ उत्तम से उत्तम मोतियों से नानाप्रकार के आभूषणों का निर्माण कर रही थीं।

उसी समय स्वनाम-धन्य विचक्षण शुकशावक ने आकर मुझसे सारा वृत्तान्त कहा। तब कौतुक पूर्वक मैं उनके पास गया और 'हंसी' तथा 'हरिणी' नामक अपनी अति प्रिय गौओं की जोड़ी को सजाने के लिये उत्सुक हो उनसे मुक्ताओं की प्रार्थना करने लगा। उन्होंने अपने अर्धनिमीलित नीलोत्पल के समान क्षाम नेत्र से चतुराई के साथ अवहेलना पूर्वक किंचित मेरी ओर देखा और फिर मौन रहकर आवेश पूर्ण भाव से बहुमूल्य रत्नों के लाक्षाभरित हार गूँथने में लग गईं। तब मैंने मुस्कराते हुए कहा—हे सखियो तुम्हें अभिनव यौवन रूप, अमूल्य चिन्तामणि प्राप्त हुआ है। जिससे तुम्हारे अभिमान का पर्वत बढ़ गया है और तुम्हारे कानों पर पर्दा पड़ गया है। सखियों तनिक ध्यान दो। तुम्हारा प्यारा तुम्हारे सामने खड़ा तुमसे कुछ प्रार्थना कर रहा है।

वे मुसकराती हुई एक दूसरे को देखने लगीं। प्रगल्भा ललिता कुछ मुसकराते हुए और कुछ तेवरी चढ़ाते हुए बोली क्यों नहीं। नागर! ये बहुमूल्य मुक्ता राजमहिषियों के योग्य ही तो हैं। फिर तुम्हारी महिषियों (भैसों किंवा गौओं) के योग्य क्यों नहीं होंगे। तुम्हें मुक्ता अवश्य देंगे!

ललिता के इस व्यंग को सुन मैंने फिर विनय पूर्वक कहा—प्यारी सखियो! देखो मैं जानता हूँ, तुम्हें मुक्ता अत्यन्त प्रिय हैं। इसलिये मैं तुमसे सब मुक्ता नहीं माँग रहा। पर मेरी अति प्यारी दो गौओं के श्रृङ्गों का भली प्रकार श्रृङ्गार हो जाय, इतने तो दे दो ।।१३।। तब ललिता सब मोतियों को एकत्र कर एक पात्र में उन्हें हिलाते हुए बोली—देखो कृष्ण! तुम्हारी धेनुओं के योग्य इनमें एक भी मोती नहीं है ।।१४।।

मैंने कहा अच्छा ललिते समझ गया इसीलिये मुझे कृपण कहा करती थी न? आज से पीछे फिर मुझे कृपण न कहना। इतना कह मैं उनका तिरस्कार करते हुए शीघ्र मैया यशोदा के समीप गया। मैया से कहा-अरी मैया! मुझे कुछ मुक्ता दे दे; मैं उन्हें खेत में बोऊँगा। दे दे मैया।" मैया मुसकराते हुए बोली, बेटा मोती खेत में नहीं उगते "ना मैया। तू देखेगी तीन दिन में मोती उग आयेंगे।" मैंने आग्रह करते हुए कहा। मैया भला मेरे आग्रह को कैसे टालती। उसने बहुत से मुक्ता लाकर मुझे दिये। मैं उन्हें लेकर उस घाट पर गया जहाँ से सारे गोकुल को जल जाया करता था। वहाँ यमुना के किनारे जितने में तीन पुरुष हाथ फैलाकर लेट सकें उतनी लम्बी चौड़ी वर्गाकर भूमि को बीज बोने योग्य क्यारियों के रूप में तैयार किया। मेरे इस कार्य पर हँसती हुई कुछ गोपियों के देखते-२ उन मुक्ताओं को बो दिया। उन पर मिट्टी डालकर खेत के चारों ओर रक्षा के लिये काठ की मेंड़ बना दी ।।१५।।

पीछे गोपियों का उगे हुए मोतियों को मांगने का मुँह न पड़े इस उद्देश्य से सखाओंको खेती में सिंचाई करने के लिये उनसे दूध मांगने भेजा। सखाओं के दूध माँगने पर वे ठहाका मारकर हंस

पड़ीं। और बोली- तुम्हारा मोतियों का खेत सींचने को हम गौरस अवश्य देंगे। जिन अपनी प्यारी गौओं को सजाने के लिये मोतियों की खेती की है उन्हीं के दूध से क्यों नहीं सींचते? हमें नहीं है अभिलाषा तुम्हारी खेती में आने वाले फलों की। तब अपनी गौओं का बहुत सा दूध लाकर मैं उन्हें दिखाते हुए प्रतिदिन उस खेत को सींचने लगा ।।१६।।

चौथे दिन ही मोतियों में अंकुर फूट आये। यह देख मैं इतना उल्लसित हुआ कि मैया को अंचल पकड़ कर वहाँ ले आया। उन्हें देखकर माँ "न जाने किसका अंकुर है" ऐसा सोचते हुए घर लौट गयी ।।१७।। जब गोपियों ने अंकुर की बात सुनी तो परस्पर परिहास करते हुए कहने लगीं अरी हींस की लता के कांटेदार अंकुर जमे हैं ।।१८।।

फिर तो मुक्तालता के अंकुर मुर्वालता के समान अति शीघ्र बढ़ने लगे। तब मैंने समीपवर्ती कदम्ब वृक्षों के ऊपर उन लताओं को चढ़ा दिया। कुछ दिन के बाद उनमें पुष्प आने लगे, जिनकी सुगन्धि से उन्मत्त होकर भ्रमर गण वहाँ गुन्जारने लगे। गोपियों को इससे बड़ा चमत्कार हुआ। प्रिये! उन पुष्पों की सुगन्ध से सम्पूर्ण गोकुल महक उठा ।।१९।।

पुष्पों के आने के कुछ दिन पश्चात ही मुक्ता फल लगने लगे। ये (सीप, हाथी, केला, वृषभ, मेघ, मैंढक, कमल और जल से उत्पन्न) आठों प्रकार के मुक्ताओं से विलक्षण शोभा युक्त थे। उन्हें देखकर ब्रजवासियों को महान विस्मय हुआ। सबसे अधिक गोपियों को। यमुना जल, भरने के घाट के समीप तो यह बगीचा था ही, आते-जाते नित्य ही गोपियाँ इन मुक्ताओं को देखतीं थीं। क्रमशः उनके मन में मुक्ताओं के प्रति लोभ उत्पन्न हो आया। इसी उद्देश्य से उन्होंने परस्पर मन्त्रणा की—हे सखियो! हम भली प्रकार समझती हैं कि श्रीकृष्ण हमको ये मुक्ता कभी प्रदान नहीं करेगा। न दे वह। परन्तु उसके द्वारा की गई मुक्ता खेती की प्रक्रिया भी क्या हमने नहीं देखी? देखी है। निराश होने की क्या बात है? पूर्ण उत्साह के साथ उससे भी द्विगुणी भूमि में हम भी मुक्ता की क्यारी क्यों न लगाएं? ।।२०।।

उन गोपियों को यह मन्त्रणा सुनकर परम चतुर ललिता कहने लगी—अरी गोपियो। वात रोग से तुम्हारा मस्तक घूम गया है क्या? गोवर्धन पर्वत को उठा लेना तथा भूमि से मुक्ताओं को उत्पन्न करना आदि कर्म लोकोत्तर देवताओं के लिये भी दुष्कर हैं, जिन्हें श्रीकृष्ण ने अनायास ही किया है। निश्चित रूप से किसी महासिद्ध से इन्हें सिद्ध-औषधि किंवा सिद्धमन्त्र प्राप्त हुआ है। जिसके प्रभाव से असाध्य कार्य सहज में कर देते हैं। यही सभी ब्रजवासियों का मत है। नहीं तो हमारी व्रजराज गृहिणी के गर्भरूपी सरोवर से समुत्पन्न नीलकमल के सदृश कोमल तथा केवल मात्र गोपजाति के क्रियाकलापों के जानने वाले इस गोप बालक कृष्ण में इस प्रकार के अद्भुत कर्म करने की शक्ति क्या अपने आप हो सकती है? यह जानकर भी तुम सिद्ध औषधि किंवा मन्त्र के बिना ही इस कार्य में प्रवृत्त होने की अभिलाषा कर रही हो? इस निश्चय के परिणाम में तुम सब अगाध लज्जा तथा परिहास के समुद्र में पड़ जाओगी। सत्य समझ लो यह ।।२१।।

ललिता की बात सुनकर तुङ्गविद्या कहने लगी—हम भी श्रीभगवती पूर्णमासी के चरण कमलों की सिद्ध-मन्त्र शिष्या नान्दीमुखी से सिद्ध मन्त्र लेकर क्या वह कार्य नहीं कर सकतीं? सभी गोपियाँ तुंगविद्या के कथन को निर्णयात्मक रूप देकर नान्दीमुखी के पास पहुँची एवं उसके सामने अपनी अभिलाषा निवेदन की ।।२३।।

गोपियों के वचन सुनकर नान्दीमुखी ने मन-मन में विचार किया। अपने नेत्रों की सफलता के लिये अनेक दिन से मेरे चित्त में भी यही अभिलाषा लग रही थी कि क्रय-विक्रय-विषयक लीला कौतूहल मय कल्पवृक्ष के साक्षात् बीज रूप में यह अवसर मुझे अचानक बड़े सौभाग्य से आज प्राप्त हुआ है। इसलिये चतुर शिरोमणि इन गोपियों को इस प्रकार परम सुन्दर युक्ति के द्वार। इस कार्य में प्रवृत कराऊँगी जिससे वह लीला, कल्पवृक्ष शीघ्र ही अंकुरित होकर फलवान् बने। ऐसा सोचकर मन में परमानन्दित होती हुई नान्दीमुखी ने गोपियों से कहा—हे सखियो भूमि से जो मुक्ताओं की उत्पत्ति हुई है इसमें श्रीकृष्ण के मन्त्र का प्रभाव कुछ नहीं है – ऐसा सत्य समझो ।।२४।।

सब गोपियों ने कहा—मुक्ताओं की उत्पत्ति का कारण होती हैं केवल सीपी आदि। उस कारण के बिना असंभव स्थान मिट्टी में मुक्ताओं की उत्पत्ति कैसे हो सकती है ।।२५।।

नान्दीमुखी बोली—तुम जो आश्चर्य कर रही हो वह तो इस भूमि का ही ऐसा स्वाभाविक प्रभाव है। यह व्रजभूमि विविध रत्नों की जननी है, ऐसा श्रीभगवती पूर्णमासी अनेक बार कहती रहती हैं। उसी का साक्षात् अनुभव हो रहा है। क्योंकि इसी भूमि से मूँगा, नवपल्लव, पन्ना—पत्र, हीरा मोती-कलिका, पद्मरागादि नानाफल वाले स्वर्णमय वृक्ष यहाँ उत्पन्न हुए हैं तथा भविष्य में उत्पन्न होते देखे जायेंगे। यदि यहाँ की भूमि में बोये हुए मुक्ता अंकुरित हों तथा मुक्ता फल रूप में उत्पन्न हों तो आश्चर्य की क्या बात है? अतः फिर आप भी भूमि को परम सुगन्धित नवनीत से सींचकर मुक्ताओं की खेती प्रारम्भ कर दो, जिससे श्रीकृष्ण के मोतियों से भी परम उत्तम मुक्ताफल प्राप्त हों ।२६

इस प्रकार व्रजांगनागण नान्दीमुखी की वचन-माधुरी का पान करके प्रसन्नता पूर्वक उसकी प्रशंसा करने लगीं। विश्वासपूर्वक सभी ने नान्दीमुखी का आलिङ्गन किया। अपने-अपने स्थानों पर पहुँचकर स्पर्धा के साथ मुझे जीतने के लिये सेवकों को सामान्य वेतन से भी दुगना, तिगुना गोरस प्रदान करके उनसे स्थान-स्थान पर अनेक क्यारियों का निर्माण कराया। अपनी-अपनी पेटियों में जितने भी बिना गुथे तथा आभूषणों में गुथे हुए मुक्ता थे तथा जिन्हें उन्होंने अङ्गों पर धारण कर रखा था। उन सबको उतार कर एकत्रित किया। उन समस्त मुक्ताओं को क्यारियों में बो दिया। फिर तीनों संध्या कालों में प्रतिदिन गो दुग्ध नवनीत तथा सुगन्धित घृत से उनको सींचना प्रारम्भ कर दिया ।।२७।।

जब इन श्रीराधा आदि गोपाङ्गनाओं द्वारा, मुक्ता कृषि का वृत्तान्त प्रतिद्वन्द्विनी चन्द्रावली आदि के कानों में पहुँचा, तब उन सबने भी लोभवश एवं मात्सर्य से उनसे भी अधिक खेत स्थान-स्थान पर तैयार करवाये। घरों में तथा शरीरों पर जितने भी मुक्ता थे उन सबको इकट्ठा कर क्यारियों में बो दिया ।।२८।। (कुछ दिनों के पश्चात् अपने अपने खेतों में हींस (कांटेदार झाड़ी) के अंकुर उत्पन्न हुए देख) (ये मुक्तालता के अंकुर हैं ऐसा समझकर) व्रजांगना मेरे प्यारे (सुबल मधुमङ्गल आदि) मित्रों के साथ (क्या तुम्हारा मित्र ही मुक्ताओं की खेती जानता है? हम नहीं कर सकती क्या-२ इत्यादि) बड़े गर्व में आकर छल पूर्वक परिहास करने लगीं ।।२९।।

व्रजगोपों ने अपने घर में गोरस की महान खपत तथा मुक्ता आभूषणों का अभाव देखा। तो एक दिन अपनी गोपियों से क्रुद्ध होकर इसका कारण पूछा ।।३०।। गोपों के क्रोध युक्त वाक्य सुनकर घर की वृद्धा गोपियों ने उन्हें समझाया—हे चिरंजीव पुत्रो! इन बेचारियों ने मुक्ताओं की खेती के लिये इतनी दूध की खपत की है। इससे कुछ दिन में ही अत्यधिक लाभ होगा। जैसे श्रीकृष्ण के खेत

से राजरानियों के लिये भी दुर्लभ मुक्ताफल उत्पन्न हुए हैं। वैसे हमारे खेतों में भी उनके अंकुर दीखने लगे हैं ।।३१।।

तत्पश्चात् एक बार विशाखा ने अपनी क्यारियों में उन अंकुरों का भली प्रकार निरीक्षण करके किन्हीं सखियों के कान में गुप्तरूप से ऐसा कहा। हे सखियो ! श्रीकृष्ण की क्यारी में मैंने जैसे (मुक्ताओं के) अंकुर देखे थे, हमारे अंकुर वैसे नहीं दिखायी पड़ते, न जाने आगे क्या हो परन्तु इन खेतों में ऐसी बाड़ लगाओ कि किसी भी प्रकार श्रीकृष्ण के सखाओं की दृष्टि इधर न पड़े ।।३२।।

कुछ दिन के पश्चात् श्रीराधादि तथा चन्द्रावली आदि समस्त गोपियों की क्यारियों में काँटों से भरी लतायें प्रकट हो आयीं। सम्पूर्ण गोकुल में यह वार्ता फैल गयी कि गोपियों की क्यारियों में हींस की लताएं उत्पन्न हो आयी हैं।।३३।। (श्रीकृष्ण सत्यभामा से बोले)—हे प्रिये ! मैंने यह समाचार सुनकर एक मित्र द्वारा राधा की गोष्ठी में परिहासपूर्ण यह सम्वाद भेजा—मैंने सुना है कि आप सब की क्यारियों में अत्यधिक मुक्ता फल उत्पन्न हुए हैं ! मैं आपका प्रिय हूँ। अतः मेरे इस मित्र के हाथ पहले पहले उत्पन्न हुए मुक्ताओं में से कुछ मुझे भी भेज दो ।।३४।।

मेरे सन्देश के उत्तर में उन्होंने कहा—यदि हम लोग खेती करने लग जायेंगी तब तो सम्पूर्ण गोष्ठ मुक्ताओं से भर जायगा। तुम्हारे सखा के समान हम गोपालन धर्म को छोड़कर खेती जैसे नीच कार्य में प्रवृत्त होने वाली नहीं हैं ।।३५।। उनका ऐसा कथन सुनकर मैंने अपने सभी सखा, गौएँ, बछड़े, गाड़ी ढोने वाले बैल, भैंस, बकरी उन सबके बच्चे तथा वृन्दावन की सम्पूर्ण वानरियों तक को मुक्ताओं की मालाओं तथा विभूषणों से अलंकृत कर दिया ।।३६।।

सम्पूर्ण गोपियों ने जब यह देखा तथा अपने पास मुक्ताभूषणों तक का भी अभाव पाया तब वे बहुत लज्जित हुईं। अधिक धन के नष्ट हो जाने से उन्हें अपने गोपों से भय लगने लगा। अब क्या किया जाय ?—इस विचार को लेकर उन्होंने परस्पर मन्त्रणा की। अरी सखियो ! श्रीकृष्ण की पक्ष-पातिनी धूर्त नान्दीमुखी ने हमें बुरी तरह से ठगा है—ऐसा सोच कर वे सब स-क्रोध नान्दीमुखी के पास पहुँची। सब वृत्तान्त को कहती हुई उसकी अनेक प्रकार से भर्त्सना करने लगीं। उनकी भर्त्सना सुनकर नान्दीमुखी बोली—हे सखियो ! मैं अपनी तपस्या की शपथ करके कहती हूँ कि मैंने तुम्हारी प्रतारणा नहीं की है, किन्तु तुमने स्वयं ही सारा काम बिगाड़ा है ।।३७।।

सब गोपियाँ बोली - अरी कपटिनि ! बता हमने कैसे बिगाड़ा है ? नान्दीमुखी—तुमने अभिमान में भरकर ढोल बजा-बजाकर कोलाहल करते हुए मित्रों सहित श्रीकृष्ण को बताते हुए क्यारियों में मुक्ताओं का आरोपण तो किया किन्तु उन क्यारियों की रक्षा के लिए कोई एक रखवाला भी नियुक्त नहीं किया ।।३८।।

गोपियों ने कहा-- तो इससे क्या हो गया ।।४०।।

क्रोध में भरकर नान्दीमुखी बोली—तुम सब अपने को बड़ी चतुर समझती हो; इससे जो हुआ, उसे सुनो।—तुम्हारे नागर धूर्त गुरु श्रीकृष्ण ने तुम सबको पराभूत करने के लिए लोलुप मधुमङ्गल को खूब मिठाई खिलायी। जब तुम्हारे मुक्ताओं में अंकुर, आने लगे तो वे मधुमङ्गल के द्वारा सारे के सारे मुक्ता उखड़वा लिये, और तुम्हारी क्यारियों में हींस–लताएं रोपण करा दीं उनमें से कुछ तो अपनी एक क्यारी में लगा लिए, बाकी के सब यमुना के गहरे जल में फिकवा दिए। यह सब मुझे भली भांति पता है ।।४१।।

यह सुनकर सब कहने लगीं—अयि नान्दीमुखि ! तू कुटिलता भरे नाटक के रचने में परम कुशला है। तू भण्ड मधुमङ्गल की गुरु तथा सहायिका है। व्रज में प्रसिद्ध धूर्तनट (श्रीकृष्ण) के साथ नाटक रचने वाली है। तथा उसकी अति प्यारी नटी है। अरी कलियुगी तपस्विनि ! (ढोंग रचने वाली) "बस, बस ...." । इस प्रकार भ्रूकुटी चढ़ाकर उसका तिरस्कार करती हुई सब गोपियाँ घरों पर आकर मुक्ताओं के बारे में परामर्श करने लगीं। तब उनमें श्रीराधा ने कहा—हे सखियो ! चाहे नान्दीमुखी हमारी प्रतारणा करे या धूर्त वह नन्दकुमार; इस पर विचार करने से क्याा लाभ ? इस समय हमें और दूसरा कोई दुख नहीं, परन्तु अपने घर के गुरुजनों का भय ही हमें पीड़ा दे रहा है। हाँ, यदि उनके नष्ट हुए मुक्ताओं को उन्हें फिर दिखा दिया जाय तो पीड़ा कम हो सकती है। यद्यपि यह कार्य सब प्रकार से अति दुर्लभ है तथापि श्रीकृष्ण से ही जैसे मूल्य देकर मुक्ता प्राप्त किए जा सकें, ऐसा उपाय सोचना चाहिए ॥४२॥

तब श्रीराधा के इस प्रस्ताव का सबने समर्थन किया, और बोलीं—चन्द्रमुखी नामक सखी विशेष चतुर है। स्वर्ण लेकर यह जाय तथा उचित मूल्य देकर-उनसे मुक्ताओं को खरीद लावे ॥४३॥

यह सुनकर चन्द्रमुखी बोली—अभी हम सबने उनका तिरस्कार किया है, इसलिये उनके समीप अकेली जाने के लिए मैं असमर्थ हूँ। काञ्चनलता को मेरे साथ भेजो। इस प्रकार सर्व-सम्मति से वे दोनों बहुत सा स्वर्ण लेकर मुक्ता वाटिका के समीप आयीं। वहाँ मैं तथा मेरे साथ बाटिका का अधिकारी सुबल बैठा था। वे सुबल से बोलीं—हे सुबल ! हमने सुना है कि आप नूतन मुक्ताओं को बेचते हैं। अतः हम से यह शुद्ध स्वर्ण ले कर समुचित मूल्यों पर उत्तम उत्तम मुक्ता प्रदान कीजिए ॥४४

तब मैं मुस्कराते हुए बोला—आपने तो बार-बार प्रार्थना करने पर एक मुक्ता तक हमें नहीं दिया था तथा क्यारी सींचने के लिए एक लोटा दूध भी नहीं दिया। हम भी अपने मुक्ताओं को भले ही यमुना में बहा देंगे, परन्तु तुम्हें अपना सम्पूर्ण घर मूल्य रूप में देने पर भी हम अपने मुक्ताओं में से, गन्दे से गन्दा एक मुक्ता भी कभी नहीं देंगे ॥४५॥ मेरे वचन सुनकर काञ्चनलता बोली—मुक्ताओं के कारण यदि हमें पति आदि गुरुजनों का भय न होता तो तुम्हारे ऐसे कदर्थना भरे वाक्य कौन सहन करता ? मथुरा नगरी के बाजार में रत्नों की कोई कमी नहीं है, किन्तु वह दूर है ! हे सुबल ! तुम मध्यस्थ बन जाओ तथा और स्थानों के भाव से भी विशेष मूल्य लेकर हमें इस समय मुक्ता दे दो ॥४६॥

कांचनलता के मूल्य 'विशेष' शब्द को सुनकर हंसते हुए मैं बोला—ठीक है। मेरा तो स्वभाव कोमल है। अतः आपकी भांति कठोर बर्ताव नहीं कर सकता। नहीं दूँगा तो इनका करूँगा ही क्या ? परन्तु क्या सभी मुक्ता-चाहने वाली गोपियों के लिये मुक्ताओं का मूल्य आप दोनों के द्वारा ही निर्णय होगा ? ॥४७॥

उन्होंने कहा—और क्या।

तब मैंने कहा – विशेष मूल्य क्या होगा बताओ तो ? तब चन्द्रमुखी कुछ मुसकराती हुई कांचनलता की ओर देखने लगी। कांचनलता लज्जापूर्वक सुबल से इस प्रकार कहने लगी—हे सुबल ! तुम ही मध्यस्थ बनकर इस विषय का उचित समाधान कर यश के भागी बनो ॥४६॥ तब सुबल मुझसे बोला—हे मित्र ! यह कांचनलता रहस्य स्वरूप बहुमूल्य क्या निर्णय करेगी। आप ही अपनी वस्तु का मूल्य स्पष्ट बताकर क्यों नहीं ले लेते ? ५०॥

हे सत्यभामा ! तब मैंने कहा—सखे सुबल ! चन्द्रमुखी का अभिप्राय मैंने जान लिया है । मुक्ताओं को लेने के लिए कांचनलता (स्वर्ण की लता) को बहुमूल्य वही कल्पना करके, राधा आदि गोपियों ने उसे मेरे पास भेजी हैं, परन्तु कांचन (स्वर्ण) से मुक्ता बहु-मूल्यवान् होते हैं, यह संसार जानता है । फिर एक कांचन लता से सब मुक्ताओं का मूल्य कैसे पूरा हो सकता है ? यदि चन्द्रमुखी यह कहे कि इसके वक्षस्थल पर स्वर्ण-सम्पुट रूप दो फलों में बहुत सी चिन्तामणियां विद्यमान हैं, तो उससे भी काम बनने वाला नहीं है, क्योंकि वैकुण्ठनाथ के कण्ठ में अवस्थित कौस्तुभ मणि से भी कहीं अधिक मेरे एक एक मुक्ता का मूल्य है ।।५१।।

मेरी इस बात को सुनकर कुटिल भ्रकुटि करके मेरी ओर देखती हुई कांचनलता क्रोध पूर्वक कहने लगी—अयि निर्बुद्धिके चन्द्रमुखि ! मैंने पहले ही कहा था कि उस धृष्ठ के पास मैं नहीं चलती; तथापि तूने आग्रह पूर्वक मुझे यहाँ लाकर मेरा तिरस्कार कराया है । तू मुक्ता फल लेकर आती रहना मैं तो जा रही हूं ।।५२।।

चन्द्रमुखी बोली—ओ कांचनलते ! तू सत्य ही कह रही है । तेरे बिना मुझ अकेली के द्वारा मूल्य कैसे निर्णय हो सकता है ? इस एकान्त स्थान पर मैं अकेली कैसे रह सकती हूँ ? एक ही कार्य में नियुक्त किए गए व्यक्तियों की प्रवृति और निवृति (कार्य पर आना तथा छुट्टी पाना) एक साथ हुआ करती है । अतः मैं भी चल रही हूँ ।—ऐसा कहकर जब वे दोनों चलने लगीं तब मैंने कहा—सुबल ! मैंने तो तभी कहा था कि इनके द्वारा मूल्य निर्णय नहीं हो पायेगा ।।५३।। यह सुनकर सुबल उन दोनों के समीप जाकर कहने लगा—सखि चन्द्रमुखि ! मेरे मित्र का मूल्य के विषय में महान आग्रह है । अतः प्रियसखी राधा-ललिता आदिकों के साथ आकर उनके सामने ही समुचित मूल्य प्रदान कर जितने चाहो मुक्ता फल खरीद कर लेना । इस विषय में मैं मध्यस्थ होकर सहायता करूँगा ।।५४।।

मेरी बात सुनकर दोनों ने राधा आदिक गोपियों के पास जाकर रोष सहित सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया ।।५५।। तदनन्तर राधा ललितादि गोपियों को लेकर वे दोनों फिर मुक्ता वाटिका के पास आयीं चन्द्रमुखी के द्वारा सुबल को बुलाकर उन्होंने कहा—प्रिय वयस्य सुबल ! हम पर आपका सहज प्रेम है । अतः आप ही सोचकर ऐसा उपाय करिए, जिससे हमें समुचित मूल्य में मुक्ताफल प्राप्त हो सकें ।।५६।।

उनके वचन सुनकर सुबल ने आकर मेरे को बताया तथा मेरे कहने से वह ललितादि को मेरे समीप ले आया ।।५७।। राधा ने सुबल को समझाकर कहा—कि तुम मेरे यहाँ आने का समाचार अपने मित्र से मत कहना—क्योंकि मुझे उससे उपद्रव की आशका है राधा ऐसा कहकर समीप की कदम्ब कुञ्ज में छिपकर सम्पूर्ण वृत्तान्त को सुनती रही ।।५८।।

मैंने उन गोपियों में भली प्रकार देखने पर जब राधा को न देखा, तब पूछा कि राधा यहाँ कैसे दिखाई नहीं दे रही है ? मेरे ऐसा पूछने पर तुङ्गविद्या बोली—हे गोकुल युवराज ! उनकी सास जटिला ने प्रेम पूर्वक उनको घरके किसी विशेष कार्य के लिये रोक लिया है ।।५९।।

इतने में मधुमङ्गल ने मेरे पास आकर इशारे में कहा "राधा निकटवर्ती कदम्ब कुञ्ज में छिपी बैठी है उसके इशारे से सब रहस्य जानकर मैंने मुस्कराते हुए कहा—तुङ्गविद्ये ! लगता है कि राधा की इच्छा मुक्ता लेने की नहीं है ।।६०।। तब तुङ्गविद्या बोली—नहीं ! इच्छा क्यों नहीं ! उनके मुक्ताओं का मूल्य हम देंगी ।।६१।।

मैंने कहा—विशाखा ही तो राधा है और राधा ही विशाखा। इसलिये उसका मूल्य विशाखा ही दे देगी; ऐसा जान पड़ता है। ठीक है, इसमें मेरा कोई आग्रह नहीं है। परन्तु जो गोपी स्वयं आकर मुक्ता न लेगी, उसको चौगुना मूल्य देना होगा। उसे मुक्ता भी घटिया ही दिए जायँगे—मेरे सभी सखाओं का यही सुदृढ़ निर्णय है ॥६२॥

फिर मैंने सुबल से कहा—हे मित्र सुबल ! मुक्ताओं से परिपूर्ण पेटियों को लाकर मेरे सामने फैलाकर उनमें से रद्दी से रद्दी मुक्ताओं को निकालो। पूर्व राधा ने जो हमारे साथ कृपणता की, उसे भुलाकर पहले उसके लिए अच्छे मुक्ताओं को प्रदान करो तथा विशाखा से उनका मूल्य ग्रहण करो। यदि यह नगद दाम न चुका सके तो राधा से अभिन्न इस विशाखा को 'जहाँ फूल-पत्तियों की चोरी करने वाली गोपकन्याएँ रखी जाती हैं उसी माधवी कुञ्ज की जेल में उसे बन्द करके रखो ॥६३॥

मेरी बात सुनकर मधुमङ्गल बोला—प्रिय मित्र ! बाँध कर रखने पर भी ये गोपियाँ; रात में निकल भागेगी इन्होंने दूसरी गोपियों से भाग निकलने की विद्या खूब सीख रखी है ॥६४॥ तब मैंने कहा—हे मित्र ! इस बात को मैं सम्यक् जानता हूँ; तथापि कोई चिन्ता नहीं। यद्यपि परस्त्री का स्पर्श तथा निर्लज्जता हमारे जैसे व्यक्तियों के लिए स्वप्न में भी अत्यन्त अयोग्य है, तथापि—'बुद्धिमान पुरुष निन्दनीय कृत्य करके भी अपने अभीष्ट काम को निकाल लेता है। तथा 'आहार और व्यवहार में लज्जा भी नहीं करनी चाहिए, इस प्रकार के नीनि वचनों के अनुसार मैं स्वयं पहरेदार बनकर सारी रात्रि जागते हुए वहीं वास करूँगा ॥६५॥

यह सुनकर मुस्कराते हुए सुबल बोला—हे पुरुषोत्तम ! प्रियसखी विशाखा इस महान् संकट को कितने समय तक सहन करेगी ? ॥६६॥ मैंने उत्तर दिया—जिसके लिये इसको बन्धन में रखा जा रहा है, जब तक वह (राधा) सम्पूर्ण मूल्य न भिजवा देगी अथवा इसके स्नेहवश स्वयं यहां बन्धन कर में रहकर विशाखा के द्वारा पैसे मंगा कर दाम चुकता नहीं करती तबतक उसे यहाँ रहना होगा ॥६७॥

यह सुनकर मधुमङ्गल बोला—अरे मित्र ! इस सम्पूर्ण गोपियों की गोष्ठी की अधीश्वरी राधा सभी कामों में इन सब से चतुरा हैं, विशेष करके भागने में। दानघाटी आदि स्थानों पर गोरस-दान के समय हम ने अनेक बार ऐसा प्रत्यक्ष देखा है। तू तो निरन्तर उद्घूर्णित (ऊँघता हुआ) सा रहता है। अनः मुझे बड़ी चिन्ता है ॥६८॥

तब मुस्कराते हुए मैं मधुमङ्गल से बोला—अरे मित्र ! छोड़ इस चिन्ता को। उस राधा के समीप रहने पर मुझे तन्द्रा हो नहीं आएगी। यदि आ भी जाय तो क्या होगा ? मैं उसकी वामभुजा रूपी कमलनाल को अपने शिर का तकिया बना लूंगा उसके वक्षःस्थल पर अपना पीताम्बर चन्द्रातप की भाँति डालकर उस पर मैं, अपना अरुण वाम कर-पल्लव जमा दूंगा। फिर मुक्ताओं के मूल्य-भुगतान के लिये बात करता रहूँगा। बस, उसी सुख में जागते हुए चार पहर की रात्रियाँ बड़ी शीघ्र ही बीत जायेंगी। अथवा, मेरा उरःस्थल महाअन्धकार मय विषम कारागार है, उसमें राधा को संस्थापित कर अपनी नीलमणि से भी कठोर दोनों बाहुओं से कसकर पकड़े रखूंगा। फिर निःशंक होकर अपने स्वप्न विलास का विस्तार करूँगा ॥६९॥

मेरे इस कथन को सुनकर सब सखियां मुस्कराने लगीं, परन्तु राधा ग्रीवा को उठाकर मेरी, विशाखा की तथा सम्पूर्ण सखियों की ओर देखती हुई बोली—हे चन्द्रावली के क्रीड़ामृग ! ठहर, ठहर—

इस प्रकार धीरे से मुझे तर्जना देती हुई मुसकराने लगी ।।७०।। किन्तु विशाखा कुटिल दृष्टि से मुझे देखती हुई बोली—हे व्रज धूर्तों में श्रेष्ठ ! भाग जा यहां से, भाग जा !—ऐसा कहती हुई वह गोपियों में जा मिली ।।७१।।

तदनन्तर सब गोपियाँ सुबल से कहने लगीं—हे सुबल ! परिहास छोड़ो। यदि आप मुक्ता-फल बेचना चाहते हैं तो मुक्ता दिखाकर समुचित मूल्य में हमें दीजिये। नहीं तो हम अपने घर को जाएँ। मथुरा से ही हम मुक्ता मँगा लेंगी ।।७२।।

उनके वचनों को सुनकर सुवल मुक्ताओं के डिब्बे उनके आगे खोल-खोल कर दिखाने लगा। मुझ से बोला—हे प्रिय मित्र ! ये सभी मुक्ता अमूल्य हैं। ये गोपियाँ अपने घरों कों एवं पतियों के सम्पूर्ण गोधन को बेच कर भी एक मुक्ता का मूल्य नहीं दे सकतीं। परन्तु ये आपकी अनुरागिनी हैं। सबकी उपेक्षा कर केवल आपको ही जानती है। अतः इनके पहले किये कृपण व्यवहार को भुलाकर, मुझे भी अपना अनुगत समझकर जो कुछ भी नाम मात्र मूल्य लेकर मानो बिना मूल्य के इन्हें वांछित मुक्ताओं के देने की मुझे आज्ञा दीजिये ।।७३।।

मैंने कहा—हे सखे ! नहीं, नहीं, ऐसा नहीं होगा। हम तो व्यापारी लोग हैं। तुम्हारा वचन भी मैं टालना नहीं चाहता। फिर भी जो कुछ थोड़ा मात्र मूल्य मैं चाहता हूँ वह इनसे मुझे दिलाकर मुक्ता दे दो। परन्तु तुमने बारम्बार इनसे उत्कोच (घूँस) लेकर मेरे घाट की दान राशि की हानि की है—ऐसा मुझे किसी ने कहा है। इसलिए इनके निकट जाकर मैं अपना मूलधन स्वयं ही वसूल करूँगा ।।७४।। मुसकराते हुए सुबल बोला—बहुत ठीक; इन गोपियों ने अपनी इच्छानुसार चुन कर मुक्ता अपने पास इकट्ठे कर लिए हैं। उन सबको देख कर आप भी अपनी इच्छानुसार मूल्य बता दीजिए ।।७५।।

तब मैंने कहा अपने द्वारा एकत्र किए हुए मुक्ता मुझे दिखाओ। फिर मैं उनका मूल्य बताऊँगा ।।७६।। सुबल बोला- हे प्रिय मित्र ! ये विनय पूर्वक जो कुछ निवेदन कर रही हैं, कृपाकर उसे सुनो तथा समझ लो; फिर जैसा आपको रुचे वैसा करना ।।७७।।

मैंने कहा—सुबल ! बताओ; ये क्या कहतीं हैं ? यदि उचित होगा तो करूँगा ।।७८।।

सुबल बोला—इनका यह निवेदन है कि "मथुरा तो यहाँ से दूर है। आपके दाम दो दिन में इकट्ठे करके हम देंगी। क्योंकि हमारे गुरुजन हमारे पास मुक्ता अलंकारों को न देख कर हर समय दुःखित होकर हमारी भर्त्सना करते रहते हैं। आप बड़े कोमल स्वभाव हैं—ऐसा समझ कर लज्जा को भी त्यागकर हम आपके समीप इस एकान्त वन प्रदेश में आयी हैं। अतः उधार रूप में मुक्ता प्रदान कर हमें यहाँ से शीघ्र जाने दीजिये इनका मूल्य द्रव्य जो कुछ आप बताएँगे, व्याज सहित दो दिन के अन्दर चुका देंगीं। यदि आप हमारा विश्वास न करें तो आपका मित्र मैं सुबल उनका जमानती रहूँ। ये पूर्ण विश्वास की पात्रा हैं। सदा सत्य बोलने वाली हैं। इनके ऊपर विश्वास करके मुक्ता प्रदान करने पर व्याज सहित मूल द्रव्य प्राप्त हो जायगा तथा इनके साथ अतीव प्रेम की वृद्धि भी होगी ।।७९।।

तब मैं हंसते हुए बोला—अरे सुबल ! तू बड़ा सरल बुद्धि है। इनका व्यवहार जरा भी नहीं जानता। अरे ! ये कूटनाटक में नृत्य करने वाली नर्तकी हैं। यहाँ से मुक्ता लेकर ये अपने अपने पति

रूप विशाल किलों के परकोटे में सास-श्वसुर रूप महापर्वतों में सुरक्षित होकर घुस जायेंगी। फिर ये वहाँ जाकर रहती हुए मूल्य प्रदान न करें तो तू इनका क्या कर लेगा ? ।।८०।।

सुबल बोला—हे मित्र ! ऐसा मत कहो, ये ऐसा नहीं करेंगी। यदि करेंगी भी तो मैं इस वन में रहने वाले उज्ज्वल-अर्जुन-कोकिल आदि सखाओं (इनके पतियों) तक यह संवाद पहुँचा दूँगा कि "ये कृष्ण से अपना ग्रहण आलिंगन, अधर सुधापान आदि मूल्य स्वीकार कर मुक्ता फल लायी हैं। या तो मुक्ताफलों का उचित मूल्य कृष्ण के पास पहुँचा दो, अन्यथा इन गोपियों से वही मूल्य बसूल किया जायगा" इस प्रकार का भय दिखाऊँगा, जिससे इनके पति शीघ्र ही आपके पास मूल्य लेकर उपस्थित होकर सम्पूर्ण ऋण चुका देंगे ।।८१।।

यह सुनकर क्रोध में भर कर मधुमङ्गल बोला—अरे सुबल ! तू नाम से ही सुवल (बड़ा-बलवान) है और पुरुष है। वस्तुतः मैंने अबला (निर्बल स्त्री) रूप में तुम्हें अनेक बार देखा है। अब भी इन अबलाओं की फुत्कार को क्षुद्रातिक्षुद्र इनके पतियों तक पहुंचाना चाहता है। तू बड़ा डरपोक स्वभाव का है और ऐसा ही तुम्हारे लिये उचित है। अतः तू यहीं चुपचाप बैठा रह ! मैं योद्धा वेश धारण कर बल पूर्वक इनके पतियों सहित उनकी गो-भैंसों को घेर कर एकत्र करके नन्दीश्वर पुर में बन्द कर दूंगा। फिर ये गोपियाँ स्वयं आकर अपना अपना पूर्ण मूल्य चुका कर अपने अपने पति-गोधन आदि को छुड़ा ले जायेंगी ।।८२।।

मधुमङ्गल की यह बात सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ और मैं बोला—हे प्राण सखे मधुमङ्गल ! तुम यह कैसी मन्त्रणा कर रहे हो ? देखो, व्रज के भील-पुलिन्द आदि भी मुझे प्रियों से अत्यन्त प्रिय हैं। फिर ये तो सब मेरे जाति-गोत्रीय भाई हैं, मुझसे अभिन्न ही हैं। अतः तुम्हारा ऐसा कहना अतीव अनुचित है। सुबल ने जो कुछ कहा है, वह कुछ मुझे ठीक लगता है। तथापि प्रियजनों के साथ लेन-देन का व्यवहार करने पर सद्भाव नहीं रहता धर्म शास्त्र का भी यही कथन है—"कि मित्रों के साथ आदान-प्रदान स्वरूप व्यवहार नहीं बढ़ाना चाहिए। यदि कोई ऐसा करेगा तो प्रेम का लोप हो जायगा और उससे भी बढ़ कर उनमें परस्पर कलह पैदा हो जायगा।" इसलिए जो भी कुछ इनके पास उपस्थित है मूल्य रूप में देकर मुक्ता ले जायें ।।८३।।

यह सुनकर क्रोध सहित सुबल की ओर लक्ष्य करतीं हुईं गोपियाँ कहने लगीं—अये कुटिलता पारंगत सुबल ! तुम सबने मिल कर विडम्बना करने के लिए ही हम सब को यहां बुलाया है। अब तुम इन मुक्ताओं के वाणिज्य व्यवसाय से यहाँ राज्य करो। हम चलती हैं। ऐसा कह कर जब वे चलने लगीं तब उनके निकट जाकर बड़े प्रेम पूर्वक वाक्यों में धीरे से ललिता कों सुबल कहने लगा—हे सखि ललिते—"आदान-प्रदान व्यवहार से स्नेह नष्ट हो जाता है;–केवल इसी भय से प्रियमित्र (श्रीकृष्ण) ने मूल्य निर्णय तथा विक्रय द्वारा धन का लोभ, छोड़ कर" मुक्ता देने ही नहीं हैं–ऐसा विचार किया है। मैं इस रहस्य को भलो प्रकार जानता हूँ। इसलिए वापस चलकर पहले मूल्य निर्णय करलो, पीछे उसके देने का उपाय विचार करना। इस प्रकार अनुनय पूर्वक उन सबको सुबल लौटा लाया और मुझ से बोला—हे मित्र ! परिहास त्याग कर इनको मूल्य बताओ ।।८४।।

मैंने कहा—हे मित्र सुबल ! यह बता; इनमें पहले किसके मुक्ताओं का मूल्य बताऊँ ? । ८५।।

सुबल बोला—इन सबमें ललिता प्रधाना है। अतः इसने जितने मुक्ता छाँट कर रखे हैं, प्रथम उनका ही मूल्य कह दो ।।८६।।

तदनन्तर कुछ मुसकराता हुआ मैं बोला—सम्पूर्ण सेना के मध्य यह परम चतुरा ललिता यदि युद्ध में निज पराक्रम द्वारा एक ही बार में मेरे जैसे पराक्रमी नरसिंह के अस्त्रों को कुण्ठित करने में सफल हो जाय तो इसके आगे मैं भी स्त्री की भांति बन कर रहूँगा। अथवा सदा के लिये अस्त्र त्याग कर इसके पराक्रम का कीर्तन करता हुआ इसका अनुचर ही बन जाऊँगा। इसकी जो इच्छा हो, वह मूल्य देकर अपने छाँटे हुए सम्पूर्ण मुक्ता ले जाय ॥८७॥

मेरे इन वचनों को सुनकर हंसकर सुबल बोला - हे गोकुल वीर! अत्यन्त घमण्डी देवराज इन्द्र के गर्वरूप पर्वत को नष्ट करने के लिए आपने यहीं सात दिनरात लगातार वायें हाथ की कनिष्ठिका अंगुली के अग्रभाग पर मानों कमल बीज के ऊपर—मण्डराते भ्रमर के समान आपने गोवर्धन को धारण किया था - ऐसे परम पराक्रमो आपके साथ परम सुकोमल ललिता कैसे युद्ध करेगी? ॥८८॥

यह सुन कर मधुमङ्गल बोला—सुबल! तू कहीं इसकी पहली पौगण्ड अवस्था के दर्प की प्रशंसा कर रहा है। अरे! इस समय तारुण्य-अमृत के अभिषेक द्वारा वह दर्प-कल्पवृक्ष लाख-लाख गुणा पल्लवित हो चुका है ॥८९॥ सुबल बोला—तुझे इसका कैसे पता चला है? ॥९०॥

मधुमङ्गल ने कहा—इस (श्रीकृष्ण) ने पूर्व काल में इन्द्र आदि शत्रुओं को जिस प्रकार विकल कर दिया था, उसी प्रकार इस समय तो हृदय में विद्यमान कामदेव रूपी परम कठोर पर्वत ने खेल-खेल में सबको युद्ध में साधारण अस्त्र द्वारा चूर चूर कर दिया है। उससे अधिकतर विकलता उत्पन्न हो रही है ॥९१॥

मैंने मुसकराते हुए कहा—हे सुबल! सत्य कहा है तूने अन्यत्र सभी स्थानों पर भले मैं सर्व विजयी होता हूँ, परन्तु इसके (श्रीराधा के) सामने नहीं। क्योंकि पहले से प्रबलतर अनेकवैचित्री में कुशल यह अपनी भ्रकुटि-धनुष की टंकार तथा हुंकार से सहज में ही मेरे को स्तब्ध कर देती है। इसे फिर अबला कैसे कहा जा सकता है ॥९२॥

यह सुनकर समस्त गोपियों के मुखों पर मुसकराहट देखकर ललिता अपने आनन्द से उत्पन्न रोमाञ्चादि विकारों को छिपाती हुई ऊपर से क्रोध प्रकट करती हुई बोली—विदूषक सुबल! सचमुच तू भी इस मधुमङ्गल के सखा गोकुल के 'भाँड़' (श्रीकृष्ण) की भण्डतादेवी (चन्द्रावली) द्वारा आविष्ट हो रहा है, क्योंकि हम सबको इसके सामने लाकर विडम्बना समुद्र में गिरा कर तमाशा देख रहा है। ऐसा कह कर ललिता कुटिल दृष्टि से मेरे प्रति आक्षेप करते हुए सबसे बोली—अरी सरल सखियो! आओ, आओ, चलें। ऐसा कह सबको साथ लेकर ललिता जब चलदीं तो उसी समय मार्ग में भगवती पूर्णमासी की शिष्या नान्दीमुखी आ पहुंची। उनसे लौटने की सम्पूर्ण वार्ता सुनकर उन्हें समझाते हुए कहने लगी—अरी सखि-ललिते। नर्म-प्रिय इस व्रजेन्द्रनन्दन के परिहास वाक्य मात्र से ही तुम अपने कार्य की उपेक्षा करके कैसे लौट रही हो? क्षणमात्र के लिए अब मेरे साथ वहीं चलो। नीति ऐसी है कि बुद्धिमान जन अपमान को आगे और मान को पीठ पीछे करते हुए अपने काम को बना ले। अपना काम बिगाड़ना तो मूर्खता ही है। इस न्याय से परिहास-विडम्बना को सहन कर धीरता सहित अपना काम बनाओ। मैं शपथ खाकर कहती हूँ, कि इस कृष्ण के परिहासों को ही मध्यस्थ बना कर तुम्हें मुक्ता दिला दूंगी। यदि इसको मुक्ता देने ही न होते तो यह परिहास क्यों करता। तुम्हारी कृपणता को स्मरण कर अभिमान पूर्वक बैठा रहता। अतः जो कुछ यह मूल्य बतावे, सुन कर जिससे

अपनी कार्य सिद्धि हो वैसा व्यवहार करना चाहिये। ऐसा समझा कर नान्दीमुखी बल पूर्वक ललिता का हाथ पकड़ कर सबको साथ लेकर मुक्ता भण्डार के पास ले आई। वह मुझ से बोली—हे गोकुल-युवराज! परमादरणीय श्रीभगवती ने शतशः आशीर्वाद देते हुए आपको कुछ सन्देश भेजा है ॥९३॥

(हे सत्यभामा) तब मैं बोला—हे नान्दीमुखि! पूजनीय भगवती आनन्द से तो हैं न? बताओ, उनकी मेरे लिए क्या आज्ञा है? उनके सन्देश रूपी अमृत से अपने को आप्यायित-सराबोर कर लूँ ॥९४॥

नान्दीमुखी ने कहा—आप महा अष्टनिधि के स्वामी व्रजराज नन्द जी के सुपुत्र हैं। ये राधा आदि समस्त व्रज की कुमारीगण मेरे अत्यन्त स्नेह की पात्रा हैं। इनका भी तुम्हारे में परम अनुराग है, अतः हमारी ओर देखकर भारी हठ को त्याग दो जितनी इनकी सामर्थ्य हो उसके अनुसार मूल्य ग्रहण करके इनकी इच्छानुसार इनको मुक्ता समूह प्रदान करके हमें सन्तुष्ट करो।" इस प्रकार के भगवती पूर्णमासी के इस सन्देश को भली प्रकार धारण करो। परिहास छोड़ कर मुक्ताफल प्रदान कर इन्हें सन्तुष्ट करो। अपने अपने घरों के लिए विदा करने में सम्पूर्ण गोकूल को सुख प्रदान करने में आप महानुभाव ही प्रमाण हैं। अर्थात् गोकुल सुख आप सदा करते आये हैं ॥९५॥

तब मैं उसकी प्रशंसा पूर्वक कहने लगा—अजी नान्दीमुखी! पहले सुबल के हाथ श्रीभगवती का भेजा गया आज्ञापुण्य शिरोधार्य करके सम्पूर्ण मूल्य को त्याग कर केवल ललिता के मुक्ताओं का जो कुछ मैंने आभास मात्र मूल्य इस ललिता से निर्णय किया है, उसको इसी(ललिता)के मुखसे आप सुनलें। तत्पश्चात् जो कुछ छोड़ देने को तुम कहोगी मैं उसे त्याग कर दूंगा ॥९६॥

मेरे इस कथन को सुनकर ललिता तो क्रोध से ओष्ठ को कँपाने तथा भ्रुकुटी चढ़ाने लगी। किन्तु और सभी सखी वृन्द मुस्कराने लगीं। ऐसा देख मुसकराती हुई नान्दीमुखी कहने लगी—हे व्रज युवराज! आपके द्वारा निर्णीत वह मूल्य तो मैंने इनसे सुन लिया है, परन्तु इस समय वह परिहास छोड़कर मेरे समक्ष सबका ही उचित रूप से मूल्य बताओ ॥९७॥

तब मैंने कहा—हे नान्दीमुखि! इन सब सखियों में बड़ी है ज्येष्ठा सखी अतः पहले इसके साथ परामर्श करके इसके मुक्ताओं का मूल्य आप ही निर्णय कर दें ॥९८॥ नान्दीमुखी बोली—वस्तु का मूल्य पहले वस्तु का मालिक ही बताता है अतः आप ही बताओ। ९९॥

तब मैंने कहा—चन्द्रमा स्वरूप मेरे हृदय आकाश में राधा के उदय होने पर अनुराधा (ललिता) का उदय हुआ इसी बीच मर्यादा का उल्लंघन करती हुई प्रेम के कारण ज्येष्ठा का उदय हो आया है।

ज्योतिष शास्त्र के अनुसार आकाश में सत्ताईस नक्षत्रों में बिशाखा(राधा) अनुराधा (ललिता) तत्पश्चात् ज्येष्ठा के उदित होने का यह क्रम होता है—परन्तु इस समय राधा के पश्चात् अनुराधा से पूर्व ही ज्येष्ठा प्रेम-विशेष के कारण मेरे हृदय में आ गई। अतः मेरे मुखचन्द्र को यह ज्येष्ठा सखी भले ही राधा और अनुराधा के साथ अथवा अकेली ही अपने मुख से चुम्बन करले, बस यही मूल्य निर्णय करता हूँ ॥१००॥

मेरे वचन को सुन निकुञ्ज में बैठी हुई राधा,ललिता,विशाखा तथा ज्येष्ठा भ्रुकुटि को टेढ़ी करतीं हुई क्रोध का अभिनय करने लगीं। ऐसा देखकर मैंने कहा—हे नान्दीमुखि! मेरा यह कथन इनके लिए महान् लाभप्रद है; ऐसा जानकर भी ये क्रोध क्यों कर रहीं हैं? ॥१०१॥

नान्दीमुखी बोली—हे सुन्दर ! गोकुलयुवराज कृष्णचन्द्र से भिन्न इससे इनका पाणिग्रहण हुआ है तथा हमारी मर्यादा के अनुसार पर-पुरुष का मुखचुम्बन तो दूर रहा, स्पर्श भी महापाप माना जाता है--इसी कारण ये क्रोध कर रही हैं ।।१०२।।

इस प्रकार विनोद पूर्ण लीला को सुनकर सत्यभामा श्रीकृष्ण से कहने लगीं —हे नाथ ! ताराओं में राधा तथा विशाखा एक ही तारा का नाम है ऐसा प्रसिद्ध है। अतः परिहास में 'अनुराधा' इस नाम के प्रयोग करने पर अपने अपने को समझती हुई परम चतुर राधा और विशाखा का रोष करना तो उचित है, परन्तु ललिता क्यों व्यर्थ क्रोध करने लगी ।।१०३।।

श्रीकृष्ण बोले—हे प्रिये ! ललिता का ही दूसरा नाम अनुराधा है ।।१०४।। सत्यभामा ने कहा—हे यादवेन्द्र ! इस अपूर्व लीला-कथा सुनने से मेरे चित्त में पूर्ण तृप्ति नहीं हो रही है। अतः अब आगे विस्तार पूर्वक कहिये ।।१०५।।

श्रीकृष्ण ने कहा—तत्पश्चात् मैं मुसकराकर चम्पकलता के मुखचन्द्र को देखकर उसके द्वारा छाँटे हुए मुक्ताओं को हाथ से चलाते हुए बोला—हे नान्दीमुखि ! यह तेरी प्रियसखी चम्पकलता किसी सिद्ध से सिद्धि प्राप्त करके आयी है—बहुत दिनों से मैं यह अनुमान कर रहा हूँ ।।१०६।।

नान्दीमुखी—आपको यह अनुमान कैसे हुआ ? ।।१०७।।

मैंने कहा—यह चम्पकलता स्थावर में बड़े बड़े दो फलों के भार से झुक कर भी सहज से इधर उधर घूमती फिरती है, अतः यह मेघ सदृश मेरे वक्षस्थल पर चम्पकमाला बनकर अपने सौरभ से मुझे सुगन्धित करे। मैं भी अपनी सिद्धि के बल से शीघ्र ही इसकी आज्ञा से इसके कण्ठ की अतिसूक्ष्म मरकत मणि माला के रूप में तथा स्तन युगल के मध्य इन्द्र नीलमणि नायक हो जाऊँगा ।।१०८।।

सुबल ने कहा—हे प्रिय सखे ! (स्थावर लता होकर भी) सर्वत्र इसकी भ्रमण रूपी सिद्धि को सभी जानते हैं। परन्तु तुम्हारी सिद्धि कभी किसी ने कहीं नहीं देखी। यदि अपने मुख से कही गई इस सिद्धि में कहीं तुम असमर्थ रह गये तो ये गोपियाँ हमारा परिहास करेंगी अतः इस कार्य में विचार कर प्रवृत होना ।।१०९।। मैं बोला—अरे सुबल ! मेरी सिद्धि को देखता हुआ भी तू नहीं देख पा रहा है, इस विषय में मैं क्या करूँ ? ।।११०।।

नान्दीमुखी ने कहा—हे मधुराङ्ग ! तुमने कब और कहाँ सिद्धि दिखाई ? उसे बताओ तो सही, हम सब उस सिद्धि को सुनना चाहती हैं ।।१११।।

तब मैंने कहा—देवयात्रा के समय अम्बिका वन में पितृ-चरणों की चरण शरण में आये हुए महा अजगर को अपने पैर के अँगूठे से स्पर्श मात्र करा देने पर सम्पूर्ण अलंकारों से सुसज्जित विद्याधरों का राजा मैंने बना दिया था। गिरिराज गोवर्धन को सामान्य छत्र के समान एक हाथ पर एक सप्ताह धारण किया था। कालिय की विष ज्वाला से विमोहित सुबल आदि सब सखाओं को दृष्टि मात्र से सचेतन कर दिया था। बार बार महा-दावानल को भी अमृत के समान मुख से पान किया था। इस प्रकार मेरे अनेक सिद्धियों के प्रभाव को गोकुल में किसने अनुभव नहीं किया है। अधिक कहने का क्या प्रयोजन ? ।।११२।।

मेरे ये वचन सुनकर कुछ मुसकराती हुई ललिता बोली—हे नान्दीमुखि ! यह तुम्हारा दुर्ललित नागर सब कह तो ठीक रहा है, परन्तु अब वह समय गया; तब ब्रह्मचर्य की शक्ति से इसने

यह सब किया था। अब इस समय तो क्रूरकंस के सेवक गोवर्धन मल्ल की गृहिणी (चन्द्रावली) तथा पद्मा-शैव्या आदि व्रजाङ्गनाओं के साथ सदा भोग विलास के कारण इसका ब्रह्मचर्य दूषित हो गया है तथा सम्पूर्ण सिद्धियाँ अन्तर्धान हो गयी हैं ।।११३।।

तब मैं कुछ हँसकर बोला—हे ललिते ! तेजसियों को कोई दोष नहीं लगता। इसको बिना समझे तू ऐसा कह रही है। इसका तू अर्थ सुन—जिस प्रकार भक्ष्य-अभक्ष्य सब कुछ खाने पर भी अग्नि के तेज में कमी नहीं आती, प्रत्युत उसके तेज की वृद्धि ही होती है उसी प्रकार आप जैसी उत्तम वराङ्गनाओं के निरन्तर मधुर रस का उपभोग करने से मेरी सिद्धि निरन्तर उज्ज्वल होती हुई परम वृद्धि को ही प्राप्त हो गयी है ।।११४।।

मधुमङ्गल बोला—हे ललिते ! यह प्रिय मित्र सत्य ही कहता है। यदि सिद्धि न बढ़ी होती तो भूमि में मुक्ता कैसे जमते तथा बढ़ते, और फिर कैसे फैल कर वल्ली रूप धारण कर पर्याप्त रूप में फूलते तथा फलते ? ।।११५।। मुस्कराती हुई ललिता बोली—हे आर्य मधुमङ्गल ! तो क्या यह तुम्हारे प्रियमित्र की सिद्धि का प्रभाव है ? ।।११६।।

मधुमङ्गल—(नहीं) तो और किसका है ? ।।११७।।

ललिता—वृन्दावन भूमि का ही यह प्रभाव है ।।११८।।

तब राधा मन-मन में बोली—ललिते ! यह कामिनी-सङ्गका प्रभाव है, ऐसा कहो। विशाखा ने भी राधा की बात का अनुमोदन किया ।।११९।।

तदनन्तर मैं बोला—तो इसी वृन्दावन भूमि में आप ने भी तो मुक्ता बोये थे, वे हींस कैसे हो गए ? ।।१२०।।

ललिता—हे चतुर शिरोमणि ! क्या कहीं मुक्ता हींस होते हैं ? ।।१२१।।

मैंने कहा—तो फिर तुम्हारे खेतों में मुक्ता उत्पन्न क्यों नहीं हुए ? ।।१२२।।

ललिता—भूमि की विशेषता तथा बीज के दोष से ।।१२३।।

राधा ने ललिता को लक्ष्य करके कहा—हे ललिते ! तुम्हारे खेत के गुण से मुक्ता उत्पन्न नहीं हुए ऐसा कह। विशाखा ने भी इसका समर्थन किया ।।१२४।।

नान्दीमुखी—विशाखा ठीक ही कह रही है ।।१२५।।

ललिता—वह कैसे ? ।।१२६।।

नान्दीमुखी—कारण यह है कि सम्पूर्ण रूपसे मुक्तिरूपी-विषवल्ली की महा ऊषर भूमि में तो मुक्ता होंगे परन्तु परमानन्दकारी पूर्ण प्रेम से उज्ज्वलित भक्ति रूपिणी कल्पलता वाले अतिसरस इस वृन्दावन महाक्षेत्र में आने वाले सभी प्राणी भक्त ही होंगे, वे मुक्ता कैसे हो जाते ।।१२७।।

हंसती हुई ललिता बोली—विशाखे ! तब तो तुम्हारा यह कथन स्पष्ट ही है कि यह कामिनी सङ्ग का हीं प्रभाव है, अब तू ही इस वाक्य की विस्तार से व्याख्या कर ।।१२८।।

विशाखा बोली—"योगारूढ़ सिद्ध योगी भी नीच की संगति से पतित हो जाते हैं फिर अल्प सिद्धि प्राप्त योगियों की तो बात ही क्या है" इस न्याय से शरीर, मन तथा वाणी से छिद्रवाली वंशी के इस श्यामल रसिक, स्त्रीलम्पट के क्षण मात्र सङ्ग से मुक्ता (मुक्त पुरुष) भी भूमि में गर्भवास के द्वारा

जन्म को प्राप्त हुए और छिद्रयुक्त होकर गुण (धागे अथवा सत्वरज आदि मायिक गुणों) में बँध गऐ ।।१२९।।

विशाखा के यह वचन सुन मैं बोला—हे विशाखे ! तू सर्वथा सत्य ही कह रही है ।।१३०।।

सुबल—वह कैसे ? ।।१३१।।

तब मैंने कहा—काम विलास के अध्याय के मेरे सुन्दरता, चतुरता आदि गुणों को नारद आदि मुनि गणों के मुख से सुनकर दण्डकारण्यवासी जीवन मुक्तों ने कठोर तप आदि का अनुष्ठान कर इस गोकुल वनमें श्रेष्ठ गोपों के घरों में जन्म धारण किया। वे ही चातुरी सार आदि गुणों से परिपूर्ण होकर ये गोपियाँ मेरे हृदय पर माला के समान विलास करती हैं। इसी प्रकार और भी परम मुक्त महात्मा मेरे अचिन्त्य गुणों से आकृष्ट होकर इस व्रज वन में नित्य सिद्ध स्थावर-जंगम पशुपक्षी-वृक्ष आदि बन कर मेरे को आनन्दित करते हुए परमानन्द का आस्वादन कर रहे हैं ।।१३२।।

सुबल— हे मित्र ! बहुत सुन्दर बात कही है ।।१३३।।

ललिता कुछ हँसती हुई बोली—यदि आप ऐसे महासिद्ध हो कि इस भूमि के प्रभाव विना (जहाँ तहाँ) आपकी सिद्धि के प्रभाव से मुक्ता उत्पन्न होते हैं तो ऐसे परम सिद्ध आप कुछ अधिक धन-लाभ के लिए बिक्री रूप हीन वृत्ति क्यों करने लगे ? ।।१३४।।

तदनन्तर मैंने कहा—अरी मूर्खे ललितिके ! यौवनरूपी धन के गर्व में आकर जिस प्रकार आप सब (गोपियाँ) निज धर्म का परित्याग करके इधर उधर घूमती हो, उसी प्रकार अपने धर्म में परिनिष्ठित वैश्यशिरोमणि श्रीव्रजराज का पुत्र मैं अपने धर्म को छोड़कर उच्छृङ्खल नहीं हूँ। शास्त्रों में 'कृषि, वाणिज्य, गोपालन तथा व्याज, व्यापार—ये चार वृत्तियाँ वैश्यों के लिए कही गयी हैं। इनमें से एक वृत्ति द्वारा भी सर्वसिद्धि की वृद्धि होती है। जब इन चारों वृत्तियों को करने लग जाऊँगा तब तो मेरी उन्नति अति-पराकाष्ठा पर पहुँच जायगी ।।१३५'।

मुसकराते हुए नान्दीमुखी—हे स्वधर्मनिष्ठ युवराज ! आपकी कृषि, वाणिज्य तथा गोरक्षा ये तीन वृत्तियाँ तो हमने स्पष्ट अनुभव कर ली परन्तु वृद्धि (व्याज) वृत्ति तो कभी नहीं देखी ।।१३६।।

मैंने कहा—नान्दीमुखि ! वह वृद्धि जीविका भी मैं आरम्भ कर रहा हूँ। क्या तुम्हें पता नहीं ? इस समय मुक्ताओं के अत्यन्त अभाव के कारण संक्षुब्ध इन गोपियों के साथ मनोवाञ्छित धर्म पूर्वक मुक्ताव्यापार को लेकर ही वृद्धि वृत्ति—व्याज प्रारम्भ कर रहा हूँ ।।१३७।।

मुसकराकर विशाखा बोली—हे सुबल ! जो व्यक्ति जिस कार्य में अनुरक्त होता है, चाहे वह कितना निन्दनीय ही हो, वह उसकी प्रशंसा ही करता है। अतः अतिशय अधर्म स्वरूप कार्य की तुम्हारा प्रिय सखा जो प्रशंसा कर रहा है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है ।।१३८।।

सुबल बोला—नान्दीमुखि ! मेरा सखा केवल धन-वृद्धि का ही लाभ नहीं कर रहा, अपितु प्रतिक्षण अन्यान्य पदार्थों का भी वृद्धि लाभ ले रहा है ।।१३९।।

नान्दीमुखी—किस किस पदार्थ का ? ।।१४०।।

सुबल—पहले तो सम्पूर्ण अङ्गों में करोड़ों काम विजयी तारुण्य का, नेत्राञ्चल में चञ्चल-कमलविनिन्दकघूर्णा का और भाषण में अमृतरस से उज्ज्वल माधुरी का लाभ ले रहा है ।।१४१।।

मधुमङ्गल—अरे सुबल ! इनसे भिन्न अन्यान्य पदार्थों का वृद्धिलाभ क्या तू भूल गया ?॥१४२

सुबल—वह क्या ? तू ही स्मरण करा दे ॥१४३॥

मधुमङ्गल—मकर कुण्डल—मणिमंजीर, हार, कंकण-केयूर, मणिमुद्रिका सहित परमसौन्दर्य दर्प आदि मधुर केलि विलासों का अर्थात् सम्पूर्ण भूषणों से भूषित तथा निज सुन्दरता की सीमा की स्वाभिमानी रमणियों के साथ क्रीड़ा आदि का लाभ ॥१४४॥

ललिता—हे आर्य ! अपने इस कथन में एक मुख्य वस्तु के वृद्धिलाभ को क्यों छिपा गए ॥१४५

नान्दीमुखी—किस वस्तु का ? ॥१४६॥

ललिता—साध्वी गोपाङ्गनाओं के अधरामृत उच्छिष्ठ का ॥ ४६॥

मुस्कराती हुई राधा बोली- ललिते ! तू सर्वथा सत्य रहस्य को प्रकट कर रही है। यही तो इसका भोजन है। परम सुन्दर (अधरामृत) रसायन का पान का, बाहु युगल में उत्तम इन्द्रनीलमणि की अर्गला के दर्प दलन का, हृदय पर मरकत मणि के किवाड़ों के अहंकार विध्वंसकारी विस्तार का, दोनों उरुभागों पर मरकतमय केले के खंभों के गर्व को चूर करने वाली विस्तृता का; मुख पर अनन्त शरत् कालीन पूर्ण चन्द्रमाओं को, संकोच में डालने वाली निर्भर शोभा का, चरणों पर आम्र के नूतन पल्लवों की प्रशंसा को त्रास देने वाली माधुरी का, सर्वाङ्ग में (विश्व की) मधुरतर सन्निवेश कुशलता को लज्जित करने वाले परम सुन्दर सौष्ठव का और शरीर पर नवीन नवीन मेघ, इन्दीवर तथा इन्द्र-नीलमणि की कान्ति को हरण करने वाले सर्वत्र फैल रहे प्रकट उज्ज्वलता—समूह का लाभ इसे प्राप्त हुआ है। उपरोक्त वस्तुओं के कारण इसका सम्पूर्ण विस्तार युक्त विलास चल रहा है। राधा के मृदु-वचनामृत स्वरूप इन वाक्यों को विशाखा ने मुसकराते हुए स्फुट वाक्य रूपी पुष्पों द्वारा और भी सुगन्धि प्रदान की ॥१४७॥

मधुमङ्गल - (कुछ विचार कर) परायी–रमणियों के अधरामृतलोलुप मित्र तुझे ये धूर्त गोपियाँ मीठी मीठी वचन–माधुरी के द्वारा लुभाकर लम्बी चौड़ी व्याज की बातें बनाकर मोतियों को ले जायेंगीं। फिर जटिला, आदि गुरुजनों के बीच किले में पहुँच कर तुम्हें मूल धन भी न देंगीं; ब्याज की बात तो दूर रही। यह मैं अच्छो प्रकार समझा रहा हूँ। हित की बात समझाना मित्र का कर्तव्य है, है, वह मैं कर चुका आगे तुम्हें जो अच्छा लगे सो करो ॥१४८॥

मधुमङ्गल की यह बात सुनकर दाँतों तले जोभ दबाता हुआ मैं बोला—अरे मित्र ! ये राधा आदि कुलवधुऐं लेन-देन व्यापार में महा पवित्र हैं। इस बात को तू नहीं जानता। अतः ऐसा कर रहा है। अच्छा सुन, अभी कुछ समय पहले राधा ने अपने अधरामृत का दान देकर मुझे अतीव सन्तुष्ट किया है। बदले में प्रातःकाल मेरे द्वारा दो पद्मरागमणियों की रेखाओं से अपने स्तनों को भूषित किया। तत्पश्चात् सायं काल को वे पद्मरागेरखाएं मेरे हृदय पर चौगुनी करके प्रदान कीं। परसों सायंकाल ललिता ने मेरा अमृत–स्रावी चुम्बक (चुम्बन) रत्न लिया था। फिर कलह पूर्वक तिगुना दे करके ऋण उतारा। विशाखा ने भी रात्रि के समय परम आग्रह-पूर्वक मेरे मधुर-अधरामृत को ग्रहण कर प्रातःकाल ही अनेक गुना करके निज-अधरामृत देकर मुझे भली प्रकार तृप्त किया। चम्पकलता आदि तो बार-बार आग्रह पूर्वक मेरे से अपने अभीष्ट पदार्थों को ग्रहण कर कोई दुगुना तो कोई तिगुना प्रदान करके मुझे सर्वथा सन्तुष्ट करने वाली हैं। बस, केवल दो ही सखियां इनमें ऐसी हैं जिनका देने के समय व्यवहार कुछ दूसरा ही हो जाता है ॥१४९॥

नान्दीमुखी—वे कौन ? ।।१५०।।

मैंने कहा—एक तो यह रङ्गणवल्ली जो मेरे हृदय पर "अपने हृदयस्थित गोलाकार मधुर फलों की जोड़ी को तीन बार प्रदान करूँगी"—ऐसी प्रतिज्ञा करके मेरे से करमर्दफलों की जोड़ी लेकर गई। बस एक बार तो प्रतिज्ञा की हुई वस्तु दी, किन्तु बाकी दो बार आजतक नहीं चुका रही है। निकट आकर भाग जाती है। दूसरी रंगणमाला की सखी तुलसी है। मेरे परिरम्भण (आलिगन) गुच्छे को लेकर उससे दुगुना देने का वचन दे गई। (माँगने पर) अब दूँगी; तब दूँगी; इत्यादि बहाने करती हुई समय बिता रही है अभी तक इसने मूल भी नहीं चुकाया, वृद्धि की तो बात ही क्या है ? ।।१५१।।

मधुमङ्गल—अरी रंगणवल्ली ! अरी तुलसी ! तुम दोनों के द्वारा अपनी वस्तु न देने पर भी हमारा प्रिय सखा अपने सहज सरल स्वभाव के कारण तुमसे प्रेम पूर्वक ही बोल-बता रहा है। ऐसे सरल तथा प्रिय-वादी इस के साथ वञ्चना चातुरी करते हुए तुमको कृतघ्नता लोकापवाद एवं धर्म का भी भय नहीं लगता ? ।।१५२।।

इतना सुनकर हँसती हुई ललिता कहने लगी—हे आर्य मधुमङ्गल ! तुम्हारे सखा का पूर्वोक्त कथन इस सम्पूर्ण गोष्ठ में किसको अमृत के समान नहीं लगता यदि इसके वाक्यों में परमसिद्धि की महती सुगन्धि न भरी होती। परन्तु इसके कथन में प्रत्येक शब्द तथा प्रत्येक अक्षर ही मिथ्या है। ललिता के ये वचन सुनकर हँसी तथा कोलाहल से सभी गोपियाँ ललिता को साधुवाद देते हुए आलिंगन करने लगीं ! राधा ने भी मन से ललिता को आलिंगन किया ।।१५३।।

नान्दीमुखी—हे मोहन ! इन दोनों पर अविश्वास क्यों करते हो ? यह रंगणमालिका ललिता की प्रेमपात्री है और इसकी दूसरी विशाखा की प्रियशिष्या है, तो ये दोनों ललिता और विशाखा रंगण माला तथा तुलसी को समझा कर तुम्हारा बाकी द्रव्य दिलवा देंगी। जिससे रङ्गणमाला एवं तुलसी इन दोनों के साथ आपका शुद्धभाव पूर्वक वारंवार व्यवहार चलता रहेगा। यदि ये दोनों तुम्हारा द्रव्य देने में असमर्थ होंगीं, तो इनके प्रेम के कारण ललिता-विशाखा ही बाकी द्रव्य चुका देंगी। यदि ये दोनों भी शीघ्र देना स्वीकार न करें तो भी आप इन पर कोई इलजाम नहीं लगायें। जब आप अनङ्ग-मञ्जरी की बहिन श्रीराधा के सामने फूत्कार मात्र आरम्भ करोगे तो भय के कारण वे दोनों स्वीकृत व्याज समेत शीघ्र ही आपका द्रव्य देंगी।" यह बात सुनकर सभी गोपियाँ नान्दीमुखी तथा मेरी ओर कुटिल भ्रकुटि करके देखने लगीं। उस समय तुङ्गविद्या आगे बढ़कर मन में मुसकराती हुई कहने लगी—हे सखियो ! एक अपूर्व वार्ता सुनो ।।१५४।।

सब सखी—वह क्या ? ।।१५५।।

तुङ्गविद्या- कान्तदर्प एक आचार्य का नाम आपने सुना है ? ।।१५६।।

ललिता—परम्परा से यह नाम सुना तो है, परन्तु अच्छी प्रकार उससे परिचय नहीं है ।।१५७।।

तुङ्गविद्या—उसके प्रिय शिष्य श्यामल मिश्रने गुरु के बनाए सूत्रों पर "सन्धिचतुष्टयाख्यात-वृत्ति" नाम से व्याख्या की है। व्याख्या की गईं उन चार वृत्तियों को आपने देखा है क्या ? ।।१५८।।

विशाखा—विष्णु ! विष्णु ! उन वृत्तियों का दर्शन तो दूर रहा आज तक हमने श्यामल मिश्र का नाम तक कभी नहीं सुना ।।१५९।।

ललिता अभिप्राय रहित कहने लगी—हे तुङ्गविद्ये ! उस आचार्य से तुम्हारा परिचय कहाँ हुआ ? ॥१६०॥

तुङ्गविद्या—सखी-स्थली पर एक महापद्मा नाम की अप्सरा (नदी) है। उस वृत्ति पाठ के लिए उस आचार्य को ढूँढ़ती हुई यहाँ आई थी ॥१६१॥

तदनन्तर मैंने कहा—तुङ्गविद्ये ! इतने दूर स्थान पर वह महापद्मा कैसे गयी ? ॥१६२॥

तुङ्गविद्या—अपनी वर्द्धित शक्ति के प्रभाव से—इतना सुनकर सभी हंसने लगीं ॥१६३॥

ललिता—फिर आगे क्या हुआ ?

तुङ्गविद्या—श्यामल मिश्र से अभिन्न अलीकराज पण्डित ने पहले नर्मपंजिका (परिहास व्याख्या) क्रय-विक्रय पंजिका बना रखी थी। अब अलीक पञ्जिका तथा आदान-प्रदान पंजिका क्रम पूर्वक ये चार पञ्जिका (व्याख्या) बढ़ा चढ़ा कर तैयार कर रखी हैं। मैं समझती हूँ, इन चारों पंजिकाओं को आप सब ने सुना होगा ? ॥१६४॥

ललिता--हाँ हाँ सुनी हैं, तथा इनके निर्माता का भी हमें अच्छी प्रकार अनुभव है ॥१६५॥

तुङ्गविद्या—उन श्याममिश्र तथा अलीकराज से भी अधिक प्रमाणयुक्त तीव्र बुद्धि-प्रगल्भता-पूर्वक उनके सहाध्यायी ने कुहक भट्ट उन चारों वृत्तियों की टीका एक साथ प्रारम्भ कर दी है ॥१६६॥

चम्पकलता—तुङ्गविद्ये ! तू सम्पूर्ण विद्याओं में प्रवीण है अतः इन चारों शास्त्रकर्ताओं के नाम की व्युत्पत्ति हम सभी तुमसे जानने की अभिलाषा कर रहीं हैं ॥१६७॥

विशाखा—'आचार्य' और 'भट्ट' इन दोनों का अर्थ तो स्पष्ट ही है। 'मिश्र" तथा "पण्डित" इन दोनों के नाम की व्युत्पत्ति विस्तार पूर्वक बताओ ॥१६८॥

तुङ्गविद्या मुसकरा कर—दोष भी है, और गुण भी है, इन दोनों का जिसमें मिश्रण रहता है वह "मिश्र" कहलाता है ॥१६९॥

नान्दीमुखी—कौन सा दोष और गुण कौन सा ? १७०॥

तुङ्गविद्या—विदग्धता (चतुराई) तथा अविदग्धता (मूर्खता) का कोई विचार न करके जहाँ तहाँ सभी स्थानों पर प्रवृति ही 'दोष' है। तथा सरलता विशेष के कारण उत्तम और अधम का विचार न करते हुए विना विषमता के सर्वत्र समान रूप से प्रवृत्ति ही 'गुण' है ॥१७१॥

ललिता मन्द मुस्कराती हुई—यह मिश्र पदवी तो सर्वथा उचित है ॥१७२॥

चित्रा—अब 'पण्डित' शब्द का निर्वचन (व्युत्पत्ति) करो ॥१७३॥

तुङ्गविद्या—सत् और असत् इन दोनों का ठीक ठीक विचार करने वाली बुद्धि का नाम है 'पण्डा'। उस बुद्धि से युक्त व्यक्ति ही 'पण्डित' कहा जाता है। पण्डित शब्द में बुद्धि की गौरवता है। 'पूर्व और पर में पर विधि बलवान होता है। इस प्रकार विचार कर अर्थात् असद् विचार वाली जो षण्डा (बुद्धि) है उसी को यहाँ उत्तम होने से ग्रहण किया गया है। अतः असत्-विचार बुद्धिवान् ही पण्डित है ॥१७४॥

चित्रा—सखि तुङ्गविद्ये ! सन्धि आदि जो चार वृत्तियां कही हैं, उनका भी अर्थ स्पष्ट करके कहो ॥१७५॥

तुंगविद्या—चित्रे ! हमारे सम्पूर्ण गोष्ठ में ऐसे प्रपंचों में ललिता प्रवीण है, यह अर्थ वही कहेगी ।।१७६।।

ललिता—चित्रे ! मैंने तो कभी इस प्रसंग को लेशमात्र भी नहीं सुना है । इस प्रकार की व्याख्या करने वाली तुंगविद्या ही इसके अर्थ को जानती है ।।१७७।।

चित्रा—तुङ्गविद्ये ! तुझे मेरे शिर की शपथ; तू ही इसकी व्याख्या कर ।।१७८।।

तदनन्तर अत्यन्त लज्जा के कारण स्वयं कुछ न कह कर राधिका की अति प्रीतिपात्री तथा राधा को सुख प्रदानकारिणी ब्राह्मण–कुमारी, हँसाने-हँसने में परम कुशल तुङ्गनर्मा सखी की ओर मुसकराते हुए तुङ्गविद्या ने नेत्रों द्वारा इशारा किया । तब तुङ्गनर्मा कुछ आगे आकर मुसकराकर मेरे मुख की ओर देखकर कहने लगी—हे चित्रे ! हम तो उस अर्थ को नहीं जानतीं परन्तु वह अप्सरा वारंवार विनय पूर्वक आग्रह करके यथार्थ नाम वाले मिश्र को प्रसन्न करके उनसे वह चारों वृत्तियाँ पढ़ने लगी । उस अप्सरा ने मेरे सहित तुङ्गविद्या के सामने सांगरूप से जो व्याख्या की वह संक्षेप से मैं कहती हूँ ।सुनो—प्रथम स्वयं अथवा दूती द्वारा अभियोग करके युवक-युवती का जो मिलन है वह है सन्धि । सन्धि की वृत्ति अर्थात् विवरण अभिसार आदि हैं । तत्पश्चात् १ कुचस्पर्श, २ आलिंगन ३ चुम्बन, ४ अधरपान रूप शृङ्गार भेदों के ये चारों प्रधान अङ्ग हैं । १ नखक्षतादि, २ बाहुबन्धन भङ्गी आदि, ३ गण्डस्थल (गालों) पर विलास पूर्वक मुख कमल स्थापन आदि तथा ४ परम विदग्धता से दर्शन आदि यह क्रमशः चारों वृत्तियाँ कहीं गई हैं । तदनन्तर (युवक-युवती) का परस्पर नर्म (प्रेम परिहास पूर्ण) संभाषण ही 'आख्यात' नाम से कहा जाता है । उसकी वृत्ति है परस्पर विजय की अभिलाषा से गूढ़ अर्थ युक्त प्रहेलिका आदि का प्रयोग करना ।।१७९।।

चित्रा मुस्कराती हुई—हे तुङ्गनर्मे ! जो हमने अभी तक कहीं नहीं सुना, ऐसा अपूर्व व्याख्यान आज तुमने हमें सुनाया है । अब आपने जो वृत्तियाँ सुनाई हैं, उनके अर्थों को अच्छी प्रकार समझाओ ।।१८०।।

तुङ्गनर्मा—जो आनन्द प्रदान करे, उसका नाम है 'आनन्दकृत्-संभोग' । उसकी वृत्ति है शीत्कार नेत्र बन्द कर लेना आदि । कलापप्रिय (श्रीकृष्ण पक्ष में मयूर पंख प्रिय, आचार्य पक्ष में कलाप नामक व्याकरण प्रिय) कान्तदर्प नामक आचार्य के अवतारी इस सिद्धकुमार ने उन उन विग्रहों (श्रीकृष्ण-शरीर, आचार्य समास) के द्वारा जो कलाप व्याकरण का निर्माण किया है, वह अत्यन्त उपयोगी तथा अतिशय रहस्य स्वरूप है । अतः स्पष्ट न कह कर भङ्गीरूप से भिन्न भिन्न नामों से संगोपन करते हुए ही वर्णन किया है । उसको आप जैसी रसिक प्रेममयी परमचतुरा सखीजन कुशल बुद्धि सहचरी द्वारा सम्यक् विचार करके अनुभव कर सकती हैं ।।१८१।।

चम्पकलता मन्द मुस्कराती हुई - हे तुङ्गविद्ये ! इन भट्ट महोदय के दो ही तो हाथ है; उसमें भी ये परम सुकुमार हैं, तो फिर एक साथ चार चार टीकाएँ ये कैसे लिख सकते हैं ।।१७२।।

तुङ्गविद्या—अरी भोली ! यह भट्टजी अपनी इन्द्रजाल की शक्ति से चार भुजाएं भी प्रकट कर सकता है ।।१८३।।

ललिता—सत्य है, सत्य है, वसन्त कालीन रासोल्लास महोत्सव के समय पारसौली के समीप प्रविष्टक नामक वन-भाग में निकुञ्ज के बीच परस्त्री रत्नों को हरण करने के लिए तथा समस्त गोपियों

की वंचना करने के लिए अपनी स्वरूप माधुरी को छिपाकर कुहक (कपट) के बल से इसने चार भुजा प्रकट की थीं ।।१८४।।

विशाखा–ललिते ! यह सर्वथा सत्य ही है कि ये सब इसके कपट बल से प्रकाशित हुआ है। अपनी प्रियसखी (चन्द्रावली) के साथ गद्य-पद्यमय परिहास गोष्ठी करते हुए उस प्रिस सखी को जीतने के लिए निज कपट पाण्डित्य के द्वारा वृद्धि वृत्ति का आचरण करते हुए दोनों पदों (चरणों दूसरे अर्थ में क्रय–विक्रय रूप व्यापार) की वृद्धि भी कभी कभी यह कर रहा था ऐसा हमने भी देखा है ।।१८५।।

सुदेवी—हे विशाखे ! इन चारों शास्त्रकारों का प्रायः एक हो व्यवसाय क्यों दीखता है ? ।।१८६।।

नान्दीमुखी—हे सुदेवि ! थोड़े से अक्षरों में जो ये विवरण तुंगनर्मा ने बताया है, वह क्या तुमने नहीं सुना ? ।।१८७।।

सुदेवी—उस समय मेरा मन यावट ग्राम में स्थित प्रिय सखी में लगा हुआ था, इस कारण भली प्रकार उसको समझ नहीं सकी; कृपा करके तुम ही उसको विस्तृत कथा द्वारा सुना दो ।।१८८।।

नान्दीमुखी हे सुदेवि ! सुनो; वस्तुतः ये (ऊपर कहे गए) चारों ही कुहक भट्ट नामधारी एक ही कुमार है (अर्थात् श्रीकृष्ण ही है) वही कुहकभट्ट अपने विनोद सम्पादन के लिए कार्य भेद से अपने परम प्रवल कुहक (कपट) प्रभाव से प्रकट किए हुए एक शरीर द्वारा "कान्तदर्पाचार्य" इस नाम से तथा दूसरे शरीर द्वारा "श्यामलमिश्र" इस पदवी पर आरूढ़ हो गया है। 'अलीकराजपण्डित' (झूठों का बादशाह) के साथ तो स्पष्ट ही इसका भिन्न शरीर है ही नहीं, अर्थात् वही है, किन्तु वही धर्मात्मा-कुमार (श्यामल मिश्र ही) है। यथार्थ इतना समझो कि विलास विशेष के उल्लास के कारण कुछ प्रकाश भेद से अलीकराज पण्डित उन भिन्न नामों को स्वीकार करके स्वेच्छा पूर्वक अपने परिकर जन तथा स्वयं को आनन्द कल्लोल में प्रवेश करा कर बिहार कर रहा है ।।१८९।।

इतना सुनकर मैं बोला— हौं, हो ! चतुर्भुज आदि सम्पूर्ण लीलाएं ये मेरी सिद्धि के द्वारा ही तो प्रकाशित हुई हैं। उन लीलाओं को ये उग्रस्वभावा महामूर्ख कुहक भट्टा (कपट कुशला) गोपियाँ "(कपट) के प्रभाव से हुई"—ऐसी निरन्तर घोषणा कर रही हैं।

मेरा यह वाक्य सुनकर सभी गोपियाँ—इन सिद्ध गोस्वामी ने स्वप्रभाव से अपनी अलीकता (झूठापन) भी मेरी सिद्धि है ऐसा कह कर अपने मुख से ही निर्धारित कर दी। इस प्रकार कहती हुईं हास कुतूहल में सभी उल्लास युक्त हो गईं ।।१९०।।

तब तो मैं अपने मन में विचार करने लगा—अरे ! आश्चर्य है, आश्चर्य है ! इन वाचाल गोपियों ने अपनी वचन परिपाटी द्वारा मुझमें अतिशय अलीकता (मिथ्या भाव ही सिद्ध कर दिया। ऐसा मन में विचार कर लज्जा के कारण उस बात को अनसुनी मुद्रा द्वारा भली प्रकार विवेचना करके कुछ मुसकरा कर मैंने कहा—अरी यौवना विलासिनियो ! यदि मेरी सिद्धि के विषय में तुम्हें विश्वास नहीं है तो तुम्हारे सामने ही अपनी सिद्धि दिखाता हुआ प्रथम इस चम्पकलता के कण्ठ में वनमाला स्वरूप होकर विराजता हूँ। ऐसा कह कर मुसकराता हुआ चम्पकलता के पास मैं जाने लगा। तब "हे मित्र ! तुम सिद्ध हो और सिद्ध का परस्त्री-स्पर्श करना महान अन्याय होता है" ऐसा परिहास करते हुए मधुमङ्गल ने मुझे बीच में ही रोक लिया। तब मैं बोला—अरे मित्र ! सिद्ध का सिद्धा से परस्पर संयोग परमानन्द लाभकारी ही होता है; अन्याय नहीं।

नारद जीने कहा है—'अपने यूथ का मिलन परमानन्द लाभ के लिए होता है।'—यह सुन कर सब गोपियाँ तो हँसने लगीं और चम्पक लता परमानन्द से उत्पन्न अपने शरीर के कम्प आदि सात्त्विक विकारों को भय के समान छिपाती हुई भागकर कुञ्ज के भीतर प्रविष्ट हो गई। वहां राधा की पीठ का आलिंगन कर छिप कर बैठ गई ॥१६१॥

तदनन्तर मैं मोतियों को हाथ से चलाता हुआ चित्रा से कहने लगा—हे चित्रे! मेरे पास आकर मुक्ताओं का मूल्य सुन। तू शृङ्गार कर्म में बड़ी कुशल है। तेरी मूर्ति रूप पिटारी में शृङ्गार सम्बन्धी बहुत से अलंकार विद्यमान हैं, यह रहस्य तेरी प्राणप्रिय सखी (राधा) ने मुझे बताया है। (स्वशरीररूपपिटारी में स्थित) उन अलंकारों से विचित्र शृङ्गार रचना कर मेरे संम्पूर्ण अङ्गों को इस प्रकार भूषित कर। उससे मैं भी तेरे वक्षस्थल पर विराजमान स्वर्ण घड़ों की जोड़ी को अर्धचन्द्र-पत्रांकुर आदि के द्वारा सन्तोष पूर्वक अलंकृत करके तेरे चित्रकलाकौशल विशेष को तेरी प्रियसखी राधा के समक्ष भली प्रकार कीर्तन करता हुआ उसे भी आनन्द प्रदान करूँगा ॥१६२॥

इतना सुनते ही क्रोध पूर्वक चित्रा बोली—ओह! तुम निरन्तर अति विकट भाण्डपन के दुर्दान्त कोप से आविष्ट हो रहे हो तथा त्रिभुवन में प्रसिद्ध धृष्टता में उद्‌भट षठवीरों के असंख्य नगरों के महासम्राट बन रहे हो। एक मात्र निर्भय वाटिका की हरिणियों के नट! तुम्हारे योग्य प्रसाधन—शृङ्गार कर्म में कुशल उन (चन्द्रावली आदि) गोपियों के द्वारा सन्तोष पूर्वक सुचित्रित होकर उनकी सुन्दर स्वर द्वारा श्लाघा करते हुए निरन्तर उनका ही कीर्तन कीजिए। यहाँ से तुम शीघ्र ही भाग जाओ। यह सुनकर हँसती हुई सभी गोपियाँ चित्रा की स्तुति करने लगीं ॥१६३॥

तदनन्तर नान्दीमुखी कहने लगी—हे गोकुल मङ्गल! सम्पूर्ण गोकुलवासियों की जीवन-औषधिरूप है तुम्हारे मुखचन्द्र प्रकाश। अपने जीवन स्वरूप आपको उदास देख कर हमारे हृदय मर्मव्रण की वेदना रूप अग्नि से जलकर फटे जा रहे हैं। इसका कारण कृपा कर अवश्य बताइये। जिससे श्रीभगवती के द्वारा उसका प्रतीकार शीघ्र करा कर श्रीमान आपको सर्वथा आनन्द प्रदान कर हम सब अपने को सुखी करें ॥१६४॥

नान्दीमुखी के इस प्रकार के वचन सुनकर व्याकुल सा होकर मैं कहने लगा— हे नान्दीमुखि! सुनो, जो कहीं न देखी तथा सुनी भी कहीं नहीं ऐसी चारुचातुरी सौन्दर्य, महाविदग्धता, विविध महादुर्बोध परिहास कार्य में निपुणता जिनमें है, जो सम्पूर्ण शास्त्रों के स्वाध्याय में प्रथम आचार्य-स्वरूपा, सम्पूर्ण कल्याण गुणरूप मणियों की पिटारी स्वरूपा तथा स्वपरिजनगण की जीवन भूता हैं नूतन कर्पूर जैसी मुसकराहट से सुवासित जिनके वचनामृत हैं, इन्द्रपत्नी शची आदि सौभाग्यवतीवृन्द जिनके सौभाग्य की सराहना करती हैं, जिनके सौन्दर्य-प्रकाशयुक्त नखों के अग्रभाग का लक्ष्मी प्रभृति गौरीगण, अनुसन्धान करती हैं, देवता—मनुष्यगण गन्धर्व-विद्याधर-मुनिश्रेष्ठों से वन्दित सैकड़ों भुवनेश्वरी वृन्द जिनके चरण कमल की बन्दना करती हैं, समस्त-वैकुण्ठों से भी उत्तम जो परव्योम हैं, उससे भी उत्कृष्ट महिमा से पूर्ण श्रीवृन्दावन के महायोगपीठ के महासिंहासन पर जिनका महारत्नमय अभिषेक हुआ है ऐसी महादेवी, अमृतसिन्धु के मन्थन से प्रकटित "रा, धा" इन दो अक्षरों के घनीभूत सार स्वरूप दो कलसों से निर्मित 'राधा' नाम से प्रकटित हुई है। उसने अमृतसार प्रेम विशेष में चतुर्दश भुवनों को आप्यायित एवं शीतल करा दिया है।

क्षीरसिन्धु से लक्ष्मी के साथ एक अमृतकलस निकला था। यहाँ अमृतसिन्धु से प्रकट महालक्ष्मी श्रीराधा के रा और धा ये दो अमृतकलस निकले हैं। वहाँ का अमृतकलस केवल देवलोक के एक सुरक्षित स्थान में विद्यमान है। सब के लिये दुर्लभ है। इनके कलसों में भरे राधा नामक अमृत से चतुर्दश भुवन सराबोर एवं शीतल हो रहे हैं।

ऐसी महालक्ष्मी राधा चरण कमल के निरन्तर सुरभित, असीम सौन्दर्यशाली, अतुलनीय कोमल तथा अत्यधिक अरुणता के कारण रक्तोत्पल को भी पराजित करने वाले हैं। उसकी परिचर्या ही मेरा एकमात्र जीवन है। उसकी परिचर्या में मैं सर्व प्रकार कुशल हूँ, परन्तु वह (श्रीराधा) निसंकोच रूप से मेरे को बुलाकर मेरी अभिलषित निज अङ्ग सेवा प्रदान नहीं कर रही है। इसलिए मैं समझता हूँ कि उसकी मुझमें मधुर प्रीति नहीं है। ऐसा निश्चय कर के अब मैं, जैसा मैंने श्रीभगवती के मुख से सुना है कि 'तुङ्गविद्या राधाकी पूर्ण अंशभूता तथा यथार्थनामवाली (परमविदुषी) है; अपने अभीष्ट को शीघ्र पूर्ण करने के लिए इस (तुङ्गविद्या) को गुरु बना कर महादेवीमंत्रराज (राधामंत्र) की दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ। इस कार्य में मैं भगवती पूर्णमासी की अभिन्नस्वरूपा तुम्हारी शरण में आया हूँ, तुम मेरी अभिलाषा पूर्ण करो ॥१९५॥

नान्दीमुखी (सहास्य)—हे सुलक्षण ! प्रथम तो तुम शास्त्र मर्यादा के अनुसार गुरु की सेवा करो ॥१९६॥

फिर मैं बोला—बहुत सुन्दर बात है। पहले गुरु और शिष्य की परीक्षा भी होनी चाहिए। यह तीन रात्रि लगातार किसी निर्जन कुन्ज में मुझे एक क्षण में स्त्री तथा दूसरे क्षण में पुरुष बना कर अपनी विद्या का प्रभाव दिखावे। तत्पश्चात् विश्वास होने पर मैं इसके चरणों में महावर लगाना, नितम्ब-दबाना, कुच- खुजलाना, वेणी का बांधना आदि सब परिचर्या सुन्दर रीति से करूँगा। जिससे प्रसन्न होकर "तेरी सेवा में मैं परम प्रसन्न हूँ" ऐसा कहकर यह मुझे मनोभवानन्द कर-निकुञ्ज मण्डप की वेदी से ले जाये। वहां बैठाकर कहे कि—विचक्षणजी ! मेरे वक्षःस्थल पर स्थित स्वर्ण-कलसों की जोड़ी को स्पर्श करते हुए कस्तूरी कुंकम आदि का लेप कर दो। उन्हें मणि तथा पुष्पों की माला से वेष्टित कर दो। इस प्रकार वाक्य रूप मन्त्रों से कलस स्थापन कराकर अपने वक्षोज के महाप्रसाद भूत कुंकुम से मेरे मस्तक आदि अङ्गों में तिलक करके कस्तूरी द्वारा मेरे वक्षःस्थल पर महादेवी राधा के नाम की मुद्रा लिख दें। फिर बाहु युगल पर उसी महादेवी के चरणचिन्हों की मुद्राओं को छाप कर अपने कण्ठ से एकावली माला उतार मेरे कण्ठ में पहना दे। फिर मेरे वक्षः के दोनों भागों में अपने कुचयुगल, कन्धों पर बाहुलताएँ, मुख पर अपना अधर तथा जिनको (काम) शास्त्र से अनभिज्ञ मैं नहीं जानता, यह परम-आगम शास्त्र की आचार्या स्वयं मेरे उन अङ्गों पर अपने अङ्गों को अर्पण करे। तत्पश्चात् षडंगन्यास करके "षड़ाक्षर मन्त्रराज की स्वयं ऋषि, गायत्री छन्द, श्रीगान्धर्व देवता, विन्दु-सहित प्रथम वर्ण बीजशक्ति, उपास्या (श्रीराधा) एवं उपासक (श्रीकृष्ण) इन दोनों का परस्पर संयोग रति पूर्वक अभीष्ट काम सिद्धि हेतु विनियोग" इत्यादि यह पूर्वाङ्ग विधि सम्पादन करावे। फिर "अपने सरोवर के तीर पर विराजित कुन्जरङ्गस्थल पर नर्मनर्तन के द्वारा भङ्गीभाव से उस सभा में स्थित सखियों को आनन्द प्रदान करती हुई गौर कान्ति रक्तवस्त्र धारिणी, सुनेत्रा, मुस्कराती हुई श्याम के सम्पूर्ण मनोरथों को सिद्ध करने वाली श्यामा राधा का मैं आश्रय लेता हूँ।" ऐसा दीर्घकाल तक ध्यान करवा कर मुझ कामी के लिए कामबीज युक्त मन्त्रराज का उपदेश देकर मेरे को कृतार्थ करे।'

फिर मुझे उसकी इस प्रकार स्तुति करने की शिक्षा प्रदान करे—महाभाव रूप उज्ज्वल चिन्तामणि के द्वारा जिनका संपूर्ण शरीर उद्भासित हो रहा है, सखीगण के प्रणयरूप गन्ध युक्त श्रेष्ठ उद्वर्तन (उबटने) से जिनकी प्रभा बढ़ गई है ।।क।।

जो कारुण्य रूप अमृततरंगों से प्रातःकालीन स्नान करती हैं, तारुण्यरूप अमृतधारा से जो मध्य कालीन का स्नान एवं लावण्य अमृत वन्या से सायंकालीन स्नान कर लक्ष्मी को भी खिन्न करती हैं ।।ख।।

लज्जा रूप रेशमी वस्त्र से अङ्गों को जिसने ढक रखा है, सौन्दर्य, रूप कुंकम से जो विभूषित है, श्याम तथा चमकदार कस्तूरी से जिनका शरीर चित्रित है ।।ग।।

कम्प, अश्रु, पुलक, स्तम्भ, स्वेद, स्वरभेद, वैवर्ण्य, उन्माद, एवं जड़ता इन श्रेष्ठ नव रत्नालंकारों को जो धारण कर रही है ।।घ।।

प्रिय-भाषण आदि अनन्त गुण रूपी पुष्पों की जो माला पहने है, और धीरा-अधीरा भाव रूप सद्गन्ध युक्त पटवास से जो भूषित है ।।ङ।।

गुप्त मान ही जिसका केशपाश है, सौभाग्यरूपी तिलक से जो शोभित है, श्रीकृष्ण नाम यश सुनना ही जिनके मनोहर कर्ण— आभूषण हैं ।।च।।

अनुरागरूपी ताम्बूल से जिसके ओष्ठ लाल हो रहे हैं, प्रेम की कुटिलता ही जिनका काजल है, मन्द मुसकान रूपी कर्पूर से जो सुबासित है ।।छ।।

जो सौरम्य सौन्दर्यरूप अन्तःपुर में गर्वरूपी पलंग पर विलास पूर्वक विराजमान है, प्रेमवैचित्य रूपी पदक युक्त हार जिनके वक्षःस्थल पर डोलायमान है ।।ज।।

प्रणययुक्त क्रोध रूप चोलीबन्धन में जिसने स्तन-द्वय ढक रखे है, सपत्नीवृन्द के मुख तथा हृदय का शोषण करने वाला यश ही जिनकी कच्छपी नामक वीणा की झंकार है ।।झ।।

नवीनयौवन-रूपी अपनी सखो के कन्धे पर लीला रूप करकमल जिसने विन्यस्त किया हुआ है, जो श्यामा है तथा श्याम अर्थात् शृङ्गार रस के द्वारा मदन मत्तता रूप मधु का परिवेशन कर रही है ।।ञ।।

दांतों में तृण धारण कर यह जन तुमको साष्टाङ्ग नमस्कार पूर्वक यह प्रार्थना करता है कि 'अपने दास्य रूप अमृत सिंचन के द्वारा महा दुःखी इस जनको जीवन दान दो ।।ट।।

हा, हा, गान्धर्विके ! दयामय व्यक्ति शरण में आये हुए दुष्ट का भी त्याग नहीं करते, अतएव ऐसे शरणागत इस व्यक्ति का आप कदापि परित्याग न करें ।।ठ।।

श्रीग्रन्थकार उक्त स्तवराज की फलश्रुति कहते हैं—श्रीकृष्ण चन्द्र द्वारा इस प्रेमाम्भोजमरन्द' नामक स्तवराज का जो व्यक्ति श्रीराधा की कृपा प्राप्ति के लिये पाठ करेगा, उसको श्रीराधा का दास्य प्राप्त होगा ।।ड।।

मैंने कहा—इस प्रकार इस स्तवराज का भी यह तुङ्गविद्या गुरु मुझ शिष्य को उपदेश करे। फिर मुझे गुरु से अभीष्ट काम की उपलब्धि हो जायगी।

इस प्रकार मैं गद्गद् कण्ठ से कहता हुआ कम्पायमान शरीर को मैं जब गुरुके चरणों में डाल दूँगा। तब यह गुरु जी मुझको आनन्द सहित उठाकर आलिगन करे। अपने अधर का उच्छिष्ठ-

अमृत प्रसाद मेरे को खिलाएगी और अपने मुख का चर्वित ताम्बूल मेरे मुख में दे। ब्रह्मचारी के लिए ताम्बूल भक्षण अनुचित है यदि ऐसा समझे तो कर्पूर से सुवासित निज मुख की सुगन्धि से ही मेरी मुख-शुद्धि करे। तत्पश्चात् मैं कृतार्थ हो जाऊँगा तब वे इनको जितने मुक्ताफल अभीष्ट हैं, वे तथा और भी बहुत से मुक्ताफल दक्षिणा रूप में इन्हें समर्पण करूँगा। उन सबको स्वीकार कर ये मेरे ऊपर अनुग्रह करें ।।१९७।।

मेरे वचनों को सुन कर सभी गोपियां तुङ्गविद्या के मुख की ओर देखती हुई मुसकराने लगीं। तुङ्गविद्या छलकते हुए आनन्द को छिपाकर क्रोध में भरकर मुझे टेढ़ी भ्रकुटि से देखती हुई कहने लगी—अरी नान्दीमुखि ! तू सिद्धा तपस्विनी है; इसलिए उपरोक्त विधि से तू ही इसे दीक्षा प्रदान कर। सिद्धा से मन्त्र ग्रहण करने से इसकी अभीष्ट कामना शीघ्र ही पूर्ण होगी। इतना कह कर वह क्रोध पूर्वक घर की ओर चलने लगी। तब विशाखा उसका हाथ पकड़ कर लौटा लाई और हँसती हुई नान्दीमुखी से कहने लगी—हे नान्दीमुखि ! इस समय अपराधी श्रीकृष्ण के दीक्षा दान में बड़ा विघ्न हो रहा है। इसीलिये यह आचार्या तेरे पर क्रोध कर रही है ।।१९८।।

नान्दीमुखी—अरी मिथ्यावादिनि विशाखे ! सम्पूर्ण सद्धर्मरूपी कमलों के बन्धु सूर्यतुल्य गोकुल राज परमसाधु श्रीनन्द के कुमार पर क्यों मिथ्या दोष का आरोपण कर रहो हो ? ।।१९९।।

विशाखा—तेरी शपथ करके कहती हूँ कि यह दोष सत्य है ।।२००।।

नान्दीमुखी—क्या है वह दोष ? ।।२०१।।

विशाखा—उच्छिष्ठ भोजन ।।२०२।।

नान्दीमुखी—किसका ? ।।२०३।।

विशाखा—दासी का ।।२०४।।

नान्दीमुखी—मुस्कराती हुई—वह दासी कौन है ? ।।२०५।।

विशाखा—शाखोट वन वासिनी किसी स्त्री ने कपट पूर्वक गोपी का वेश धारण कर कंस के नौकर गोवर्धन मल्ल की पत्नी (चन्द्रावली) के पास जाकर कहा—हे चन्द्रावलि ! तू भुवनेश्वरी चण्डिका की प्रिय परिचारिका है। मैं भी उसी चण्डो देवी के गणों में एक मुख्या हूँ। इसलिए स्नेह के कारण तेरी सखी बनना चाहती हूँ। यह सुनकर 'बहुत अच्छा' कह कर उसे चन्द्रावली ने आलिंगन पूर्वक अपनी सखी रूप में स्वीकार कर लिया वही दासी और कौन ? ।।२०६।।

नान्दीमुखी—वह है कौन है ? ।।२०७।।

विशाखा—वही अपूर्वा पद्मा जो सर्वत्र प्रसिद्ध है; तू भी उसे जानती है ।।२०८।।

नान्दीमुखी—कैसा उसका उच्छिष्ठ ? ।।२०९।।

विशाखा—उसके काले अधर रूपी सुराही का परम पवित्र मधु ।।२१०।।

यह सुनकर राधिका को मुसकराते देख सभी हँसने लगीं। तब नान्दीमुखी बोली—विशाखे ! किसी ने यह देखा भी है ? ।।२११।।

विशाखा—हां, और क्या ।।२१२।।

नान्दीमुखी—किसने ? ।।२१३।।

विशाखा—अनेक प्रकार की गैरिक धातुओं को लाने के लिए प्रिय सखी राधा ने मल्ली और

भृङ्गी को गोवर्धन भेजा था। मानसी गङ्गा के समीप ऊषर भूमि में यह परम पवित्र कर्म उन्होंने परसों के दिन अपनी आँखों से देखा है। उन्होंने आकर हम सब गोपियों के सामने विस्तार पूर्वक कहा है ।।२१४

नान्दीमुखी (चिन्तित सी होकर)—समस्तव्रज के जीवन-स्वरूप इस कृष्ण का वह दोष कैसे दूर हो ।।२१५।।

विशाखा—प्रायश्चित करने से ।।२१६।।

नान्दीमुखी—तब तो भगवती पूर्णमासी से ही इनके दोष का प्रायश्चित कराकर इस पुरुषोत्तम को शुद्ध करो फिर आप इन्हें दीक्षा दे देना ।।२१७।।

इतना सुनकर चम्पकलता कहने लगी—अरी मुग्धे ! उज्ज्वलनीलमणि संहिता में ही इस प्रायश्चित्त का विधान है, अन्यत्र नहीं है। लगता है, आपकी दृष्टि में वह नहीं आयी, इसलिये भगवती से पूछने की बात कह रही हो ।।२१८।।

नान्दीमुखी—यहाँ उस संहिता को जानने वाला कौन है ? ।।२१९।।

चम्पकलता—एकमात्र प्रियसखी गान्धर्वा (श्रीराधा) ।।२२०।।

नान्दीमुखी—इस समय वह इस सभा में नहीं है। अतः यह प्रायश्चित्त विधि शीघ्र किस प्रकार पूर्ण हो सकती है ।।२२१।।

विशाखा—यह ललिता उस गान्धर्वा की स्वरूपभूता है। यह गान्धर्वा से ससन्दर्भ उज्ज्वल-नीलमणि संहिता का अध्ययन पूर्वक इस समय उसका निरन्तर अभ्यास कर रही है। अतः यह उत्तम प्रकार से उसकी जानकार है यही उस प्रायश्चित का निरूपण करेगी ।।२२२।।

नान्दीमुखी—(वक्रोक्ति-सहित) हे सखि ललिते ! विचार करके यथोचित प्रायश्चित का आदेश कर ।।२२३।।

ललिता मुस्कराती हुई—हे प्रियसखि ! अपराधी व्यक्ति यदि सभा में आकर अपने सम्पूर्ण पापों को निष्कपट भाव से स्वयं बताते हुए उनका अनुताप करे, तभी इसका प्रायश्चित्त होता है। ऐसा ही पुराणों का निर्णय है ।।२२४।।

"जो पापी सभा में जाकर स्फुट रूप से सम्पूर्ण अपने पाप बताकर अनुताप करता है, मुनि जन उसी को पापों का प्रायश्चित्त कहते हैं।" यह सुनकर नान्दीमुखी मेरे मुख की ओर देखने लगी तथा मैं सुबल-मधुमङ्गल के साथ ललिता के पास जाकर कुछ कहना चाहता था, कि बीच में विशाखा बोल पड़ी। विशाखा—हे वीर ! कामातुर व्यक्तियों को घृणा तथा लज्जा नहीं होती। तुम तो स्वभाव से ही कामी हो, जो कुछ किया सो किया, अब इस ललिता के सामने विवेचना करके सब कह दो ।।२२५

तब मैं मुस्कराहट को रोककर अनुतापयुक्त सा होकर कहने लगा—हे ललिते ! आज से कुछ दिन पूर्व कुछ गौओं के बिछुड़ जाने पर उनको ढूढ़ने के लिए मैं गौरी तीर्थ पहुंचा। वहाँ गौरी मन्दिर से निकल कर कोई एक गौरी सहचरी चर्चिका बाहर आई। वह जबरदस्ती मेरे वक्षःस्थल पर अपने वामस्तन से धक्का देकर माधवी चतुःशाला के अन्दर मुझे ले गई। मैं तो काँप रहा था उसने अपना चर्वित ताम्बूल मेरे को प्रदान कर मेरे साथ जो कुछ किया मैं मोहित होने के कारण कुछ नहीं जान पाया। परसों भी सोने के तागे में गुँथी विविध कुसुमों की माला लेकर वह चर्चिका राधाकुण्डतीर

स्थित कुञ्जनागरी श्रीराधा का ध्यान करते हुए माल्यहरण कुण्ड के किनारे मन्दार-बगीचे में मुझे फिर मिली तब उसने बलात् मेरे वामकपोल का चुम्बन कर अपना अधरामृत मेरे मुख में अर्पण कर दिया। अत: इन दोनों पापों के निराकरण के लिए उसी के मुखकमल के उच्छिष्ठ मधुपान रूप-प्रायश्चित की आप मुझे अनुमति दें ।।२२६।।

मधुमङ्गल सहास्य बोला—अरे मित्र ! यह तो बहुत बढ़िया प्रायश्चित्त रहा, इससे तो उस पाप की वृद्धि का विस्तार होगा ।।२२७।।

तब मैंने कहा—धिक् मूर्ख ! तू कुछ नहीं जानता 'विषकी औषधि विष ही होती है।' जैसे 'अग्नि से जले का घाव अग्नि से सेकने पर नष्ट होता है।' इसी प्रकार 'कांटा लग जाने पर पण्डित जन कांटे के द्वारा ही उसे दूर करते हैं।' इसी प्रकार उच्छिष्ठ-भोजन के दोष को उच्छिष्ठ-भोजन ही दूर करता है ।।२२८।।

मधुमङ्गल—इस प्रकार के पापरोग की चिकित्सा के विषय में जब तुम ही सुन्दर वैद्य हो, तो ललिता के अनुवर्तन की आवश्यकता ही क्या है ? ।।२२९।।

मैंने कहा—हे सखे ! अनेक तत्त्व का जानकार व्यक्ति भी अपनी चिकित्सा में संशय युक्त होता है। इसीलिए चिकित्सक की चिकित्सा अन्य ही चिकित्सकों द्वारा की जाती है ।।२३०।।

यह सुनकर मुस्कराती हुई ललिता कहने लगी—हे देव ! देवी के साथ देव ही का सम्मिलन होना चाहिए। मैं तो मानुषी हूँ। परन्तु वह देवी हमारे गोचर कैसे हो ? ।।२३१।।

तब मैंने कहा—ललिते ! वह देवी आप मानुषियों के समीप ही विराजमान है ।।२३२।।

इतना सुनकर समस्त गोपियाँ कौतुक सहित शंका करती हुई वह कौन है, परस्पर कानाकानी द्वारा ऐसा विचार करने लगीं, उस समय राधा मन-मन में कहने लगीं कि—इस धूर्त का परिहास इसी हमारे गोष्ठ में सामने आयेगा—ऐसा लगता है ।।२३३।।

विशाखा—देव ! बताइए, वह देवी कहाँ है ? ताकि भली प्रकार स्तुति आदि करके उसे यहीं सभा में लाकर हम आपके कार्य को शीघ्र ही निष्पन्न करा दें ।।२३४।।

तब मैं बोला—हे विशाखे ! आपकी गोष्ठी में हो विद्युत् के समान वह शोभा पा रही है। इतनी बड़ी बड़ी आँखों वाली होकर भी उसे तुम नहीं देख रही हो ? ।।२३५।।

मेरे इस गम्भीर वचन को सुनकर ललिता तथा सभी गोपियाँ अपने अपने प्रति इस परिहास की शंका करती हुईं परस्पर देखने लगीं तब विशाखा बोली—हे लम्पट ! क्या वह चम्पकलता है ? ।।२३६

तब मैंने कहा—नहीं, नहीं ।।२३७।।

विशाखा—तो क्या ज्येष्ठा है ? ।।२३८।।

मैंने कहा—नहीं, नहीं ।।२३९।।

सुबल—रंगदेवी अथवा सुदेवी में कोई एक होगी ? २४०।।

मैंने बोला—इनमें एक भी नहीं है ।।२४१।।

विशाखा—हाँ ! तब प्रायश्चित कराने वाली ललिता ही होगी ।।२४२।।

तब मैं बोला—विशाखे ! यह भी नहीं है ।।२४३।।

विशाखा—यह भी नहीं, वह भी नहीं तो क्या यहां से अन्तर्धान हो गई है ? ।।२४४।।

तब मैंने कहा—तू ही उसको जानती है, स्मरण करके देख ।।२४५।।

ललिता—हा हा सखि विशाखे ! उसको प्रकाशित करके इस दुःखित-चित्त की कार्य सिद्धि शीघ्र करो ।।२४६।।

विशाखा स्मरण का, अभिनय करती हुई—ललिते ! जिसको मैं समझती हूँ वह देवी तथा मानुषी इनमें से एक भी नहीं है ।।२४७।।

नान्दीमुखी— इस गोष्ठ में देवी तथा मानुषी से अतिरिक्त कौन है ? ।।२४८।।

विशाखा—निश्चित रूप से वह शंखिनी है ।।२४९।।

ललिता - वह शंखिनी कौन है ? ।।२५०।।

मुस्कराती हुई विशाखा—वही दुर्मुखी 'पद्मा' जिसने इसको अपराधी बनाया है ।।२५१।।

तुङ्गविद्या—सखि विशाखे ! 'वह शंखिनी है' ऐसा कह कर अधर्म क्यों कर रही हो ? वह अनेक प्रकार से कात्यायनी देवी की बहुविध सेवा करती है । उसके प्रसाद से वह कात्यायनी की भांति गुप्त रूप से विराजती है ।।२५२।।

यह सुनकर मधुमङ्गल आदि सब हँसने लगे । तब मैंने कहा—अरी विशाखे ! उस कार्य में लज्जावश होकर यदि तू दूसरों पर आरोप करने की इच्छा तो कर रही हो, तो अब मैं ही कहता हूँ ।।२५३।।

विशाखा—कहो, कहो ।।२५४।।

तब मैं बोला— वह चर्चिका देवी तू ही तो है । तदनन्तर सभी गोपियों को हँसती हुई देख कर अधर को कँपाती हुई विशाखा कहने लगी—अरे चञ्चल ! ठग ! निष्ठुर गोप ! कंस के अनुचर दुष्ट गोवर्धन मल्ल की गृहिणी (चन्द्रावली) के हरिद्रा रंग से रंगे हुए शरीर वाले ! पण्डितायी की खाँड ! चतुरता के कपूर से रहित तथा हृदय में प्रेम से शून्य उस (चन्द्रावली) पर लुब्ध होकर उसकी क्रीड़ा रूप बेरों के वन में घूमने वाले ! नीच पद्मा शंखिनी के स्वामि ! मूर्खों की नाट्यशाला में प्राप्त कामरस के व्यापारियों में महाधूर्त वनिक ! इस धृष्टता रूपी नीबू तथा गुड़ की दुकान को वहीं शाखोट वन (चन्द्रावली के पास) में जाकर फैला । यहाँ से शीघ्र भाग जा । विशाखा के ये वचन सुनकर राधा धीरे से उसकी प्रशंसा करती हुई कहने लगी – प्रिय सखि विशाखे ! तेरी विजय हो । तूम मेरे हृदयगत सम्बोधनों से इसको डाँटती हुई मुझे सन्तुष्ट कर रही हो ।।२५६।।

रङ्गदेवी—सखि विशाखे ! तू इतना क्रोध क्यों कर रही है । ऐसा कह कर बोली —हे सखि ललिते ! शाखोट वन-माधवी चतुःशाला-मानसी गङ्गा के समीपस्थ ऊषर भूमि-माल्यहारी कुण्ड के किनारे मन्दार उद्यान पर पद्मा शंखिनी के मुखके उच्छिष्ठ को प्रियसखी विशाखा के अधरामृत नाम से निरूपण करके इस चतुर धूर्त ने अपने नीच कार्य प्रकटन से उत्पन्न लज्जा पूर्वक अपने मुख से संपूर्ण पाप प्रकाशित होता जानकर अर्थोत्थ व्यंग्य के द्वारा तुम पर आरोपित कर दिया है; अतः अब इसका प्रायश्चित बताओ ।।२५७।।

ललिता मुस्कराती हुई—आर्य मधुमङ्गल ! सखे सुबल ! सावधान होकर प्रायश्चित्त सुनो ।।२५८

चित्रा—सखि ललिते ! "जिनके पास सम्पत्ति हो उनके लिए चौगुना तथा राजपुत्रों के लिए

उनसे भी अधिक छःगुना प्रायश्चित्त बताया गया है !" इस प्रकार स्मृति (धर्मशास्त्र) के वचन को स्मरण करके ही प्रायश्चित्त का आदेश करना ।।२५९।।

ललिता—अरी मुग्धे ! "राजपुत्रों के लिए उनसे भी बारह गुना प्रायश्चित माना गया है" मैं ऐसा शास्त्र-सम्मत पाठ समझती हूँ, तू छःगुणा कैसे कह रही है ? ।।२६०।।

चित्रा—तू शास्त्रों में निपुण है, जो तू जानती है वही सत्य है। किन्तु गोवर्धन-धारण, दावाग्नि-विमोचन–शंखचूड़ादि राक्षसों को मारकर इस युवराज ने हमारी कितनी ही बार क्या रक्षा नहीं की है ? इसलिये इसके द्वारा किए गए अपराधों की ओर अधिक ध्यान न देकर कृपापूर्वक छःगुणा प्रायश्चित्त का ही विधान करो ।।२६१।।

ललिता—ठीक है, तेरे कथनानुसार ही करूँगी। प्रथम पाप के नाशहेतु स्नान करके फिर तीन दिन तक लगातार मानसीगङ्गा में स्नान करे। फिर इक्कीस दिन पर्यन्त मल्ली-भृङ्गी (जङ्गली पुलिन्द कन्याए) इन दोनों के अधरपञ्चामृत का पान कर पहले अपने मुख दोष को दूर करे। तत्पश्चात् बारहगुणा प्रायश्चित्त की व्यवस्था होगी ।।२६२।।

यह सुनकर कपट कोप दिखाते हुए मधुमङ्गल बोला—अरी ओ ललितिके ! सत्यधर्म के सेतु स्वरूप श्रीव्रजेश्वर–व्रजेश्वरी के एकमात्र पुत्र तथा हमारे जैसे मित्रवर्ग एवं संपूर्ण गोकुल वासियों के जीवन की ओषधि स्वरूप श्रीकृष्ण को चेटी-(दासी)पुलिन्दी की झूठन खिलाकर उसकी जाति भ्रष्ट करने जा रही हो। अतः मैं अभी जाता हूँ। यह सम्पूर्ण समाचार बता कर इसके माता पिता को यहीं लाता हूँ। इसको इस संकट से बचाते हुए मित्रता का विस्तार करूँगा, इतना कह कर फूत्कार कर शीघ्र जाते हुए मधुमङ्गल का हाथ पकड़ कर सुबल ने उसे बल पूर्वक रोक लिया ।।२६३।।

ललिता—हे अनार्य वटुक ! हमारी प्रिय सखी राधा की प्रिय सहेलियाँ मल्ली तथा भृङ्गी के माहात्म्य विज्ञान से तुम सर्वथा अनभिज्ञ हो। अतः नान्दीमुखी के मुख से उनका माहात्म्य सुनो ।।२६४।

नान्दीमुखी—भैया मधुमङ्गल ! "परम रम्य गोवर्धन पर्वत में श्रीकृष्ण का प्रिय राधाकुण्ड है। श्रीकृष्ण का जिस प्रकार राधा से प्रेम है उसी प्रकार उनके कुण्ड से भी। और सुन मधुपुरी वैकुण्ठ की अपेक्षा श्रेष्ठ है। उसमें भी रासोत्सव के कारण वृन्दावन श्रेष्ठ है, फिर उसमें भी नित्यरमण क कारण गोवर्धन की श्रेष्ठता है। उस गोवर्धन में भी राधाकुण्ड गोकुल पति कृष्ण के प्रेमामृत स्नान के कारण सर्वोत्कृष्ट रूप से विराजमान है। उस कुण्ड की कौन विवेकी पुरुष सेवा न करेगा, अर्थात् ज्ञानवान् उसका सेवन करेगा ही।– इत्यादि वचनों के अनुसार श्रीभगवती के गुरुदेव श्रीदेवर्षि नारद आदि महा महा मुनीन्द्रगणों ने इस गोवर्धन के ऊपर विराजमान राधाकुण्ड की महिमा वर्णन की है। उस के दक्षिण तट पर पर्वतकन्दरा में निवास करने वाली, जिनका श्रीशुकदेव ने भी 'पूर्णाः पुलिन्द्य उरुगाय' इत्यादि वाक्यों से वर्णन किया है, उन परम सौभाग्यवती पुलिन्दराज कन्या मल्ली-भृङ्गी के अधर से स्रवित परम पवित्र पंचामृत इसके पाप का नाश कैसे नहीं करेगा ? (अवश्य करेगा)। और भी सुन, परमप्रियसखी होकर भी जिस व्रजनवीन युवद्वन्द्व रत्न श्रीराधाकृष्ण के प्रति कभी विशाखा आदि के द्वारा, कभी स्वयं लज्जा का अभिनय करती हुई उनके मृदुभाषण-की विवेचना पूर्वक परिहास कला से उत्पन्न परमानन्द की विशेष प्राप्ति के लिए तथा अपनी अभीष्ट सेवा विशेष के लाभ के लिए ये रंगमाला आदि सखियां परिचारिका के समान व्यवहार करती हैं ।।२६५।।

इसी बीच में श्रीराधा ने नेत्र के इशारे से गोष्ठी के बीच स्थित तुलसी को बुलाया। परम-

सुन्दर सुगन्ध युक्त चम्पक कलि के समान दक्षिण हस्त की कनिष्ठा अंगुली के अग्रभाग से अपनी माँग में से सिन्दूर रस लिया और उसकी सुगन्धि पूर्ण सुन्दर लिपि में स्वर्ण केतकी पुष्प के पत्ते पर एक पत्र लिखा। उस पत्र को तुलसी के द्वारा ललितादि सखियों के पास पहुँचा दिया। उस पत्र को ललिता ने शिर पर धारण किया। सखियों के साथ एकान्त में पढ़ कर मुसकराते हुए नान्दीमुखी के हाथ में दे दिया। नान्दीमुखी भी आनन्द का अभिनय करती हुई उस पत्रको वक्षःस्थल पर धारण कर पढ़ने लगी—स्वस्ति पूर्वक श्रीनान्दीमुखी,श्रीललिता, श्रीविशाखा आदि प्राणप्रेष्ठ सखीवृन्द के लिए आलिंगन पूर्वक एवं अनन्तरङ्ग पूर्वक किसी सखी का यह निवेदन है—श्रीदाम, सुबल, भद्रसेन आदि प्रिय-मित्र गणों के साथ गोवर्धन के समीपस्थ भूमि में गोचारण करते हुए जो परमानन्द को प्राप्त करते हैं, तथा व्रजराज क प्राणों से भी अनन्तानन्त प्रियतम जो सुपुत्र हैं, व्रजेन्द्रमहिषी—श्रीयशोदा के निज शरीर की अनन्त सुतप्त स्वर्ण-ईंटों से निर्मित महा मन्दिर में जो विराजमान है, उसके प्राणों के अनन्त एवं विविध प्रकार के रत्नों से जटित महापर्यंक पर जो वात्सल्य रूप नाना प्रकार के पुष्पों से सुवासित एवं सुकोमल गद्दों के ऊपर शयन क्रीड़ा का परमानन्द प्राप्त करते हैं, जिनकी वाम चरण की कनिष्ठ अँगुली का नखाग्र भाग मेरे प्राण की परार्ध[1]-अरब-परार्ध-शत गुणित संख्या से नीराजित होता नूतन कस्तूरी द्वारा परिवासित नवनीत रूप नील कमलदलों से निर्मित जिनका सुन्दर सुकुमार शरीर है, उन धीरललित नायक स्वरूप (श्रीकृष्ण) के लिए इतना कठोर प्रायश्चित्त सुनने से मेरा हृदय नवनीत के समान द्रवित हो रहा है।

फिर सुकुमार शरीर वाले तथा अपने पाप के प्रति अनुताप करने वाले प्रेमी जनों का प्रायश्चित्त तन्त्र-परिपाटी[2] द्वारा ही सम्यक्तया किया जाता है। उज्ज्वल संहिता के इस वचन को भुला कर ही ललिता ने पञ्चामृतपान रूप प्रायश्चित्त को केवल मुख-शुद्धि के लिए पृथक् बताया है; वस्तुतः मुखशुद्धि तथा विविध पापनाश इसी तन्त्र द्वारा करा कर इनको निर्दोष कर देने से मेरे मन में महान् आनन्द होगा और अधिक लिखने से क्या प्रयोजन ?

इसी स्थान पर उपस्थित मेरी प्राणप्रिय सखियाँ मल्ली-और भृङ्गी के प्रति इनका प्रेम पूर्वक आलिंगन करवा दिया जाय। विशेष कर यह राजपुत्र हैं तथा परमपवित्र और महाविलासी हैं। इनके चरण कमल के प्रहार से अशोकलता को पुष्पित करा लिया जाये। उससे निकले हुए रस के (मल्ली और भृङ्गी द्वारा बारह-बारह) चौबीस कुल्लों से भली प्रकार अपने मुख को स्वच्छ करलें। फिर स्मित कर्पूरवासित अधरपञ्चामृत बनाकर प्रेम सहित शनैः शनैः इन्हें इस प्रकार पिलाना चाहिए, जिससे इन सुकुमार का पाप शीघ्र ही दूर हो जाय और इन्हें परम सुख की उपलब्धि हो ॥२६६॥

नान्दीमुखी द्वारा पढ़े गए श्रीराधा के उस पत्र को सुनकर मैं मन में प्रसन्न होता हुआ राधा-(जहाँ छिपकर बैठीथी) उस निकुञ्ज की ओर देखने लगा। तब मुसकराती हुई ललिता बोली—"यद्यपि पापी अपने पाप के प्रति अनुताप करले उससे पाप का क्षय हो जाता है—यह सामान्य वचन हैं। फिर "सम्पत्तिवान् के लिए चतुर्गुणा प्रायश्चित्त बताया गया है। उसमें भी राजपुत्र के लिए बारह गुणा प्रायश्चित्त विधान है" यह विशेष वचन हैं। सामान्य और विशेष में विशेषविधि ही बलवान् है। इस न्याय से इसके लिए बारह गुणा ही प्रायश्चित्त करना चाहिए। ऐसा पृथक् पृथक् रूप में मैंने

---

१. पद्म शंख इत्यादि संख्या से भी ऊपर जहाँ पर संख्या की गणना समाप्त हो जाती है उसे 'परार्ध' कहा जाता है। २. एक प्रवृत्ति से ही दो कार्यों की पूर्त्ति करने वाला विधान तन्त्र कहा जाता है।

निरूपण कर दिया है। तथापि बड़ों की आज्ञा अविचारणीय होती है। अतः उसको शिरोधार्य करके तन्त्र द्वारा प्रायश्चित्त करवाना चाहिये ॥२६७॥

"शिष्य की विद्या गुरु से भारी होती है ऐसा मेरे कहने पर ललिता अपने मनोभाव को प्रकाशित करती हुई कहने लगी—हे नान्दीमुखि जो अपनी सौन्दर्य रस राशि से सम्पूर्ण गोकुल वासियों के नयन कमलों को परितृप्त करने वाला है, परम रासस्थली में विहार करने वाली परमरस तरङ्गिणी-रङ्गिणी सहचरी इस हरिणी (व्यंग में श्रीराधा) को छोड़ कर यह मूर्ख कृष्णसार युवक (व्यग्य में श्रीकृष्ण) सखी स्थली के समीप रहने वाली शैव्या सहचरी रूप मृगतृष्णा के पीछे बार बार भागता है। जिसके सौरभ समूह से सम्पूर्ण दिशा-विदिशाएँ सुरभित हो रहीं हैं; राधाकुण्ड के निकुञ्ज भवन में स्थित चम्पक लतासखो कांचन यूथिका (व्यंग्य में श्रीराधा) का परित्याग कर गोवर्धन मल्ल के घर के एक कोण में स्थित गन्धरहित पुष्पवती कूष्माण्डलता (व्यंग्य में चन्द्रावली) और उसके समीपवर्ति उसकी सहचरी नीरस भूमि के तुल्य पद्मा के लिए चञ्चल होता हुआ पर भ्रमर (व्यंग्य में श्रीकृष्ण) बार बार उड़-उड़ कर उनके पीछे भागता है। अतः इस आलम्बन मूर्खता रूपा विरूपता द्वारा वृन्दावनेश्वरी की सहचरी रूपा मधुराराति ऊपर से अप्रसन्न होती हुई इस श्यामल रस (पक्ष में शृङ्गार रस रूप श्रीकृष्ण) को पुष्ट नहीं कर रही है। इसलिए इस अनभिज्ञ भ्रमर (श्रीकृष्ण) को युक्ति माधुरी से समझाओ, जिससे उस रसगन्ध हीन कूष्माण्डलता का सदा के लिए परित्याग कर वृन्दावन महादेवी का सर्वतोभाव से अनुसरण करे; तभी वह प्रियसखी मधुराराति स्वय ही परम उज्ज्वल स्वरूप को धारण करती हुई इसकी अभीष्ट कामनाओं का निश्चित रूपसे सम्पादन करेगी ॥२६८॥

इस प्रकार अनेक विलास रस माधुरी का पान करके सत्यभामा श्रीकृष्ण से कहने लगी—हे प्राणनाथ! इस अपूर्व रस सागर में गोता लगाती हुई भी मैं सर्वथा तृप्त नहीं हो रही हूँ। पिपासा बढ़ती ही जा रही है, आप आगे का विवरण सुनायें ॥२६९॥

श्रीकृष्ण—प्रिये! गोकुल विलास के आनन्दमय बगीचे में विहार करने वाले मेरे सम्बन्ध में यह तुम्हारा प्रश्न मेरे प्रिय मित्र ऋतुराज वसन्त का प्रकाश कर रहा है। इतना कह कर श्रीकृष्ण ने सत्यभामा को आलिंगन प्रदान किया ॥२७०॥

उस समय आनन्द पूर्वक सत्यभामा कहने लगी, फिर, क्या हुआ? आगे कहिये ॥२७१॥

श्रीकृष्ण—तत्पश्चात् मुसकराता हुआ सुबल कहने लगा—हे प्रिय मित्र! प्रियसखी इन्दुलेखा आज भास्वर नामक अपने नास्तिक पति से उद्विग्न होकर इंगित द्वारा मुझे प्रेरणा कर रही है। अतः इसके मुक्ताओं का मूल्य निर्णय कर मुक्ता प्रदान करके शीघ्र ही इसे गृहकार्य में जाने की अनुमति दो ॥२७२॥ तब मैं बोला—हे सखे! सत्य, सत्य इस इन्दुलेखा का मुझ में बड़ा अनुराग है। अतः यह मेरे को भी छोड़ कर नहीं जा सकती। इससे पति से अधिक भयभीत है, यह मैं भी समझता हूँ। अब इसके मुक्ताओं का मूल्य सुनो—यथार्थ नामवाली यह इन्दुरेखा मेरे विरह को न सहने के कारण दो शरीर धारण कर श्यामलतर मेरे हृदय-आकाश पर तेज नखाग्र द्वारा निर्मित की गई अपनी एक मूर्ति की स्थापना करे। मैं भी इसके वियोग को न सहन कर इसके स्तन-पर्वत पर अपनी विद्या के प्रभाव से दो अर्ध चन्द्रमाओं के रूप में उदित हो जाऊँगा। तब यह, निर्धन को रत्न-प्राप्ति के समान स्तनस्थित मुझे अपने वस्त्र के अंचल से मेरे को ढक कर रखे तथा एकान्त में क्षण क्षण में रोमाञ्चित

होती हुई मेरा दर्शन लाभ कर परमानन्द को प्राप्त करे। अथवा मृगचिन्ह-रहित इस इन्दुलेखा के हृदय में मैं सुन्दर कृष्णसार (मृग) रूप हो जाता हूँ ।।२७३।।

यह सुनकर अधर को कंपाती हुई इन्दुलेखा कुटिल दृष्टि से मेरी ओर देखने लगी । उसे देख कर तुङ्गविद्या कहने लगी—हे नागर ! यथार्थ नामवाली इस रंगदेवी के मुक्ताओं का मूल्य तो बताओ ।।२७४।।

मैंने कहा—हे सखि रंगदेवि ! मैंने रासमण्डल में पहले तुम्हारा निरन्तर नृत्य चातुरी-उल्लास देखा है। इस समय एकान्त निकुञ्जमन्दिर के आँगन में उस नृत्य विशेष को देखने की मेरी अभिलाषा है। अब मेरे पास आकर अपने स्तन-स्वर्ण कलशों को मेरे हृदय पर इस प्रकार नचाओ, जिससे मैं प्रसन्न हो। र सम्पूर्ण गोपियों का सर्वस्वभूत अपना अधरामृत प्रसाद प्रदान कर तुझे परमानन्दित करूँगा ।।२७५।।

मेरी यह बात सुनकर "चल भाग भण्डशेखर! चल भाग" ऐसा रंगदेवी कहती हुई कुटिल नयन से मेरे प्रति दृष्टिपात करती हुई विशाखा के पीठ-पीछे जाकर छिप गयी। तब मुसकराती हुई सुदेवी कहने लगी—हे रसिक शेखर ! पहले गोपियों से भोग लगाया हुआ, फिर उनसे त्यागा हुआ ऐसे सदा सेव्यमान महाप्रसाद के आस्वादन से यह रंगदेवी शीघ्र ही सिद्धि को प्राप्त होकर स्पष्ट रूप से हम सबके मनोरथ सिद्ध करने वाली हो गई है ।।२७६।।

सुबल—वयस्य ! सुदेवी अपने मुक्ताओं का मूल्य सुनना चाहती है। इसलिए यह आपके मुख की ओर उत्कण्ठा पूर्वक देख रही है ।।२७७।।

मैं बोला— सखे सुबल ! सुदेवो द्यूत क्रीड़ा में बड़ी कुशल है, ऐसा प्रसिद्ध है। अतः मैं शपथ करके कहता हूँ कि यह किसी भी कारण से किसी का पक्षपात नहीं करेगी। हम दोनों अपनी सुबुद्धि के बल पर(द्यूत)खेलें। उस द्यूत क्रीड़ा में यदि मैं इससे भली प्रकार पराजित हो गया तब यह वामस्तन द्वारा मेरे वक्षःस्थल पर प्रहार कर मेरे सर्वस्वभूत अधर का दो बार पान करे। अथवा, यदि मैं इससे जीत गया तब यह मेरे दक्षिण हस्त द्वारा अपने दक्षिण कठोर स्तन को स्वेच्छा पूर्वक मर्दन करा कर दो बार अपने अधरामृत का मुझे पान करावे ।।२७८।।

तब यह सुनकर सुदेवी असूयासहित कुटिल भ्रू करके मेरी ओर देखती हुई विशाखा से कहने लगी—अयि विशाखे ! सदा परिहास रूप स्वर्ण के बेचने वाला यह व्यापारी इस समय मुक्तामणि का व्यापार कर रहा है। किन्तु उसमें लाभ की प्राप्ति न देख कर पुनः अपनी पिछली—परिहास स्वर्ण बिक्री की वृत्ति को अपना रहा है। अतः परार्ध से भी दुगनी पञ्चवाण रूप ललित स्वर्णमुद्रासमूह को यहाँ से ग्रहण करो उस (स्वर्णमुद्रा समूह) से मुक्ताफलों को इससे आप सब ग्रहण करें। मैं तो अब सीधी अपने घर जा रही हूँ।

इतना कहकर सुदेवी चलने लगी। तब अनंगमंजरी ने उसका वस्त्रांचल पकड़ लिया। क्रोध सहित अपना मनोभाव प्रकट करते हुए सुदेवी बोली—हे केलिलम्पट ! यह अनंगमंजरी द्यूतक्रीड़ा मं अति निपुण है, यही तुम्हें द्यूतक्रीड़ा में हरा कर तेरे अभिमान-पर्वत को ढहा देगी ।।२७९।।

सुदेवी की वचन-माधुरी को श्रवण कर मैं बोला—द्यूतक्रीड़ा में इस अबला की क्या सामर्थ्य है। किन्तु मेरे वक्षःस्थल रूप नीलमणि पर हरितालिका रेखा स्वरूप राधा की प्राण सहोदरा भगिनी

इस अनङ्गमञ्जरी का मुझ पर बड़ा प्रेम है और मेरा मनरूप मधुकर भी इस में बड़ा अनुरक्त है। अतः समुचित मूल्य के बिना भी वर्तुल एवं स्थूल बहुत से मुक्ता इसको प्रदान करूँगा। परन्तु निकुञ्ज वेदिका में चलकर इसके हृदय पर स्मरपंचाक्षरों को स्वहस्त से लिखूंगा। फिर अपने अङ्गों से इसके अङ्गों का आलिंगन कर मन्त्र द्वारा अङ्गन्यास करके ऐसे एक सिद्ध मन्त्र का उपदेश करूँगा, जिसके ग्रहण मात्र से अनङ्ग सर्वांगपूर्ण हो जायगा। तब वह अनङ्ग प्रसन्न होकर अपने प्रसाद स्वरूप स्वसर्वस्व भून विलासरत्नों को दक्षिणा स्वरूप में विनय पूर्वक गुरुरूप मुझे समर्पण करेगा। तब मैं भी अति प्रसन्न होकर ऐसा आशीर्वाद दूँगा, जिससे 'विषमशरविलासाचार्या' इस पदवी को यह प्राप्त कर द्विगुणी भक्ति से मेरी सेवा करेगी।

इस प्रकार मेरे द्वारा कहे गए वचन-रूप पुष्प गुच्छों को कर्णभूषण बना कर ओष्ठ को कँपाकर मन्द दृष्टि से मुझे देखती हुई तुलसी और रंगणमाला की पीठ पीछे छिप गई। ऐसा देख सुभगवदना गोपीगण मुस्कराने लगीं तथा बड़ी बहिन श्रीराधा स्नेहोत्फुल्ल-नयनों से प्रेम-पूर्वक उसकी ओर देखने लगी ।।२८०।।

सत्यभामा मुस्कराकर बोली—हे प्राण नाथ ! फिर आगे क्या हुआ ? २८१।।

श्रीकृष्णः—इसी समय में मल्ली और भृङ्गी ने आकर सबके आगे दो लेख प्रदान किए ! परम-उत्फुल्ल चित्त से ललिता ने सब गोपियों के साथ उन पत्रों को पढ़ कर उनमें से एक पत्र सुबल के हाथ में दे दिया ।।२८२।।

तब मैं बोला—ललिते ! यह लेख किसका है ? २८३।।

ललिता—मुसकराती हुई लेख ही बता देगा ।।२८४।।

तब सुबल पत्रिका को खोल कर धीरे धीरे पढ़ने लगा ।।२८५।।

नान्दीमुखी—सुबल ! जोर से पढ़ो ।।२८६।।

मुसकराते हुए सुबल ने कहा—हे सखे ! यह पत्र अपूर्व है, इसको सुनो ।।२८७।।

मैं बोला—मित्र ! पढ़ो तो, इसको सुनने की मुझे भी उत्कण्ठा हो रही है ।।२८८।।

सुबल—समस्त सज्जनगण के द्वारा सर्वोपमा योग्य, बन्ध प्रबन्ध-सद्गुणसमूह परिवृत श्रीसुबल नामक प्रियनर्मसखा महानुभाव के समीप यावट ग्राम से राधा के प्रेमपूर्णामृत से परिपूरित अक्षर समूह रूप मधुर पक्वान्न के परिवेशन के लिए यह पत्रिका स्वर्ण पात्र के समान समझी जाय—

आपके प्राणबन्धु श्रीपाद (श्रीकृष्ण) और आप व्रज-मण्डल में निरन्तर मङ्गल स्वरूप से विराजमान हैं तथा सर्वदा मङ्गलरूप में विराजें। एक विशेष कार्य को ध्यान पूर्वक सुनें। प्रिय जनों से कर ग्रहण करना अनुचित है; ऐसा समझ कर बहुत सा कर का धन हमने छोड़ दिया और आज तक आपसे कुछ नहीं कहा। इस समय हमारे मुक्ता नष्ट हो जाने से क्षुब्ध हुए गुरुजन हमें विशेष कष्ट दे रहे हैं। उससे हमें एक क्षण के लिए शान्ति नहीं मिल पा रही है। इसीलिए जो कुछ मेरा निवेदन है, उसके दोष की ओर कान न देंगे। मेरे वृन्दावन प्रदेश में यमुना के निकट के भूमि क्षेत्र में आपके प्राण-बन्धु (श्रीकृष्ण) ने वर्तमान समय में कृषिजीविका प्रारम्भ कर मुक्ताओं की खेती की है। अतः ललिता के साथ पत्र व्यवहार कर के शीघ्र ही हमारे भूमिका कर द्रव्य मेरे पास भेज दिया जाय। उस द्रव्य के द्वारा हम मथुरा से मुक्ता मँगा कर अपने गुरुजनों को प्रदान करेंगी और दुःख समुद्र से पार हो जायँगी।

अथवा बहुमूल्य मुक्ता उत्पन्न करने वाली हमारी भूमि का कर भी अधिक बैठेगा। यदि उतना कर देने में आपकी सामर्थ्य न हो तो पाँच जन मिल कर समुचित मूल्य निर्णय करें। उस मूल्य के बदले ललिता के हाथ मुक्ता भेजें। आप जैसे परम चतुर जनों के लिये अधिक लिखने से क्या प्रयोजन ?

यह सुनकर परमानन्द पूर्ण होता हुआ मैं अपना मनोरथ कहने लगा—अयि मल्लि ! अयि भृङ्गि ! तुम्हारी स्वामिनी सुख से तो हैं ना ?।।२८९।।

मल्ली-भृङ्गी—आपके चरण कमलों के शुभ ध्यान से सुख पूर्वक हैं। तब जहाँ राधा बैठी थीं, उस निकुञ्ज की ओर दृष्टि पात करता हुआ मैं बोला—वह इस समय कहाँ है ? "यावट नाम ग्राम में" दोनों ने कहा ।।२९०।।

मैंने पूछा—वह वहाँ क्या कर रही है ? ।।२९१।।

वे दोनों बोलीं—ललिता देवी आदि गोपियों के आने की प्रतीक्षा कर रही हैं। वे समग्र वृन्दावन राज्य की सार्वभौमता की प्राप्ति के लिए उत्कण्ठित होकर विराज रही हैं ।।२९२।।

तब मैंने कहा—सखे सुबल ! मैं समझता हूँ कि कुटिला ललिता ने किसी के द्वारा यह पत्रिका लिखवा कर यहाँ पठवायी है ।।२९३।।

सुबल—नहीं, नहीं, राधा के अपने हाथ के अक्षर हैं ये ।।२९४।।

तब मैंने कहा—मित्र ! ऐसी बात है तो ला, पत्र को दिखा। ऐसा कह कर मैं उसके हाथ से पत्र छीन कर लेख को देखने लगा। चमत्कृत होकर मन में विचारने लगा—अहो ! अक्षरों की पंक्तियों का विस्तार मेरे नेत्रों में अमृतज्योति के समान अनुभूत हो रहा है। अतएव भङ्गोक्रम से विस्मयसंचारि भाव द्वारा आनन्द से उत्पन्न पुलक को प्रकाशित कर फिर मैं स्पष्ट रूप में हँस कर बोला—क्या आश्चर्य है। कैसा आश्चर्य है ! आकाशपुष्प के समान इन धूर्त गोपियों ने अकस्मात् क्या नई बात उठा दी है ? २९५।।

मधुमङ्गल—मित्र ! भयंकर कूटनाटी रूपा कपट-नटियों के नृत्य में उद्भट नटाचार्या दुर्ललिता यह ललिता राधा से अभिन्न है। इसे तो वाणी के विलासाभास मात्र से हरा कर बैठ जाओ। यह निश्चय समझो जब तक एक भी शत्रु रहेगा तब तक सुख नहीं—ऐसा समझ कर हमारे वृन्दावन के राज्य की अभिलाषा करने वाली इन गोपियों को इस वृन्दावन से शीघ्र बाहर ही भगा दो। तब कहीं निष्कण्टक राज्य में मीठे रसीले फलों का स्वच्छन्द भोग करता हुआ मैं सुख पूर्वक नाचता हुआ यहाँ वास करूँगा ।।२९६।।

तब मैं बोला—ललिते ! यह वृन्दावन तो हमारा है, तुम्हारी सखी का राज्य कैसे हो गया ? २९७।।

ललिता—अरे परम कपटी ! राधा के राज्याभिषेक महोत्सव का साक्षात् दर्शन करके भी वास्तविकता छिपा रहो हो ? ।।२९८।।

मैं बोला—ललिते ! साक्षात् दर्शन की बात तो दूर रही, ऐसा समाचार भी मेरे कानों में पड़ा हो मुझे स्मरण नहीं ।।२९९।।

विशाखा—ललिते ! इसका कुछ दोष नहीं है, सैंकड़ों साध्वी गोपियों के संग से धर्म के

उल्लंघन से उत्पन्न पाप से इसका चित्त एवं स्मृति नष्ट हो गये हैं। इसके संसर्ग से इसके साथी सुबल मधुमङ्गल के भी। फिर इन्हें कैसे स्मृति रह सकती है ?। अतः अपनी सखी राधा का वचनामृत-स्रोत इनके कर्णछिद्रों में डालो। तभी वही कृपा करके इनकी स्मृति जागृत करायेगा ॥३००॥

इसी समय वृन्दा वहाँ आ पहुँची। उसे देख कर सभी गोपीगण प्रसन्न हो उठीं। ललिता ने वृन्दा का आलिगन किया। मुसकराती हुई ललिता यह बोली—वृन्दे ! बड़े सुन्दर समय पर तू आयी है। अब तू हो श्रीराधारानी के राज्याभिषेक महोत्सव रङ्ग का वर्णन कर ॥३०१॥

वृन्दा आनन्द पूर्वक सविनय कहने लगी—सखि ललिते ! आपके मुख कमल से निःसृत महोत्सवरसमकरन्द का पान करने के लिए ही मैं यहाँ आई हूँ। अतः आप ही उसका परिवेशन करें ॥३०२

ललिता आनन्द पूर्वक—बहुत सुन्दर,सभी सावधान होकर सुनो। ऋतुराज बसन्त कालकी पूर्णमासी, विशाखा नक्षत्र में भगवान् ब्रह्मा की आकाश-वाणी तथा वृन्दावनवासी भगवान श्रीगोपीश्वर के स्वप्न–आदेश के अनुसार मानसगङ्गा-यमुना आदि श्रेष्ठ नदियां, सावित्री-संज्ञा-एकानंशा आदि देवियां इस महोत्सव में आयीं। उनके साथ मिलकर भगवती पूर्णमासी उस समय आ मिलीं। मुरली, वीणा, झाँझ-नगाड़ा आदि वाद्य ध्वनि के कोलाहल से आकृष्ट होकर किन्नरी-गन्धर्वी गण आनन्द से मत्त होकर गान करने लगे। अप्सरा, विद्याधरी नाचने लगीं, शची आदि सुराङ्गनाएं जय जय कार पूर्वक पारिजात पुष्पों की वृष्टि करने लगी। विशाखादि सहचरी समुदाय सुवासित-पटवास सुन्दर डोर, नव कर्पूर चूर्ण, मनोहर मृगमद, सुललित-कुंकुम, चन्दनद्रव तथा विविध सुगन्धित पुष्प समूह की चारों ओर वृष्टि करते हुए सुललित गान करने लगीं। ब्राह्मण पत्नी गण सैंकड़ों शुभाशीर्वाद प्रदान करने लगीं, सखीवृन्द से सर्मपित शोभन कुंकुम, अगुरु, कर्पूर, चन्दन, विविध सुरभि कुसुम, सुवासित जल से परिपूरित स्वर्ण के एक सौ आठ घड़ों द्वारा सुन्दर स्वर्ण वेदी पर पद्मरागमणि निर्मित सिंहासन पर विराजमान प्रियसखी श्रीराधा का आनन्द से सबके साथ भगवती पूर्णमासी ने अभिषेक किया। तदनन्तर विविध सुलक्षण युक्त महारत्नों के संचय से युक्त जल की सहस्र धारा से 'जय जय' शब्द पूर्वक रत्नाभिषेक सम्पन्न किया गया ॥३०३॥

हर्ष सहित वृन्दा ने पूछा—फिर आगे क्या हुआ ? ॥३०४॥

ललिता—तत्पश्चात् मैंने सूक्ष्म रेशमी वस्त्र से धीरे धीरे सखी के अङ्गों को पोंछकर सुन्दर रक्त वर्ण वस्त्र धारण कराया। केतकीपुष्प से सुवासित मेघ के समान नील वस्त्र उढ़ा कर, उसे दूसरे स्वर्ण सिंहासन पर सुख पूर्वक विराजमान किया, नानाविध पुष्प नवगुञ्जा-सुन्दरमुक्तादि द्वारा मयूर पंखों को तिरस्कृत करने वाले कान्ति मान केशपाश को दोनों और सुन्दर पुष्प गुच्छों से सजाया। फिर वेणीरूप में उन्हें गूंथ कर, निज निज सेवा कार्य में कुशल परिजन समूह से दिये गए विविध आलेप-भूषण-माल्यादिकों से यथास्थान धारण कराकर सखी राधा को अलंकृत किया एवं अपने सौभाग्य सराहे।

इतना कहते कहते उस महोत्सव के स्मरण-आनन्द से ललिता में एकदम कम्प, पुलक, स्वरभंग से हुआ, फिर वह मूर्च्छित हो गई। तब विशाखा ने पीछे से आकर उसको सहारा दिया और कान में 'राधे-कृष्ण, राधे कृष्ण' इन नामों का कीर्तन सुनाया। उस नाम कीर्तनामृत से मूर्च्छा से जाग कर ललिता क्षण भर मौन रही। फिर धैर्य धारण कर कहने लगी।

परन्तु ललिता को मूर्च्छावस्था में देखकर श्रीराधा उस समय इस प्रकार विलाप करने लगी—

हा ! मेरे प्राणप्रदीपों से नीराजित चरितवाली प्रियसखि ललिते ! मुझ मन्दभागिनी को तुम निराश कर रही हो ? हा भगवन् ! भक्तवत्सल भास्कर देव ! रक्षा करो, रक्षा करो। हा गोकुल-सुधानिधे ! आप पुलिन्द जाति से लेकर सम्पूर्ण गोकुलवासि जनों की रक्षा के लिए महा संकल्प को धारण करने वाले हो, अतः शीघ्र ही निज सुधामय करस्पर्श द्वारा मेरे प्राणरूपी—कोकिलसमूह की जीवित रखने वाली इस ललिता नाम्नी अद्भुत सुधारसालवल्ली को जीवन प्रदान करो। इसके प्राणदान के मूल्य रूपमें मुझ तपस्विनी को खरीद कर अपनी दासी बना लो।

इसप्रकार विलापपूर्वक अश्रुधारा बहाती श्रीराधा वेग से ललिता के पास आयी और उसे आलिंगन किया। आलिंगन करते ही श्रीराधा भी रसमय सात्त्विक महास्तम्भ से मूर्च्छित हो गयी। ऐसा देखकर भय से हृदयमें काँपती हुई रङ्गणवल्ली और तुलसी श्रीराधा के समीप आयीं। रङ्गणवल्ली ने बायीं भुजा से श्रीराधा को पीठ से सहारा देकर दक्षिण हाथ से धीरे धीरे उससे शरीर को सहलाते हुए 'हा नाथ ! रक्षा करो, रक्षा करो—अश्रुपात पूर्वक गद्‌गद् कण्ठ से ऐसा कहने लगी। तुलसी नूतन कोमल तमाल-पत्रों के पंखे से शीघ्र हवा करने लगी। जब श्रीराधा ने संज्ञाप्राप्त कर ललिता को स्वस्थ देखा तो आनन्दित हो उठीं ॥३०५॥

ललिता श्रीराधा राज्याभिषेक कथा को आगे कहने लगी—हाँ ! उस समय आनन्द से उच्छलित सात्त्विकभावालंकारों से भूषित श्रीराधा को समस्त सभागण के साथ भगवती पूर्णमासीने हाथ पकड़कर विचित्ररत्न सिंहासन पर विराजमान किया। एकानंशा देवी की बहिन कामाख्या श्यामल देवता ने श्रीकृष्ण के हृदय पर लगे तिलक के मृगमद द्वारा शंख-घण्टा-दुन्दुभि कोलाहल शब्द पूर्वक जय जय शब्द से वृन्दावनराज्य की महारानी के रूप में तिलक विधान किया। [एकानंशा तथा कामाख्या दोनों शिवपत्नी हैं। किन्तु यहां श्लेषार्थ में एकानंशा—यशोदा से उत्पन्ना योगमाया तथा उसकी सहोदरा कामाख्या देवता से कन्दर्भ नामक श्यामसुन्दर देवता का अर्थ ग्रहणीय है]

तत्पश्चात् ललिता के द्वारा यह महोत्सव सुनकर सम्पूर्ण गोपीजन आनन्द-हास-कोलाहल करने लगीं। उसके श्रवण से आनन्द जनित सात्त्विक अनुभावों को यत्न पूर्वक छिपाकर कुछ हँसता हुआ मैं बोला—ललिते ! इस कथन से कैसे समझूँ कि यहाँ तुम्हारा राज्य हो गया है ? प्रत्युत तुम्हारे इस कथन से ऐसा निश्चय होता है कि तुमने अपने मुख से यह निर्णय कर दिया कि तुम्हारे साथ यह राज्य मेरा ही है ॥३०६॥ नान्दीमुखी—वह कैसे ? ३०७॥ तब मैंने कहा—क्योंकि भगवती पूर्णमासी ने मेरे इशारे पर वृन्दावन के इन्द्र स्वरूप मेरी रानी के रूप में राधा का अभिषेक किया था ॥३०८॥

विशाखा हँसती हुई—ओ असंगतवादी ! इन्द्र की पत्नी तो देवी है, वह शची नाम से प्रसिद्ध है एवं स्वर्ग में रहती है। परन्तु यह हमारी सखी तो पृथिवीवासिनी भाग्यवान् अभिमन्यु की पत्नी मानुषी है ॥३०९॥ मैंने कहा—अपने को तर्काचार्य शिरोमणि मानने वाली विशाखे ! तू बड़ी जड़बुद्धि है; बारंबार न्याय शास्त्र के प्रत्यक्ष खण्ड को पढ़कर भी भूल गई है ? ॥३१०॥ विशाखा—मैं क्या भूल गयी हूँ ? ॥३११॥ मैं बोला—सुन, यदि तुम्हारी सहचरी राधा मेरी प्रेयसी न होती तो मेरे हृदय स्थित तिलक के मृगमद से भगवती ने उसका तिलक क्यों किया ? और मेरे कण्ठ के हार तथा वैजयन्ती से उसके गले को क्यों अलंकृत किया ? ॥३१२॥

ललिता—अरे शशक के सींग का धनुष धारण करने वाले मिथ्या पुरन्दर ! जिसके चरणकमल

अत्युत्तम सौभाग्य रेखावली से संवलित हैं, गन्धर्व-विद्याधर गण जिसके महद्वैभव का निरन्तर कीर्तन करते हैं, ब्रह्मा जी जिसके महाचरितों की स्तुति करते हैं, जो सम्पूर्ण कामना सम्पत्ति देने वाली है, नन्दीगणों के स्वामी श्रीशिव की पत्नी, कैलासवासिनी, विन्ध्याचल वासिनी एकानंशा की बड़ी भगिनी कामाख्या नाम वाली देवता के महाप्रसादी मृगमद और माला से भगवती पूर्णमासी ने इस श्रीराधा का शृङ्गार किया था। उससे भला तुम्हारा क्या संबन्ध? [श्लेष में ये सब विशेषण श्रीकृष्ण के ही हैं, तथापि श्रीकृष्ण को हराने के लिए ललिता ने ऐसे दो अर्थों वाले वाक्यों का प्रयोग किया है] ॥३१३॥

तुङ्गविद्या—सखि ललिते! बड़ा सुन्दर सम्बोधन किया है। क्योंकि यह अलीक पुरन्दर है ॥३१४॥ विशाखा—वह कैसे? ३१५॥ तुङ्गविद्या—सुनो, इस माथुर मण्डल में याचक लोग, ब्राह्मण तथा संगीतादि कलाविशारद जन पच्चीस कौड़ियों मात्र की प्राप्ति के लिए किसी क्षुद्रतर ग्राम के अध्यक्ष के लिए—हे देव! हे महाराज! इत्यादि मिथ्या सम्बोधन करते हैं और वह (सुनकर) प्रसन्न हो जाता है। उसी प्रकार भांग खाकर पागल हुए भाँड-भट्ट आदि लोग चार तोले मात्र नवनीत की प्राप्ति के लिए "वृन्दावन पुरन्दर"—इस शब्द से इसको सम्बोधित कर देते हैं। यह सम्बोधन सर्वथा मिथ्या तथा स्तुति का आभास मात्र ही है। उसी सम्बोधन से यह स्वाभाविक चञ्चल किसान (कृष्ण) निर्बुद्धि होने के कारण अपने को सचमुच पुरन्दर रूप मान कर अमरावती का पुरन्दर कह कर अपने को प्रकाशित करता है।

इतना कह कर तुङ्गविद्या हास्य परिहास को रोक कर वृन्दावन राज्य में मेरे (श्रीकृष्ण के) राज्याभिषेक का वृत्तान्त सखीगण को सुनाने लगी—हे सखियो! पावन सरोवर की काई से उत्पन्न स्वर्ण एवं उससे निकले अति सुन्दर मुक्ताफल आदि विविधरत्नों से निर्मित सिंहासन पर यह (कृष्ण) विराजमान हुए थे। उस समय निर्मल आकाश में विकसित सुगन्धित पुष्पों पर लाल रंग के भ्रमर गुन्जार कर रहे थे, इनके शिर पर आकाशपुष्पों का अति सुन्दर मुकुट टेढ़ी-मेढ़ी शोभा पा रहा था। इस सुबलने इसके शिर पर छत्र लगा रखा था, वह छत्र कमठ की कठोर पीठ के पंखों से बना हुआ था उसमें से अमृत जैसे कण बरस रहे थे। उज्ज्वल और चतुर नामक दो सखा चामर से इनकी हवा कर रहे थे। वे दोनों चामर भी कोमल हथेलियों के रोम समूह से निर्मित थे। अतिप्रतिष्ठित बन्ध्या नारियों के गर्भ से उत्पन्न महामहासत्पुरुष समूह पद्मगन्ध आदि नामक साँड़ों की सुमधुर दुग्धधारा से इस वृन्दावन महेन्द्र का अभिषेक कर रहे थे। इसके बाएँ हाथ की मुष्टी में खरगोश के सींगों से बना सुन्दर धनुष शोभा पा रहा था। इस प्रकार राज्याभिषेक के दिन से लेकर अब तक सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में इनके यशः प्रताप की प्रकाशलहरी फैल रही है। उस अभिषेक महोत्सव का अनुभव करके भी आप सब इनको साक्षात् महेन्द्र (पुरन्दर) नहीं मान रही हैं;—मैं समझती हूँ यह आप सबका महान् अन्याय है।

यह सुनकर मुस्कराहट भरे नयनकोणों से लज्जा पूर्वक सभी गोपियाँ मेरे मुख को देख कर परस्पर देखने लगीं तब उनमें चित्रा गोपी बोली—तुम दोनों इसकी व्यर्थ हँसी क्यों कर रही हो? यह सच्चे देवेन्द्र हैं ॥३१६॥ तुङ्गविद्या बोली—चित्रे! यदि यह देवेन्द्र है तो भूलोक पर यह कैसे पधारा है? ॥३१७॥ चित्रा—सुनो, "यह देवेन्द्र (श्रीकृष्ण) पररमणी (श्रीराधा) में आसक्त है" ऐसा सबसे सुनकर क्रोध करके; शचीदेवी (चन्द्रावली) ने चरणों के आघात से इसकी भर्त्सना की। तब यह परमसुखप्रद अपने भवन को त्याग कर परम सुन्दर नवीन गोपरूप को धारण कर पुरश्चरण विधान द्वारा वृन्दावनेश्वरी का कर्षक (किसान अथवा सेवक) होकर सुख पूर्वक यहां समय बिता रहा है। अतः

इसको हास्यरस का विषयालम्बन न बनाकर गृहागत अतिथि जानकर इसका यथेष्ट स्नेह सम्मान करो ।।३१८।।

यह सुनकर सभी गोपियाँ मुसकराने लगीं। तब हँसकर नान्दीमुखी बोली—चित्रे ! व्रज में ही नित्य विहार करने वाले व्रजेन्द्रनन्दन के विषय में जो यह तुमने कहा है, उसके शब्दार्थ का अभिप्राय प्रायः गूढ़ ही है—ऐसा प्रतीत होता है। अतः इसको विवेचन पूर्वक बताकर हम सबको भली प्रकार आनन्दित करो ।।३१९।। तब चित्रा ने तो मुनिव्रत धारण कर लिया अर्थात् मौन हो गयी। तब आनन्दपूर्वक वृन्दा कहने लगी—नान्दीमुखि ! परम चतुर इस चित्रा का गूढ़ अभिप्राय मैं सुन्दर रूप से कहती हूँ, सावधान होकर सुनो ।।३२०।।

नान्दीमुखी—यह देवेन्द्र कैसे है—इसे स्पष्ट बताओ ।।३२१।। वृन्दा—'दिव्' धातु का अर्थ है क्रीड़ा और दीप्ति। अतः विविध मनोहर विचित्र क्रीड़ाविलास करने वाले 'देव' कहते हैं। तथा विशेष दीप्तिमान भी 'देव' कहे जाते हैं। इस प्रकार परमोज्ज्वल तेज तरङ्ग के मनोहर अद्भुत सौन्दर्य रूप, अमृत प्रवाहशाली देवगणों का भी जो इन्द्र अर्थात् महाप्रभु है, वही देवेन्द्र है। देवेन्द्र सबसे परमोत्कर्ष रूप में विराजमान होता है। देवेन्द्र का अर्थ इस प्रकार जान लो ।।३२२।। नान्दीमुखी—देवेन्द्र शब्द की यह व्याख्या तुमने यथार्थ की है, किन्तु "पर रमणीरत" इसका क्या अर्थ है ।।३२३।।

वृन्दा—"पर" शब्द का अर्थ है 'अन्य, विपक्ष तथा परमोत्कृष्ट" इस प्रकार अन्या, बिपक्षा तथा परमोत्कृष्टा रमणी है श्रीराधा। उन श्रीराधा में जो परमासक्त है, परमानुराग से उसको जो रमण कराता है। वह 'पररमणीरत' कहलाता है ।।३२४।। मुसकराकर चम्पकलता बोली—वृन्दे ! देवी (शची) कौन है ? उसका भी यथार्थ निरूपण कर।।३२५।। वृन्दा—देव हुए बिना देव का पूजन नहीं किया जाता—इस न्याय से चण्डिका देवी की परिचर्या में लगी रहने से वह देवी है। देव की पत्नी देवी होती है, अथवा अमंगल में भी मंगल समान व्यवहार से वह देवी कही गई है ।।३२६।।

नान्दीमुखी—ऐसी वह देवी कौन है ? ।।३२७।। विशाखा—इस प्रकार की देवी चन्द्रावली हो सकती है ।।३२८।। वृन्दा मुस्करा कर मौन हो जाती है—इसे स्वीकार करती है ।।३२९।। उपस्थित सभी गोपियाँ मुस्कराने लगीं ।।३३०।। नान्दीमुखी—चरण-प्रहार करने से तो उसकी महाधृष्टता प्रकाशित होती है। उसका नाम देवी तो ऐसा रहा जैसे काने का नाम पद्मलोचन। तब तो उसकी बड़ी नीचता ही सिद्ध हुई। परन्तु परम-सुखप्रद उसका अपना भवन कौन सा है ? यह भी बताओ ।।३३१

वृन्दा—निविड़ता तथा पुष्प एवं भ्रमर गुञ्जनादि सौन्दर्य से रहित परम अर्थात् केवल 'असुखद'। अथवा परमसुख का जो दलन करता है वह है परमसुखद। ऐसा उस देवी का अपना भवन—"सखीस्थली निकटवर्ती है। उसको छोड़कर यह देव यहां आ गया है ।।३३२।। नान्दीमुखी—अहो ! शब्दों के गूढ़ार्थ जानने वाली वृन्दा ! तेरी व्याख्या का कैसा कौशल ? ऐसा अर्थ हमारी जैसी (गोपियों)के लिए दुर्बोध है। अब 'नवीनगोपत्वादि" पद का भी गूढार्थ कृपाकर प्रकाशित करो ।।३३३।।

वृन्दा—"नवीनगोपत्वादि" पद का गूढार्थ यह है कि वेणु, विषाणु, (सींग) लकुटि, गोदोहन की रस्सी, गैरिक चित्र, नूतनमयूरपंख, गुञ्जाहार एवं वन्य श्रृङ्गार धारण करना ही मंजुलनवीनगोपत्व है। उसमें नवीन शब्द से प्रथमतः उसकी नित्य नूतनता ध्वनित होती है। "पुरश्चरण संविधान" का अर्थ है—पुरः—सम्मुख अर्थात् भ्रमरगुञ्जित वकुलराज वृक्ष के नीचे, चरण अर्थात् स्वेच्छाचारी,—प्रोद्दाम

मदोन्मत्तगजराज के समान विलास-उल्लास से युक्त होकर इधर उधर भ्रमण करना, तत्पुरःसर जो विधान (व्यापार) है; अर्थात् लीलाकमलचुम्बन, अशोकलता का नव पल्लव दंशन, निरुपम, गोलाकार दाड़िम (अनार) फल पर करविन्यास तथा स्वर्णजुही का समालिंगन पूर्वक हास्य और नवकर्पूरयुक्त चञ्चल नयन कोण के अवलोकन द्वारा परम-उन्मादक मधुर मधुपान कराना। इसलिये मल्लिका (मोतिया) वकुल (मौलसिरी), चम्पक, माधवी और कनक-यूथिका (स्वर्णजुही) आदि पुष्पों के चयन की विलासमाधुरी को अनुभव करने वाली श्रीवृन्दावन राजधानी की विलासिनी का आकर्षक बनकर उसको उन्मत्त बनाकर अपने समीप जो आकर्षित करता है।

'सुखेन' अर्थात् प्रशंसनीय मधुर मधुर रसास्वादन से उत्पन्न परमानन्द समूह द्वारा, समयं—स्वभावसिद्ध सर्वदा सुप्रकाश बसन्तकाल की निरन्तर-निरुपम-विलासमाधुरी द्वारा सौभाग्य लक्ष्मी को प्राप्तकर जो विराजमान है, तथा उस सौभाग्य लक्ष्मी (श्रीराधा) के साथ अनवरत अनिर्वचनीय विविध मधुर विलास में तत्पर हो सदा विराजता है ॥३३४॥ मन ही मन प्रसन्न होकर मैं बोला—अयि विश्वास-घातिनि वृन्दे ! तू मेरे वृन्दावन बगीचे की रक्षा करने वाली पहरेदार होकर भी इन गोपियों से कैसे मिल गई है ?॥३३४॥

मधुमङ्गल बोला—प्रियमित्र ! यह उद्यानपालिका नमकीन छाछ से भात खाने के लिए अपना उद्यान पालन कार्य छोड़कर अब इन गोपियों की गृहपालिका बन गई है। अतः यह ऐसा क्यों न कहेगी ? ॥३३५॥ वृन्दा—अये ब्राह्मणाभास कटुवटु। तू अपने मित्र के पहले मेघ के सदृश वाक्य रूप जल वर्षा के द्वारा मेंढक के समान प्रफुल्लित होकर निरन्तर कर्णकटु शब्द (टर्र टर्र) करता हुआ सब को उद्विग्न कर रहा है ॥३३६॥

मल्ली-भृङ्गी—देवि ललिते ! स्वामिनी (श्रीराधा) ने जो दूसरे पत्र में लिखा है, उसे क्या आप भूल गईं हैं ? ॥३३७॥ ललिता—क्या लिखा है ? स्मरण करा दे ना ॥३३८॥ मल्लीभृङ्गी—समुचित कर देने में जो कुत्सित युक्तियाँ करके विरोध आचरण करे। उस व्यक्ति को बाँध कर शीघ्र मेरे समीप ले आओ ॥३३९॥ ललिता—हाँ कर देने का विरोधी यह मधुमङ्गल ही है। इसे लता-पाश से दृढ़ बाँधकर कोमल प्रियसखी के पास न ले जाकर इसे तुम दोनों जटिला और अभिमन्यु के पास ही शीघ्र ले जाओ। वह यावटग्राम का सिंह अभिमन्यु ही ताड़ना पूर्वक इससे अपना कर वसूल कर लेगा ॥३४०॥

मधुमङ्गल, मन में भयभीत होकर मुझसे बोला—कुछ आवश्यक कार्य मेरे गृह में है, अतः उसको पूरा करके अभी आता हूँ ॥३४१॥ तब मैंने कहा—धिक्कार है ब्राह्मण तुझे ! मेरे सामने ही तू इन स्त्रियों के वागाडम्बर से क्यों डर रहा है ? ॥३४२॥ मधुमङ्गल—हे महावीर ! घाट की रक्षा करते हुए गोवर्धन की दानघाटी में अनेक बार तेरी वीरता का मैंने अनुभव किया है। उसी दिन ये गोपियाँ वृन्दावन का कर ग्रहण करने के लिए श्रीराधा के आदेश से अपने उत्तरीय वस्त्र से बाँधकर मुझे ले जा रही थी। यह देख कर तुम विस्मित होकर देखते ही रहे। किन्तु मैंने ही तब अपने ब्रह्म तेज के प्रभाव से जैसे तैसे अपने को बचा लिया था।

इतना कह कर मधुमङ्गल भागने का नाटक करने लगा। तब भागते हुए मधुमङ्गल का हाथ पकड़ मैंने उसे लौटा लिया। फिर मैंने कहा—ललिते ! उस सुकुमार अबला(श्रीराधा)को मैं भला कैसे कर दूँगा ? प्रत्युत बलपूर्वक इच्छानुसार उससे ही कर वसूल करूँगा। यह सुन कर श्रीराधा नेत्र प्रान्त से

मुझे ईषत् देखती हुई मुसकराने लगी ।।३४३।। नान्दीमुखी—चित्रे ! 'वाटिका का अतिथि'—इस वचन से तेरा क्या अभिप्राय है ? ।।३४४।।

ललिता बोली—नान्दीमुखि ! इस रहस्य को जान कर भी तुम क्यों पूछती हो ? क्योंकि यह अपने सदा के वासस्थान महावन को त्याग कर छः सात वर्ष की आयु में ही यहाँ आगया है ।।३४५।। नान्दीमुखी—प्रियजन्म भूमि के त्याग का क्या कारण ? ।।३४६।। राधा धीरे से बोली—जन समूह के कारण वह ग्राम नगर के समान विशाल था। अतः वहाँ इसे स्वच्छन्दता नहीं थी। फिर अबलावध, दूध-दही भाण्ड भंग, नवनीत हरण आदि विविध प्रयुक्त व्यवसायाभासों से अनेक प्रकार की दुष्कर्माभिलाषाओं के असिद्ध हो जाने के कारण ही यह वहां से चला आया। निर्जन तथा गहन विशाल वृन्दावन में कुलललनाओं के गृहरूप देह में अधर दंशन तथा स्वच्छन्दता-पूर्ण वस्त्रों के अपहरण की अधिक लालसा ही इसे अपनी जन्मभूमि त्यागनी पड़ी।

(श्रीराधा) के यह वचन सुनकर ललिता ने सबके सामने उच्चस्वर से अपने अभिप्राय को प्रकट किया तब नान्दीमुखी कहने लगी—हे ललिते ! इस समय तो इसका वैसा व्यवहार नहीं दिखाई देता ।।३४७।। श्रीराधा पुनः धीरे से कहने लगी—तुम सत्य कहती हो, अब यह कृष्ण स्वधर्मत्याग और विरुद्ध संस्कार से उत्पन्न दूषित बुद्धि के कारण पूर्व किए गए चोरी आदि पापों का आचार्यललिता द्वारा कराए गए प्रायश्चित्त से विनाश कर चुका है। तथा अनुतापकृत विवेक द्वारा गोपीगण की कृषि वृत्ति से निज धर्मस्वरूप आचरण करके प्रचुर धान्य उत्पादन कर रहा है। उनका भाग उनको देकर तथा निज भाग स्वयं लेकर उन गोपियों तथा अपने को आनन्दित करता हुआ परम पवित्र रूप से विराजमान् है।

श्रीराधा के इन वचनों को विशाखा ने हँसते हुए सबके सामने कहा—यह सुनकर सम्पूर्ण व्रज सुन्दरी गण हास्य कोलाहल महोत्सव करने लगीं। तब कपट तथा असूया के सहित मैंने सुबल से कहा—मित्र सुबल ! यह धूर्ता गोपियाँ परिहास के छल से मेरे वृन्दावन राज्य के अधिपत्य को बिलकुल समाप्त कर रहीं हैं, क्या तुम समझ पाये हो ? ३४८।। सुबल—मित्र ! तुम्हारा अधिकार ही नष्ट नहीं किया जा रहा, परन्तु तुझे किसान बना दिया गया है ।।३४९।।

वृन्दा—सुबल ! तुम बहुत विचक्षण पण्डित हो तथा 'राधाकृष्ण' दोनों के परमप्रिय हो। अब तुम नान्दीमुखी के साथ मिलकर अपने परम प्रिय राधा कृष्ण का राज्य के लिए विवाद का उचित न्याय देखकर विरोध खण्डन क्यों नहीं करते ? तब वृन्दा का यह कथन सुन कर "बहुत ठीक, बहुत ठीक" इस प्रकार मैंने तथा ललिता ने कहा। तब सुबल बोला—मित्र ! यह राज्य इन गोपियों का कैसे हुआ ?—पहिले ललिता यह बतावे। फिर आप भी बताओ कि यह राज्य आपका कैसे है ? ।।३५०।।

तब मैं बोला—सुबल ! अज्ञान से जिन व्रजदेवियों के संग से मैं अपराधी हुआ और प्रायश्चित्त के द्वारा अब शुद्धि को प्राप्त हुआ हूँ। अब फिर पुनः इनके साथ मैं कैसे उत्तर प्रत्युत्तर करूं ।।३५१।। वृन्दा—हे महाशुद्ध ! आपके वचनगन्ध मात्र से ही इन गोपियों में कलुष समूह उत्पन्न होने पर भी इनको वृन्दावन चक्रवर्तिनी (श्रीराधा) ने सम्पूर्ण विधि सहित विषमशर सरोवर (कामदेवकी क्रीड़ा ने) महातीर्थ में स्नान करा कर सर्वथा शुद्ध कर दिया है। अब वे गोपियाँ तथा आप प्रायश्चित्त द्वारा शुद्ध हो चुके हैं। अतः अब सम्वाद में कोई दोष नहीं है। अतः हे ललिते ! तुम ही (पहिले) वर्णन करो ।।३५२।।

ललिता—पहले तो इस वृन्दावन के राज्य में इस मिथ्यावादी धूर्त का आधिपत्य तो दूर, सम्बन्ध लेश भी नहीं है ।।३५३।। नान्दीमुखी—वह कैसे ? ३५४।। ललिता – इसका पितृपरम्परा से महावन में ही राज्य तथा कुल क्रम से सदा का वास स्थान है ।।३५५।। नान्दीमुखी—इसमें क्या प्रमाण है ? ।।३५६।।

ललिता – श्रीभागवत–आदि पुराण के वक्ता व्यास आदि मुनीन्द्रों के वचन ही प्रमाण स्वरूप हैं ।।३५७।। सुबल––ललिते ! मध्यस्थ होकर मैं यथार्थ ही कहूँगा । तेरे मुख को देखकर मिथ्या नहीं कह सकता मैं पूछता हूँ—इसके महावन के राजा होने से इस वृन्दावन का राज्य तुम्हारा हो जायगा क्या ? यदि इस विषय में कोई महाप्रमाण हो तो बताओ ।।३५८।। ललिता—प्रत्यक्ष तथा परोक्ष—दोनों प्रकार के अनेक प्रमाण पुराणों में, विद्यमान हैं, उनमें 'प्रत्यक्ष तथा परोक्ष, इनमें प्रत्यक्ष प्रमाण ही बलवान् होता है । इस न्याय से प्रत्यक्ष को ही ग्रहण करना चाहिए ।।३५९।।

नान्दीमुखी—तो प्रत्यक्ष प्रमाण क्या है ? ।।३६०।। ललिता—मैं ही क्या बताऊँ, तुम सभी अनुभव कर रही हो ।।३६१।। नान्दीमुखी—मुझे तो अनुभव नहीं, तू ही स्पष्ट करके कह ।।३६२।।

ललिता—ब्रह्मा की पत्नी सावित्री आदि देवीगण ने दुन्दुभी आदि वाद्यकोलाहल पूर्वक यहीं महारत्न सिंहासन पर जो रत्नाभिषेक किया था, त्रिलोकी में उससे किसको परमानन्द प्राप्त नहीं हुआ—श्रीराधा के राज्याभिषेक से तीनों लोक ही परमानन्दित हुए थे ।।३६३।। तब सुबल बोला—ललिते ! तुम जो कुछ कह रही हो उसी को अन्यथा निरूपण कर हमारा मित्र तो तुम सबको भी अपने आधीन करने को तैयार बैठा है—वृन्दावन राज्य की तो बात ही क्या है ? ।।३६४।।

ललिता—सुबल ! यदि तुम्हारा यह दो पैर वाला गोपप्रियमित्र सब सत्य ही कहता है, तो फिर वृन्दावन राज्य में अभिषिक्ता और महासिंहासन पर विराजमाना श्रीराधा के, और श्रीराधा के चरणानुजीवी मेरे वचनों को कह कर यह स्वामी इस समय भी क्यों उनकी चरण सेवा की एकमात्र अभिलाषा लेकर इन्हीं (श्रीराधा) के मंत्रराज को ग्रहण करने की आग्रह पूर्वक अभिलाषा कर रहा है ? यह सभी बातें क्या तुम भूल गए हो ? ।।३६५।।

मुस्कराती हुई नान्दीमुखी बोली—ललिते ! मदन मोदक भोजी एवं महाकामी विलासी इस राजपुत्र ने जो प्रलाप किया है, वह इस विषय में प्रमाण हो सकता है ? (अर्थात् प्रमाण नहीं हो सकता)। अत: यदि और कोई प्रबल प्रमाण हो तो उसे दिखा ।।३६६।। वृन्दा—ललिता जो जो प्रमाण दिखाती है उन सबको उन्मत्त राजपुत्र का पक्ष लेकर तुम दोनों खण्डन कर रहे हो। अत: सर्वत्र प्रसिद्ध किसी और प्रमाण को अतिक्रोध के कारण ललिता नहीं दिखा रही है ।।३६७।। नान्दीमुखी—वृन्दे ! (यदि ललिता क्रोध के कारण नहीं दिखा रही) तो तू ही उन प्रमाणों को बता ।।३६८।।

वृन्दा—प्रेम ने अपने असाधारण स्वरूप का दान करते हुए यह वृन्दाटवी श्रीराधा की प्रिय सखी रूप में नित्य निरूपित की गयी है ।।३६९।। नान्दीमुखी—कैसा सारूप्य ? बता तो ।।३७०।।

वृन्दा—सुनो ।।३७१।। इस वृन्दावन में कान्ति और सुगन्धि विशिष्ट चम्पकलतावली एवं विद्युतुलता को तिरस्कृत करने वाली स्वर्ण यूथी की पंक्तियां तो श्रीराधा के स्वरूप और सादृश्य को प्राप्त हो रही हैं। इसी प्रकार विकसित मनोहर कमल समूह इनके मुख के सारूप्य को प्राप्त कर रहा है ।।१।। ईषत् विकसित नव कमल समूह तथा लीला से वक्र चाल चलते हुए मनोहर उन्मत्त हरिण

उनके नेत्रों के सादृश्य को प्राप्त कर रहे हैं। सुन्दर विम्बसमूह एवं विकसित बन्धूक पुष्प समूह श्रीराधा के अमृतस्यन्दि-स्फुरित-अधर-युगल की समानता प्रकाशित कर रहे हैं ॥२॥

कम्पायमान होने से मनोहर वल्लरियाँ भुजाओं की, शुकपक्षियों की नासिका तथा तिल के पुष्प परम द्युतिमान नासिका की, पूर्ण विकासशील कुमुद समूह इनके हास्य की एवं सुगन्धि से जिन्होंने भ्रमरों को अन्धा बना दिया है ऐसी कुन्द की कलिकाएं श्रीराधा के परमरुचियुक्त दांतों की समानता प्राप्त कर रही हैं। ३॥ भंगिमापूर्ण भ्रमण करती हुई भ्रमरों की श्रेष्ठ पंक्ति भ्रू युगल की, देदीप्यमान तथा मनोहर वकपुष्पों की अत्यन्त शोभा ललाट की, मदोन्मत्त मयूरों की शिखण्डावली वेणी की तथा मुञ्जों का समूह कन्दर्पराज के धनुष की प्रत्यञ्चा की द्युति को हरण करने वाले श्रीराधा के कर्ण युगल की समता में विराजमान हैं ॥४॥

विल्व, ताल और अनार के फल उदीयमान कुचयुगल का, वृन्दावन के स्वर्णनिर्मित सिंहासन समूह देदीप्यमान वक्ष-स्थल का, तथा वंशीशब्द से पूजित महान् पर्वतों के नितम्ब प्रदेश श्रीराधा के शब्दायमान नूतन क्षुद्रघंटिका युक्त नितम्बों का स्वारूप्य धारण कर रहे हैं ॥५॥ इस वृन्दावन के सरस तथा चमकीले केलों के स्तम्भ समूह कामक्रीड़ा में समर्थ इनके श्रेष्ठ उरु युगल का, स्थल कमल समूह चरणों का तथा हंसिनियों की ललित गति से उत्पन्न चतुरता का, सदा उन्माद से बढ़े हुए हाथियों को गमन शिक्षा प्रदान करने वाली श्रीराधा की चाल का सादृश्य लाभ कर रही है ॥६॥

दीप्तियुक्त सैंकड़ों जम्बूफल अलक पंक्ति के, वसन्त ऋतु में युवक कोकिलों से की जाती हुई मनोज्ञ ध्वनि मनोहर वचनों के, एवं विकसित कमलों पर नृत्य करते हुए खञ्जन पक्षी श्रीराधा के सुप्रसन्न परम-सुन्दर मुख पर चमकीले नेत्र प्रान्त के नर्तन-क्रम के सौन्दर्य को प्राप्त हो रहे हैं ॥७॥ यमुना स्फूर्तिशील प्रेम द्वारा नेत्रों से झरते हुए कज्जल युक्त अश्रु समूह का, मानसी गङ्गा जल इनके निर्मल चित्त का, विविध सरोवर समूह (प्रेम के सात्त्विक विकार रूप) प्रकृष्ट स्वेद-प्रवाह का और कान्ति से अतिमनोहर गुञ्जा फल समूह श्रीराधा के (हृदयस्थ श्रीकृष्ण सम्बन्धि) महाराग का अनुकरण कर रहे हैं ॥८॥

परम सुन्दर कुंकुम समूह तथा कमलगर्भा यह वृन्दाटवी श्रीराधा की, अङ्गगन्ध को प्राप्त हो रही है, वह गन्ध निरन्तर सपत्नी वृन्द (चन्द्रावली आदि) की नासिका को सन्तापदायी तथा सुहृद्गण (ललितादि तथा श्यामलादि) की नासिका को निरन्तर प्रकृष्ट आनन्दकारी होते हुए सम्पूर्ण व्रजवासियों को परस्पर मिलाने वाली अर्थात् आकर्षणकारी हो रही है ॥९॥

परमदेदीप्यमान वृन्दावन का यह भूमिभाग, जिसमें कहीं स्वर्ण-निर्मित गृहसमूह हैं, कहीं गुहा के अन्तराल, कहीं कुञ्जों का मध्य भाग, कहीं पर्वतों की चट्टानें श्रीराधा की देहकान्ति का सादृश्य लाभ कर रहे हैं। जिस देहकान्ति की स्वल्प कण छटा से सुमेरु की उद्दीप्त कान्ति का गर्व खण्डित हो जाता है एवं विद्युत् की शोभा भी जिसकी सेवा करती है ॥१०॥

यहाँ के सरोवर श्रीराधा के शोभायमान नाभि के समान हैं तथा नाभि के ऊपर जो रोमावली है, वही मानों उन सरोवरों में कृष्णवर्ण के सर्प हैं, जिनके देखने मात्र से वकशत्रु (श्रीकृष्ण) को कम्प होने लगता है। तथा रत्नजटित कल्पवृक्ष श्रीराधा की दानशीलता में समानता दिखा रहे हैं और कदम्बों का विशाल किञ्जल्क समूह रोमाञ्च स्वरूप हो रहा है ॥११॥ तीनों लोक के शिष्ट जनों के द्वारा सदा स्तुत्य वृन्दावन के सम्पूर्ण मुक्त स्थावर-जंगम और जो भी पदार्थ हैं वे सभी श्रीराधा के अङ्ग-

प्रत्यंगों की शोभा की समानता को धारण किए हुए हैं। उमा, लक्ष्मी तथा रति भी सभा के मध्य में उस श्रीराधा की अङ्गकान्ति तथा उनके सादृश्य प्राप्त वृन्दावन की सुषमा का वर्णन करती हैं ।।१२।।

वृन्दावन की प्रत्येक द्रुम-लता लक्ष्मीपति नारायण के निजानन्द से उच्छलित परमव्योमपुर से भी निरन्तर दीप्तिमान तथा सुख प्रद रूप में बिराजमान है—वे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में चन्द्रमा के समान श्रीराधा के यश को प्रकट कर रही हैं। अतः स्पष्ट ही यह वृन्दाटवी श्रीराधा की प्रिय सखी है ।।१३।। यह सुनकर मैं सगौरव कहने लगा—व्रजराज के अपने राज्य पर सर्वविजयी रूप से विधिपूर्वक युवराज पद पर मेरा अभिषेक हुआ है। मैं स्नेह तथा स्थिरबुद्धि सहित मित्रों को साथ लेकर गौचारण के बहाने इस वन की रक्षा करता हूँ। केवल स्वरूप सादृश्य से यह वन अब तुम्हारा कैसे हो सकता है ?।।१४।। ।।३७२।। यह सुनकर वृन्दा बोली—जिसका जिस वस्तु से मित्रता-सम्बन्ध अथवा स्वसारूप्य सम्बन्ध हो, वही यदि उसकी न हो तो और किसी दूसरे की है, यह निश्चय है ? अतः वृन्दावन का सादृश्य श्रीराधा से है। राधा के समान लक्ष्मीदेवी है। अतः आप सपरिकर जाकर उस लक्ष्मी देवी को क्यों नहीं ग्रहण करते ? ।।३७३।।

यह सुनकर अट्टहास करता हुआ मधुमंगल बोला—अरी मिथ्यावादिनि वृन्दे ! रबड़ी मलाई के लोभ में आकर अपने देवी भाव को छोड़ इनकी चाटुकारिणी बनकर केवलमात्र मिथ्या स्तुति द्वारा हमारे वृन्दावन को अपनी सखी में आरोपित करने में कैसे समर्थ हो जायगी ? ।।३७४।। नान्दीमुखी—ललिते ! परम विज्ञ प्राचीन मुनीश्वरों के वचनों के बिना तुम दोनों पक्ष में कोई भी हार नहीं सकता; अतः कोई पुराण वचन प्रमाण में प्रदर्शित करो ।।३७५।।

ललिता—इसका पक्ष लेकर यदि सब व्यक्ति ऐसा कहें—तो भगवती पूर्णमासी के पास जाकर उनसे (श्रीराधा के वृन्दावनधीशता सम्बन्धी) बहुत से वचन सुनो ।।३७६।। सुबल—तुम ही उन पुराण वचनों को पढ़कर सुना दो, भगवती के पास जाने से ही क्या होगा ? ।।३७७।। ललिता—हम गोप जाति में उत्पन्न हैं, उस पर भी स्त्रियां हैं इसलिए हमारा पुराण वचन के पाठ में अधिकार ही नहीं है ।।३७८।। सुबल—वृन्दा तो देवी है (गोपी नहीं) यही पुराण वचन सुना दे। स्मरण का अभिनय करती हुई वृन्दा बोली—इस विषय में बहुत से वचन हैं। उनमें से कितनों का पाठ करूँ ? परन्तु अन्यान्य देवियों के देशों में पृथक् पृथक् अधिकारों का वर्णन करते हुए अन्त में "वृन्दावन में श्रीराधा का अधिकार है" सर्व प्रमाणों में प्रबल इस पुराण वचन को भगवती के मुख से किसने नहीं सुना (सभी ने सुना है) ।।३७९।।

तब ललिता आदिक गोपियों को विजय के अभिमान से प्रफुल्लित देखकर गर्वपूर्वक मधुमङ्गल कहने लगा—अयि नान्दीमुखि ! सम्पूर्ण पुराणों के शीर्षस्थानीय गोपालतापनी महोपनिषद् में वृन्दावन को कृष्ण के वन रूप में ही प्रसिद्ध यश प्रदान किया गया है। तथा शंकर-ब्रह्मा आदि भी वृन्दावन राजधानी के इन्द्र रूप में हमारे प्रिय मित्र का गान करते हैं। इसे कौन नहीं जानता ? फिर भी 'श्रुति तथा स्मृति—इन दोनों में श्रुति वचन ही अधिक बलवान है। इसलिए यह हमारा ही राज्य है ऐसा सर्वथा सिद्ध है। अतएव हे मित्र सुबल ! दूसरे के राज्य पर अधिकार करने की अभिलाषा करने वाली इन गोपियों को यहाँ से दूर भगा दो ।।३८०।।

तब मैं बोला—'हे मित्र ! तू ही मेरा प्रियकारी प्रियसखा है" ऐसा कह कर मैंने उसको आलिंगन प्रदान किया। यह देखकर कुछ विलक्षण भाव दर्शाती हुई नान्दीमुखी, जहाँ राधा

बैठी थी उस निकुञ्ज को देख कर ललिता-आदि गोपियों की ओर देखने लगी। तब मन्द मुसकरा कर धीरे से राधा बोली—अरे! गोपालतापनी में लिखित 'कृष्ण व शब्द को सुनने मात्र से ही इस महा अदूरदर्शी पण्डित मधुमङ्गल ने उसके अर्थ को बिना जाने ही दूसरे के राज्य पर अपना अधिकार मान लिया, जैसे मूर्ख भ्रमर किंशुक पुष्प के समान शुक की चौंच को पान करने लगा था—इस दृश्य का स्मरण करा रहा है ॥३८१॥

तब राधा द्वारा कथित वर्ण विन्यास का सबके सामने परिहास पूर्ण ढंग से ललिता 'कृष्ण वन' इस (गोपालतापनी) शब्द का कुछ दूसरा ही अर्थ करेगी—ऐसा मैं मन में विचार ही रहा था कि इतने में आश्चर्य-पूर्वक नान्दीमुखी मुझसे कहने लगी—जय की इच्छा वाले कृष्ण! यदि तुम्हें रुचिकर हो तो मैं कुछ कहना चाहती हूँ ॥३८२॥ तब मैंने कहा—हाँ हाँ! इच्छानुसार कहो ॥३८३॥

नान्दीमुखी—यह ललिता कृष्ण वन के अर्थ में श्यामवन अर्थात् घनी हरियाली के कारण श्यामल रंग वाला—ऐसा समास विधान करके तत् समास अर्थात् कर्मधारय समास विधि से तुम्हें पराजित करके इस राज्य को हड़पने की अभिलाषा कर रही है ॥३८४॥ तब मैंने कहा—यह ललिता अनेक प्रकार के पुष्प, चन्दन-रंग आदि के द्वारा श्रृङ्गार रचना करने में ही आचार्या है। उसी विषय को समझ सकती है, क्योंकि वृन्दावनीय पुष्पों के द्वारा मेरा अनेक बार श्रृङ्गार करती है। व्याकरण-शास्त्र के विषय को यह क्या जाने? ॥३८५॥

मुस्कराकर वृन्दा—अपने को व्याकरण के पण्डित मानने वाले! मेरी प्रियसखी ललिता तेरे से कहीं अधिक व्याकरण की प्रसिद्ध आचार्या है ॥३८६॥ ललिता—(लज्जित सी होकर) अयि पामरि वृन्दे! चल हट, यहां से दूर हो जा ॥३८७॥ वृन्दा हा ललिते!—मैं तो तेरा पक्ष लेकर इससे विवाद कर रही हूँ; तू उलटा मेरा तिरस्कार कर रही है? ॥३८८॥

ललिता ने मुझसे कहा—हे व्याकरणाचार्यों में सिंह! अपनी इच्छानुसार दूसरे (तत्पुरुष-कृष्ण का वन ऐसे) समास के द्वारा भय दिखा कर हमारी प्रियसखी के क्रीड़ास्थल इस कृष्णवन को हड़पने का क्यों व्यर्थ प्रयास कर रहे हो! यहाँ पर नित्य अग्नि की तरह जाज्वल्यमान बहुव्रीहि-(जहाँ कृष्ण वास करता है) एवं कर्म धारय (कृष्ण रंग का-श्यामलवन) आदि समासों के द्वारा 'कृष्णवन' शब्द का अर्थ श्यामवन निश्चय होने से 'कृष्ण का वन' उस तत्पुरुष समास को तुम स्वयं ही दूर छोड़ दोगे। हे समास-पण्डित! कृष्णवन शब्द का परिहास के छल से तत्पुरुष समास बनाकर तुम दूसरे के राज्य को क्यों हड़पना चाहते हो? क्योंकि यहाँ तो कर्मधारय तथा बहुव्रीहि के लिए ही अवकाश है, तत्पुरुष का नहीं ॥३८९॥

तब मैं बोला—अपने को चतुर मानने वाली ललिते! गोपाल तापनी उपनिषद् में कृष्णवन शब्द का स्पष्ट तत्पुरुष समास है। फिर कर्मधारय आदि समास की योजना कैसे संभव हो सकती है? तथापि 'दुर्जन-तोष' न्याय से तुम उसी को बताओ मैं सुनूँगा ॥३९०॥ तब धीरे से राधा बोली–घनता के प्राचुर्य से कृष्ण अर्थात् श्याम-(वर्णवाला) वन इस प्रकार स्पष्ट ही यहां कर्मधारय समास है ॥३९१॥

राधा के वचन को ललिता ने जोर से सबको सुनाया। तब प्रशंसा करती हुई चम्पकलता कहने लगी—ललिते! सत्य है, सत्य है बहुत ठीक, बहुत ठीक। क्योंकि यह वन अरिष्ट–केशी आदि के वध, कालिय-दमन, गोवर्धन-धारण तथा नित्य रासादि लीला आदि कर्मों का धारण, या निष्पादन

अथवा प्रकाश करता है। इसलिये इस वन का समास भी कर्मधारय रूप से स्पष्ट एवं सुसिद्ध है ।३९२। ललिता ने पुन: राधा द्वारा धीमे स्वर में कहे गए वचन का अनुवाद करते हुए कहा—कृष्ण वन अर्थात् कहीं कहीं अति श्यामवन जिसमें है,—उसका नाम कृष्ण वन है। इस प्रकार 'कृष्णवन' यह शब्द वृन्दावन का विशेषण है। अत: यहां बहुव्रीहि समास है ।।३९३।।

वृन्दा—सत्य सत्य है, क्योंकि यमुना के किनारे रासस्थली पर अन्धकारमय वटवन है, तथा गोवर्धन के पास पारसौली नामक रासस्थली पर अन्धकारमय निबिड़वन है जो सर्वानन्द सम्पादन करने में सुप्रसिद्ध है ।।३९४।। इन्दुलेखा—ललिते! सत्य है, सत्य है; जिसमें बहुत से ब्रीहि अर्थात् धान्य आदि अन्न हों वह बहुब्रीहि है; अथवा क्यारियों में उत्पन्न मुक्ता ही यहां ब्रीहि-शब्द वाच्य है। अत: वे ब्रीहि जहाँ बहुत हैं—इस प्रकार से इस वन का बहुब्रीहित्व स्पष्ट ही है ।।३९५।।

इसके पश्चात् वे सब मन में गर्वित होकर हँसने लगीं। तब मैं बोला—हे ललिते! तू अनेक प्रकार की कूटकल्पना रूप नगरी की सम्राज्ञी है। (गोपालतापनीस्थ कृष्णवन की) यहाँ तत्पुरुष समास में ही मुख्यता है। अत: तुम कल्पित कर्मधारय तथा बहुब्रीहि द्वारा (इस तत्पुरुष समास का) खण्डन कैसे कर सकती हो? ।।३९६।। ललिता—हे महापुरुष! तू तत्पुरुष-तत्पुरुष इस प्रकार की बारंबार जल्पना कर रहा है। तत्पुरुष समास भी अनेक प्रकार का है। तो मैं पूछती हूँ कि तुम्हारा यह तत्पुरुष कौन सा है? यह भली प्रकार निर्णय करके कहो ।।३९७।।

तब मैं बोला - अरी जड़बुद्धि ललिते। "कृष्ण का वन—कृष्णवन इस अर्थ तात्पर्य युक्त यह कृष्णवन शब्द षष्ठी तत्पुरुष समास वाला है एवं त्रिभुवन में प्रसिद्ध है ।।३९८।। राधा—धीरे से कुञ्ज में से बोली यदि षष्ठी तत्पुरुष समास कर 'कृष्ण का वन' यही अर्थ ठीक है, तो सखीस्थली की वटश्रेणि भी नरसिंह का वन होगा। क्योंकि षष्ठी तत्पुरुष भी नित्य उसी सखी स्थली में विद्यमान रहता है। यहाँ तो षष्ठी समास की सम्भावना भी नहीं है। तदनन्तर हँसकर ललिता ने भी कहा ।।३९९।।

नान्दीमुखी—ललिते! यह तेरा वाग्विन्यास विस्तृत अर्थयुक्त रहस्य पूर्ण प्रतीत होता है। अत: इसे स्पष्ट रूप से कहो ।।४००।। यह सुनकर नेत्र कटाक्ष रूप नीलकमल माला द्वारा मेरे को अलंकृत करती तथा मन मन में मुस्कराती हुई ललिता कहने लगी—हे नान्दी मुखि! षष्ठी नाम की एक कोई स्त्री है; तत् अर्थात् उसका, पुरुष या पति या कोई पुरुष। इस प्रकार 'उस षष्ठी का पति या सम्बन्धी पुरुष' ही 'षष्ठी तत्पुरुष' शब्द का अर्थ है ।।४०१।।

मुस्कराती हुई विशाखा—अरी ललिते! तत्पुरुष (उस पुरुष=श्रीकृष्ण) को हम जानती हैं, परन्तु उस षष्ठी का वास्तविक नाम क्या है? ।।४०२।। ललिता—वह है चन्द्रावली ।।४०३।। विशाखा—चन्द्रावली षष्ठी कैसे हो गयी? ।।४०४।। ललिता—देवीगण के मध्य में पहला, कस का गोप गोवर्धन मल्ल महाभैरव, दूसरी, उसकी माता भारुण्डा चण्डी, तीसरी, चन्द्रावली की माता महीकराला चर्चिका, चौथी, शैव्या काली, पाँचवी, पद्मा शंखिनी और षष्ठी-छठी सखीस्थली वटवासिनी चन्द्रावली। वटवन वासिनी होने के कारण उसका षष्ठी नाम सर्वथा युक्त ही है। क्योंकि वटवृक्ष षष्ठी देवी का अधिष्ठान है ।।४०५।।

ललिता के मुखसे षष्ठी तत्पुरुष का ऐसा अर्थ सुनकर सभी गोपियाँ हास कोलाहल करने लगीं। और मैं मन में विचारने लगा—अहो! इन व्रजगोपियों का बुद्धिकौशल कैसा अद्भुत है? इनके वचनाऽम्बर विलासों ने तो मुझे भी निरुत्तर कर दिया है। ऐसा मन में सोचकर बाहर में निर्वेद व्यक्ति

के समान होकर मैंने कहा--हे नान्दीमुखि ! ये हमारी काम करने वाली किसान गूजरियाँ हैं। हमारे दिए हुए भोग राग तथा कोमल वस्त्रों से पालीपोसी हैं। हमारे ही दिए हुए मुक्ता-मणि-विद्रुम-पद्मराग-मरकतमणि हीरा आदि से जटित विविध भूषणों को धारण करती हैं। इस समय नव यौवन रूप महाधन के गर्व से बड़े छोटे का व्यवहार त्याग कर अवज्ञा से उल्लासित-नेत्र कटाक्ष नर्तन पूर्वक अहंकार युक्त वागाडम्बर विन्यास से सम्पूर्ण व्रज साम्राज्य के अधिपति श्रीनन्दराय महाराज के परमोद्दण्ड कुमार मेरी भी निरन्तर विडम्बना कर रहीं हैं। केवल भगवती चरण (पूर्णमासी) के मुख्य परिजन तुम नांदीमुखी के मुख को देख कर तथा एक ग्रामवासी होने से अपकीर्ति के भय से, इनके द्वारा किया जा रहा, अनुचित व्यवहार भी इतने समय तक दुःख सहित सहता रहा हूँ। परन्तु अब मेरे को कोई दोष न देना। इसी समय इनके वक्षःस्थलों पर कोमल नीलवस्त्र परिवेष्ठित जो अतिविचित्र स्वर्ण सम्पुट युगल हैं, तथा द्वितीया की चन्द्रकला मुद्रा से मुद्रित, जिनका इनके पतियों ने भी कभी दर्शन नहीं किया, ऐसे दुर्लभतारुण्य धन को अपने तीव्र नख-योद्धाओं के द्वारा लुटवाता हूँ। इसी प्रकार इनके अधर-ओष्ठरूप पद्मराग मणियों का भी अपने दन्त रूप दुर्धर्ष सामन्त गणों से अपहरण कराता हूँ। ऐसा करके मैं इनको वचनरूपी धन से हीन दरिद्र बना दूँगा अर्थात् निरुत्तर कर दूँगा। गर्व सहित ऐसा कह कर उनको पकड़ने की इच्छा से मैं उनके पास जाने ही लगा था कि वे सब गोपियाँ कुटिल भ्रकुटि नचाते हुए ईषत् हास्य युक्त कटाक्ष द्वारा मेरे को देखकर धीरे धीरे इधर उधर खिसकने लगीं। तब क्रोध मुद्रा दिखाती हुई ललिता कहने लगी—अरे रसपाननिरत श्याम ! दूर रह दूर रह--इस तेरी मत्तता-युक्त निर्विचार प्रवृत्त को वर्णन करने के लिए हम व्रजेश्वरी के समीप अभी जा रही हैं ।।४०६।।

यह सुनकर सत्यभामा विस्मय-पूर्वक हँसती हुई कहने लगी--हे विनोदिन् ! नाथ ! मैं एक बात पूछना चाहती हूँ ।।४०७।। श्रीकृष्ण ने कहा--प्रिये ! अवश्य पूछो ।।४०८।। श्रीसत्यभामा--राधा के अस्पष्ट-मन्द किंवा मनोगत वचनों का ललितादि सखीगण तुरन्त कैसे वर्णन कर देती थीं ? ।।४०९।। श्रीकृष्ण—ललितादि सम्पूर्ण सखीगण श्रीराधा की कायव्यूह-स्वरूपा हैं। अतः वे उनके मनोगत भावों को क्यों नहीं समझेगीं ? ।।४१०।। श्रीसत्यभामा—हे सुभग ! राधा का परिहासमय उत्तर रूप में वर्ण-विन्यास आप के मन में तत्काल कैसे प्रवेश कर जाता था ? ।।४११।।

तब मधुमङ्गल गद्गद्स्वर से बोला—हे सत्यभामे प्रियसखि ! मञ्जरी और कस्तूरी जिस प्रकार सर्वदा गन्धयुक्त रहती हैं। अर्थात् मञ्जरी-कस्तूरी की गन्ध उनसे सर्वथा अभिन्न ही हैं उसी प्रकार श्रीराधा-श्रीगिरिधारी भी परस्पर सर्वदा अभिन्न हैं। फिर श्रीराधा का अस्पष्ट वर्णविन्यास श्रीकृष्ण के मन में कैसे संचरित न होगा ? ।।४१२।।

मधुमङ्गल का यह वाक्य श्रवण श्रीकृष्ण के लिए मधुर दुग्ध पान के समान होते हुए भी, उससे उनमें राधाविरह की वृद्धि हो उठी। जिसके कारण उत्कट कटु विष ज्वाला उद्भूत हो गयी। बारंबार चलाई जाने वाली लोहे की आधी टूटी हुई टेढ़ी सरिया मानों हृदय मर्म को विद्ध करने लगी। उसकी यातना तथा ज्वाला जनित महातीव्र पीड़ा से, श्रीकृष्ण जब भीतर अत्यन्त कातर हो गये तब संचरणशील अपूर्व जाड्य-मोह-उन्मादादि रूप प्रिय सहचर गण के साथ सुदीप्त स्तम्भ-कम्पादि आठों सात्त्विक भाव रूपी सखागण भी, 'मैं प्रथम स्पर्श करूँगा, मैं पहिले धारण करूँगा'—ऐसी स्पर्धा करते हुए क्रीड़ाविधि अनुसार नर्म से उछलते हुए हृदय में एक दूसरे को जीतने की भावना से एकदम एक के ऊपर एक विना क्रम (श्रीकृष्ण को) आलिंगन करने के लिए टूट पड़े। अर्थात् (श्रीराधा-विरह में उस समय श्रीकृष्ण

में जाड्य मोहादि संचारी एवं स्तम्भकम्पादि सम्पूर्ण सात्विक भावों का उदय हो उठा) इनके उदय होने पर स्वयं श्रीरस नामक नर्म सखा ने रसाभास की विवेचना करके उन संचारी तथा सात्त्विक भावों से कहा अरे अपने को परम चतुर मानने वालो ! खेलने के लिए तुम्हें क्या यही समय मिला है ? ऐसा उपालम्भ देकर उसने नेत्र प्रान्त से उनको निषेध कर दिया। फिर वह प्रिय सखा सदा सुन्दर सौहार्द्र और अचिन्त्य महिमायुक्त औषध स्वरूप 'रस' उन (संचारी तथा सात्विक भावों) को वश में करके श्रीकृष्ण के सर्वाङ्ग में व्याप्त हो गया। रस के द्वारा निषेध करने पर वे संचारी और सात्त्विक भाव समझ गये कि उन्होंने अन्याय ही किया है। इसलिये वे जिह्वा को दांतों से दबा कर संकोच सहित पीछे हट गए, अर्थात् अप्रकट हो गए।

संचारी तथा सात्विक भाव विकार जो श्रीकृष्ण के बाह्य शरीराङ्ग पर प्रकट होने लगे थे वे जब बाहर से हट कर हृदय में अन्तर्हित हो गए, तब श्रीकृष्ण मन-मन में कम्पित होकर विलाप करने लगे—हा राधे ! तुम मेरे प्राण रूपी कपोत की वड़भी प्रिया हो अथवा वासस्थान हो। तथा प्रेम की स्फूर्तिमयी माधुरी धारा की अपार श्रेष्ठ नदी हो। सद्गुण—सत्कला-परिहास प्रहेलियों की खान हो। मेरे नेत्र रूपी चकोरों को पुष्टि देने वाले चन्द्रमा की चन्द्रिका राशि के समान हो। हाय हाय ! निधि के समान प्राप्त होकर तुम मेरे हाथ से किस पाप से छूट निकल गयीं ? ॥४१३॥

तदनन्तर सत्यभामा बोली—यादवेन्द्र ! आपके मुखकमल से गोकुल-विलास-माधुरी के मकरन्द को पान करके मेरी पिपासा परम उल्लास को प्राप्त हो रही है। अतः कृपा करके उसको और पिलाइए ॥४१४॥ श्रीकृष्ण बोले—प्रिये ! सुनो ।४१५॥ तत्पश्चात् मधुमङ्गल बोला—हे सखि ललिते ! मेरा प्रिय सखा मेरी बात का कभी उल्लंघन नहीं करता मैं उसका वाक्य मन्त्री हूँ। इसलिये मुझे कोई अपूर्व उत्कोच (बहुमूल्य घूँस) दो, तब मैं तुम्हारे लिए मुक्ता-मूल्य विषय में सहायता करूँगा।४१६॥

विशाखा—आर्य ! तुम्हारे देने को हमारे पास यहां कुछ भी नहीं है। हाँ सायंकाल में भांग-भोजन के लिए चार कौड़ी अवश्य ही हम दे सकती हैं। यदि सायं पर्यन्त (चार कौड़ी का) विश्वास न हो तो नान्दीमुखी हमारी ओर से जामन है ॥४१७॥ यह सुनकर क्रोध युक्त मधुमङ्गल बोला—अरी अन्याय-भाषिणी ग्वालिनि ! ठहर, ठहर अभी तेरे इस वचन का प्रायश्चित तुम्हें कराता हूँ। इतना उसे कहकर फिर मेरे से कहने लगा—हे प्रिय-मित्र ! आपके मृदु वचन रूप तरल घृतधारा से इन गोपियों का गर्वरूप अग्नि बढ़ गया है। इसीलिये ये आपका भी महान् तिरस्कार करती हुई मुझे बाँध कर ले जाने की व्यवस्था कर रही हैं ॥४१८॥

तब मैंने कहा—सखे ! सत्य, सत्य, जैसे राजधानी पर विजय किये बिना सम्पूर्ण देश भली प्रकार वशवर्ती नहीं होता, उसी प्रकार इन गोपियों की स्वामिनी को बिना पराभूत किए ये कैसे चुप करायी जा सकती हैं ? ऐसा कहकर, जिस कुञ्ज में राधा छिप कर बैठी थी, उसी ओर देख कर अन्य-मनस्क होकर फिर मैं बोला—क्या करूँ ? वह राधा निश्चय इसी पराभूत होने के भय से मेरे सामने नहीं आती। मेरी यह बात सुनकर देखने के लिये राधा ने गरदन को ऊँचा उठाया और संकुचित होकर फिर कुञ्ज में चली गयी ॥४१९॥ सत्यभामा ने पूछा—फिर क्या हुआ ? आगे कहो ॥४२०॥ श्रीकृष्ण बोले—हे नान्दीमुखि ! ललिता आदि गोपांगनाओं के तारुण्यधन से भी उस (राधा) का तारुण्य धन अत्यधिक मूल्यवान् है यह निश्चय समझो ॥४२१॥

नान्दीमुखी—वह कैसे ? ।।४२२।। मैंने कहा—क्योंकि इन (ललितादि) का तारुण्य धन दो सम्पुटों में रखा है, परिमित ही है, किन्तु उसका तारुण्य महामतंग के गोलाकार कुम्भों से भी उन्नत तथा विशाल है। इसीलिये उस परम चतुरा ने गोकुल के प्रसिद्ध चोर के भय से अपने हृदय पर कस्तूरी आदि के अनुलेप के द्वारा उस धन का रंग परिवर्तन कर स्वर्ण निर्मित दो घड़ों में भर कर रखा है ।।४२३।। नान्दीमुखी—मोहन ! इस प्रकार परम गुप्त वह धन क्या कभी तुम्हारे दृष्टि गोचर हुआ है ? ।।४२४।। तब मैं मुस्कराकर बोला—नान्दीमुखी ! विद्युत की चमक की भांति एक बार ही मेरी दृष्टि में वह धन आया था ।।४२५।। नान्दीमुखी – वह कब ? ।।४२६।।

मैं बोला – एक समय यह राधा अपने सरोवर (राधाकुण्ड) में स्नान कर एकान्त में निज अङ्ग से कोमल रेशमी चोली उतार कर जल में फैंक रही थी, भाग्य से उसी समय मैं पुष्प चयन के लिए वहाँ पहुँचा। तभी मैंने उसे किंचित् देखा था। तदनन्तर ही भययुक्त सी होकर इसने नील वस्त्र से उस धन को ढक लिया। इस समय वह यौवन-गर्वित राधा यदि मेरे भाग्य से, मेरे राज्य को ग्रहण करने की अभिलाषा से मेरे सामने उपस्थित हो तो मैं उसको अभिन्न छाया रूप बनकर अपने नख-दन्त आदि सेना-सेवकों के बिना केवल दोनों हस्तकमल द्वारा ही उसके दोनों स्वर्ण-घटों का मन्थन कर सम्पूर्ण धन हरण कर लूँगा। तब वह यूथेश्वरी राधा भय के कारण कम्प पुलकादि से युक्त होकर मौन हो जायगी। तब उसकी सखियाँ महाव्याकुल होकर अपने अपने तारुण्य धन को लेकर भागने के लिए कहीं स्थान भी नहीं पा सकेंगी। किंवा यह सब सखियां अपने अपने धन को अर्पण कर मेरी सेवा करने लगेंगी। अतएव इन अतिक्षुद्र गोपियों से अपनी महामहिमा की ग्लानि करने वाले उत्तर-प्रत्युत्तर से क्या लाभ ?।।४२७।।

यह सुनकर राधा कुछ मुस्कराकर धीरे से नान्दीमुखी से कहने लगी—अयि चपल ब्रह्मचारिणि ! चल भाग यहाँ से चल भाग ।।४२८।। विशाखा—आश्चर्य है ! उड़कर चलने में असमर्थ केवल बिम्बफल खाने वाले, भूखे एवं लोलुप इस शुक के मन में दुर्लभ मधुर द्राक्षा का लोभ जाग रहा है ? ।।४२९।। मधुमङ्गल—प्रियमित्र ! मेरे लिए मेरा मनोभीष्ट पारितोषिक प्रदान कर, फिर निश्चय अभी आप के राज्य पर अभिलाषा करने वाली राधा को आपके हस्तगत कर दूँगा ।।४३०।। तब मैंने कहा—यदि राधा को मेरे हस्तगत कर दे तो सायंकाल मधुर पक्वान भोजन कराऊँगा ।।४३१।।

मधुमङ्गल—मैं मथुरा के राजा कंस के पास पुकार करके एक सौ घुड़सवारों को लाऊंगा। वे चर्मरज्जु से उसकी दोनों बाहुओं को पीठ पर बाँध देंगे ! फिर चाबुक की मार से राधा के पति अभिमन्यु को इस प्रकार पिटवाऊँगा कि पीड़ित होकर वह, अभिमन्यु स्वयं आकर राधा को आपके अर्पण कर देगा। यह सुन सभी हँसने लगे ।।४३२।।

ललिता—विशाखे ! मैं किसी महापुरुष को उद्देश्य करके कुछ निवेदन करती हूँ, तुम उसे श्रवण करो ।।४३३।। विशाखा—कहो, उसे ।।४३४।। तब कदम्ब वृक्ष के अग्रभाग को देखकर ललिता बोली—हे वृन्दाबन विहारि तपस्वि श्रेष्ठ ! तेरी विश्व में फलाहारी रूप में प्रसिद्धि है। अब तू अपनी मर्यादा का उल्लंघन करके अपने अयोग्य परम दुर्लभ साध्वी के हृदयस्थित महाधन की लालसा करके व्यर्थ अपने को कलुषित क्यों कर रहा है ? ।।४३५।।

विशाखा—ललिते ! यह भूखा है, इसे फल तो प्राप्त हो नहीं रहा। इसलिए यह अयोग्य कार्य करने में प्रवृत्त हो रहा है। इसके लिए उत्तम फल बता दो। इससे तुम्हारे धर्म की भी वृद्धि

होगी ।।४३६।। हँसी को रोक कर ललिता बोली—विशाखे ! वह तपस्वी मानस गङ्गा नहीं जानता है क्या ? ।।४३७।। विशाखा—सर्वत्र भ्रमणशील यह अति प्रसिद्ध मानस गंगा को क्यों नहीं जानता होगा ? ।।४३८।। ललिता—उस मानस गङ्गा के पश्चिम दक्षिणी तीर पर सर्वत्र घूमने वाली कोई एक अपूर्व पद्मा नामक वल्लरी स्फुट रूप से विद्यमान है उसके मध्य भाग में परम मनोहर विशाल दो तुम्बी फल हैं । उन तुम्बी फलों के अग्रभाग में बड़े बड़े दो बिम्ब फल लग रहे हैं ।।४३९।।

तब विशाखा मुझसे कहने लगी—हे गोस्वामिन् ! आप शीघ्र ही वहाँ जाकर अपने उपयुक्त उस अनुत्तम (सर्वोत्तम पक्षान्तर में हीन) फल का उपभोग करो । साध्वी के धन का लोभ छोड़ दो, अपने स्वधर्म पालन करने से आप परम सुखी होंगे ।।४४०।। यह सुनकर सभी हँसने लगीं । तब मैं बोला—ललिते ! यह तपस्वी अयाचित वृत्ति वाला है—किसी से न माँगने वाला है ! तथा कर-पात्री हैं । इसके लिए तुम्बीफल निषिद्ध है । अतः उसका उपभोग नहीं कर सकता । किन्तु यहीं पर स्थित अपनी प्रकृष्ट द्युति राशि से दृश्यमान जो अदृश्य हो रही है, उस कांचन वल्ली की गोद में जो मधुर रसीले बिल्व फल विराज रहे हैं । वह स्वयं आकर प्रेम पूर्वक मधुरवचनों द्वारा उस तपस्वी को निमन्त्रण करके उन्हें इसके हाथ में परोसे । तभी यह उनके उपभोग से सुखी होकर ऐसा आशीर्वाद देगा, जिससे उसके फलों की बहुत उन्नति हो जायगी ।।४४१।।

मेरे वचन सुनकर राधा धीरे से कहने लगी—यह धूर्त परिहास-लम्पट है । प्रतीत होता है कि अपने चातुर्य से इसने मेरी यहाँ अवस्थिति जान ली है, तथा मेरी कदर्थना करने के लिए इस प्रकार के वाक्य गढ़ रहा है । अब यहाँ से अलक्षित भाव से दूसरे कुञ्ज में जाकर छिपना ही मेरे लिये उचित है ।।४४२।। राधा मन में ऐसा विचार कर रही थी कि मैंने ललिता से पुनः कहा—प्रिय सखि ललिते ! मैं वृन्दाबन विहारी महाविनोदी यूथेश्वरी से टूटी या रुठी हुई तुझे पटरानी बना कर तेरे साथ एक सिंहासन पर बैठकर विशाखा आदि वृन्दावनचारिणी गोपियों का नृत्य देखना चाहता हूँ । अब इन्हें तुम आज्ञा करो, यह नृत्य प्रारम्भ करें ।।४४३।।

तब क्रोध सहित ललिता बोली—नान्दीमुखि ! हमारी मुक्ताकृषि भूमि की कर बसूली के बदले में इस विदूषक द्वारा परिहासधन दिलाने के लिए ही क्या तू हमको बल पूर्वक यहाँ लौटा कर लाई है ? यह परिहास कर्म को छोड़कर जिस प्रकार सुबल के साथ वैधानिक ढँग से लेख पत्र भरकर हमें मुक्ता-क्षेत्र का कर प्रदान करे युक्ति पूर्वक ऐसी योजना बनाओ । कार्य पूरा कराकर हमको अब शीघ्र ही घर भेज दो ।।४४४।। नान्दीमुखी—तुम्हारा कितना कर होता है, हिसाब लगाकर ठीक ठीक बता दो ? ।।४४५।। ललिता—घासतृण आदि के खेत से धान्य क्षेत्र का कर लगता है । उससे भी अधिक कपास के खेत उससे अधिक रिहायशी क्षेत्र का कर अधिक होता है । परन्तु अपूर्व एवं अमूल्य मुक्ता-क्षेत्र का कर रिहायशी क्षेत्र से भी परार्ध गुणा अधिक होता है । उन सब मुक्ता क्यारियों को धर्मशास्त्रों से विख्यात वृन्दावन राज्य के लोकोत्तर मानदण्ड से नाप कर सुबल उसका लेख पत्र बनाकर उसको बतायें ।।४४६।।

नान्दीमुखी—वह मानदण्ड (नापने का गज) कितने परिमाण का होगा ? ।।४४७।। ललिता—यदि मैं कहूँगी तो उसका कोई विश्वास न करेगा, अतएव इस क्षेत्र की पालिका तथा सर्वशास्त्र की ज्ञाता वृन्दा है । वही इस परिमाण का निरूपण करेगी ।।४४८।। नान्दीमुखी–ठीक है, वृन्दे ! मध्यस्थ होकर न्याय पूर्वक परिमाण दण्ड बता दो ।।४४९।।

वृन्दादेवी ने कहा—वास्तु भूमि, धान्यादि भूमि, घासतृणादि भूमि, कपास भूमि तथा मुक्ताभूमि इन सभी भूमियों का अगूंठे से लेकर क्रमश: पाँचों अगुलियों द्वारा प्रमाण माना गया है। और भी एक प्रमाण है। पण्डित जन अपूर्व मुक्ता क्षेत्रके बहुमूल्य होने के कारण उसका प्रमाण दण्ड अनामिका अँगुली बताते हैं ।।४५०।। नान्दीमुखी—तुमने अभी मानदण्ड के दो प्रमाण दिए हैं। इस मुक्ताक्षेत्र के लिए कौन सा मानदण्ड माना जायगा ? ।।४५१।। ललिता—पहले तो खुरपी से खोदने योग्य घास आदि वाली यह भूमि है। इसमें मुक्ताओं की उत्पत्ति तो अनायास रूप से हो गई। अत: इस भूमि का मानदण्ड तो कनिष्ठा अंगुली के परिमाण का होगा ।।४५२।।

नान्दीमुखी—ललिते ! तुमने जो परिमाण बताया है, वह ठीक ही है। तथापि व्रजेन्द्रकुमार के मुख की ओर देखकर और भगवती की परिचारिका मेरी ओर देख कर इस खेत की नाप में अनामिका परिमाण मानदण्ड स्वीकार करें ।।४५३।। ललिता—वृन्दे ! तू विशेष रूप से लेख क्रिया और मान(नाप) के विषय में निपुण है। अत: इन सब के साथ चलकर नान्दीमुखी और सुबल की सम्मति पूर्वक मुक्ता क्यारी का नाप करके आ ।।४५४।। नान्दीमुखी—ललिते ! यूथेश्वरी राधा की अविद्यमानता में अब तुझे ही अधिकार है। एक प्रार्थना करना चाहती हूँ ।।४५५।। ललिता—जो इच्छा हो कहो, यदि उचित होगी तो पूरी की जायगी ।।४५६।।

नान्दीमुखी—यह (श्रीकृष्ण) अपने देश को छोड़कर आया नया अतिथि है। वृन्दावन रानी (श्रीराधा) के शरणागत है। उस पर भी इसने ऊसर भूमि को जोत कर तुम्हारा पर्याप्त धनलाभ बढ़ाया है। इसलिए मान (नाप श्लेष में कोप) करने पर आप गोपियों की भोगरागादि व्यय से बहुत हानि होगी। दूसरे यह पुन: खेती करने से उदास हो जायगा, मान (नाप) कर भी लोगी तो भी उसके अनुसार यह कर नहीं दे सकता। अत: मान छोड़कर अपने भाग को लेकर तथा समुचित अंश प्रदान कर इसके उत्साह को भली प्रकार बढ़ाओ। इसमें दोनों का मंगल है ।।४५७।।

वृन्दा—वह भाग किस तरह होगा ? ।।४५८।। नान्दीमुखी—क्या तू नहीं जानती है ? इस परम-उज्ज्वल खेत का भाग दोनों का बराबर है। क्योंकि यह दूसरे ग्राम से आकर यहाँ कृषिकर्म कर रहा है ।।४५९।। रंगणमाला धीरे से बोली—यह दूसरे ग्राम का निवासी किसान नहीं रहा, अब तो यहां वन में निवास कर श्रीवृन्दावनेश्वरी की खेती का कार्य करने वाला है; इसलिए इसको छठा भाग ही मिलना चाहिए, समान भाग कैसे प्राप्त करेगा ? ।।४६०।। विशाखा—अरी मुग्धे ! भाग निर्णय कर्म से हमारा क्या ? क्योंकि नाप करके कर ग्रहण करने की ही लिखित आज्ञा हमें अपनी महारानी द्वारा प्राप्त हुई है। फिर हम स्वतन्त्र रूप से और क्या कर सकती हैं ? ।।४६१।।

तत्पश्चात् ललिता और विशाखा के मुख की ओर देख कर वृन्दा ने नेत्रप्रान्त से अपना कर्ण भूषण नान्दीमुखी को दिखाया। तब कुछ मुस्कराती हुई नान्दीमुखी कुछ आगे जाकर वृन्दा के साथ उत्कोच (घूस) देने के मनोभाव को बताने वाली मुद्रा के अभिनय से तथा ललिता और विशाखा का भी कुछ इंगित समझ कर, मेरे पास आकर, धीरे से बोली—हे मोहन ! ये ललिता और विशाखा वृन्दावन रानी (श्रीराधा) की प्रधानमन्त्री स्वरूपा हैं। इसलिए यदि इनको कोई सर्वोत्तम वस्तु उत्कोच रूप में प्रदान करो तभी तो ये दोनों शीघ्र ही तुम्हारी मनोभिलाषा को पूर्णकर देंगी ।।४६२।। तब मैं आनन्द सहित बोला—सखि नान्दीमुखि ! और कोई भी न जान पावे—इस रीति से इन दोनों ललिता और

विशाखा को निर्जन निकुञ्ज में मेरे पास ले आ, तब इनकी इच्छानुरूप उत्कोच देकर इन्हें प्रसन्न कर दूँगा ।।४६३।।

नान्दीमुखी बोली—सुन्दर ! ये सभी गोपियाँ इन ललिता और विशाखा से भिन्न नहीं हैं। अतः संकोच त्याग कर प्रकट रूप से सबके सामने यहीं दे दो ।।४६४।। तब मैंने कहा—जब तक अपना अभिमत अर्थ लाभ प्राप्त न हो उसके पूर्व ही इन्हें कैसे दूँ ? यदि मुझ पर विश्वास न हो तो वह उत्कोच अभी तुम ही धरोहर रूप में रख लो ।।४६५।। नान्दीमुखी—(शिर को हिलाकर) नहीं, नहीं, मैं नहीं रखूंगी ।।४६६।। तब मैं बोला—ओह ! ठीक है, तू ब्रह्मचारिणी है, विषय स्पर्श को पाप समझती है। तो फिर मैं अपनी विश्वासपात्रा परमसाध्वी रंगणमाला को ही यह (उत्कोच) अर्पण करता हूँ ।।४६७।।

नान्दीमुखी—रसिकशेखर ! पहले बता तो दो, उत्कोच में क्या वस्तु और कितनी मात्रा में प्रदान करोगे ? उससे इन दोनों को सन्तोष होगा अथवा नहीं होगा पहले इसे मैं निर्धारण कर दूँगी ।।४६८।। तब मैं बोला—ठीक है, सुनो—मैं वृन्दावन का राजा हूँ। मेरे इस वृन्दावन की रक्षा को त्याग कर, यह वृन्दा धन के लोभ से मेरी रानी राधिका की अनुगता बन गई है, अतः उत्कोच दान में प्रथम तो इस कायस्थ वृन्दा को अपने वशवर्ती बनाऊँगा ।।४६९।। नान्दीमुखी—बहुत ठीक है यह परामर्श ।।४७०।।

तब मैंने कहा—परम सुन्दर वेश रचना की आचार्य स्वरूपा राधा ने आज ही निशान्त में जिस पदक से मेरा हृदय आकाश अलंकृत किया है, उस परमोज्ज्वल अर्धचन्द्राकार (नखक्षत) पदक-राज से मैं अपने हाथ से इस ललिता को भूषित करूँगा। तत्पश्चात् कौस्तुभमणि से भी अधिक देदीप्यमान अतुलनीय उस पदक के समान मेरे चुम्बनमणि के साथ श्रीराधाने हमारे परस्पर सहजप्रेमपूर्ण केलि-कौतुकवश बहुलराज के नीचे परिवर्तन किया था। वह अपूर्व रस सागर के मन्थन से घनीभूत रस सारांश स्वरूप मेरी मणि से भी बहुमूल्यवान् चुम्बक महारत्न जो राधा को अत्यन्त प्रिय है, वह भी मैं ललिता को प्रदान करूँगा। उसके द्वारा ललिता अपने कर्ण के समीप भाग (कपोल) को अलंकृत करेगी। तत्पश्चात् पुनः पुनः विशाखा के मुख को देखता हुआ मुसकराता हुआ मैं कहने लगा—इन की प्रिय सखी राधा ने, अपने कुण्ड के कुञ्ज प्राङ्गण में निरन्तर परमानुराग से निज हाथ से जो माला निर्माण करके परम चातुरी के साथ मुझे अर्पण की थी, वही विचित्र अंगमाला अपने हृदय में रूप आकाश पर विराजमान, विशाखा नक्षत्र के समान विशाखा को अर्पण कर उसे परितुष्ट करूँगा ।।४७१।।

यह सुनकर "हे मिथ्याभाषियों के राजेन्द्र ! ठहर; ठहर" इस प्रकार कहती हुई मन ही मन मेरे को मानो लीलाकमल द्वारा मारने लगी ।।४७२।। ललिता—हे पद्मा के अधर रस रूप सर्प फेन के पान से प्रमत्त ! यहां से भाग जा, चला जा ।।४७३।। विशाखा—विदूषक प्रवर आर्य मधुमङ्गल ! तुम्हारा यह सखा परिहास के कारण विदूषक रूप में तुम्हारा भी गुरु है क्या ? अथवा तुम इसके गुरु हो यह हम सब जानना चाहती हैं ।।४७४।। ललिता बोली—विशाखे ! सुनो—कुसुमशर (अर्थात् काम-देव) नामक जो कपट नाटक का नट है उसका जो सुप्रसिद्ध विदूषक शुचि (शृङ्गार रस) नायक है, उसी ने इसको अपना शिष्य बना कर इस पर अनुगृह किया है। यह मधुमङ्गल तो भिन्न सम्प्रदाय के भोजन लम्पट नामक प्रसिद्ध विदूषकाचार्य का शिष्य है ।।४७५।।

विशाखा—तब तो मैं इस ब्राह्मण को मिष्ठान्न भोजन कराना चाहती हूँ ।।४७६।। ललिता—

विशाखे ! यह कर्मकाण्डी, साङ्गवेदों का ज्ञाता महा-ब्राह्मण है; इसलिए ब्राह्मणेतर जाति हम गोप-जाति के हाथ का भोजन कैसे कर सकता है ? ।।४७७।। विशाखा—परमोत्तमद्विज (श्लेष में श्रेष्ठ दाँतों वाली) मल्ली और भृङ्गी के हाथों पक्वान्न निर्माण करा कर जैसे भी इसकी प्रसन्नता होगी, तदनुकूल आदर सहित इसे भोजन कराया जायगा ।।४७८।।

इतना सुनकर क्रोध से काँपते हुए के समान मधुमङ्गल बोला - अये निन्दनीय भाषण करने वाली गर्वीली गोपियो ! तुमने मेरे न सुनने योग्य परिहास रूप उत्कट कटु तथा लवण युक्त, जली, अधपकी तथा बासी गेहूँ की रोटी के समान यह भोजन करा कर मेरे मधुमय कानों को ही कड़वा कर डाला है । आगे मुख की बात क्या कहूँ ? अत: तुम विदूषक गोपियों की छाया के समीप की भूमि को भी मैं कभी स्पर्श नहीं करूँगा । किन्तु कल प्रातः ही अपने जातिवाले याज्ञिक ब्राह्मणों की पत्नियों के समीप जाऊँगा । वहाँ पहुँचते ही वे परम-आदर से मेरे चरणों को धोकर पहनने तथा ओढ़ने के लिए वस्त्र प्रदान करेंगी । तत्पश्चात् कर्पूर युक्त शरबत, मधुर परमान्न, नमक युक्त अदरक और नीबू आदि नाना प्रकार के व्यञ्जन के साथ घृतमिश्रित सुगन्धित भात, फेनी, फूली फूली पूड़ी, जलेबी, लड्डु, गाढ़ा दुग्ध, रसाला, शर्करायुक्त बँधा हुआ दही, कई प्रकार के बड़े और अनेक प्रकार के भोजन मेरे को करायेंगी । मैं भोजन करके लौटते समय मार्ग में सघन वृक्ष की छाया में विश्राम कर घर आकर सो जाऊँगा और तब दूसरे दिन प्रभात काल में ही उठूँगा ।।४७९।।

इतना सुनते ही वहाँ हास कोलाहल होने लगा । तब मैं बोला—हे नान्दीमुखि ! छोटे ग्राम के निवासी जन अपने अपने ग्राम सीमा के लिए किसी को मध्यस्थ बनाकर न्याय कर लेते हैं, तथा राजा-लोग अपने बाहुबल से ही राज्य को प्राप्त करते हैं । फिर इस राज्य (विवाद) के लिए न्याय की क्या आवश्यकता है ? मेरे साथ ये युद्ध करें उस युद्ध में जिसकी जय हो उसी का यह राज्य (वृन्दावन का अधिकार) सिद्ध हो जायगा । इतना कह कर अभिमान को प्रकट करता हुआ सा मैं युद्ध के लिए कुछ आगे बढ़ा तथा वे गोपियाँ भी मेरी अवहेलना करती हुई भयभीत होकर पीछे हटने लगीं ।।४८०।।

तब नान्दीमुखी बोली—हे वीर ! सम्प्रति हमारे सामने इन उज्ज्वल कुलविलासिनी गोपाङ्गनाओं के साथ तुम्हारा यह बल पूर्वक युद्ध नितान्त अयुक्त है । अतएव तुम अपने स्थान पर ही रहो । मुझे ऐसा कह वह ललिता से बोली—हे ललिते ! यह वन का वीर है इस समय निर्जन वन में यहाँ यह महान् समर्थ है । आप सबके शरीर शिरीष पुष्पों से भी कोमल हैं । अतः देश-काल-शक्ति आदि को देखकर विवाद छोड़ दो ।।४८१।।

यह सुनकर उनमें से चन्द्रमुखी बोली—हे मुग्धाओ ! नान्दीमुखी ठीक कहती है । क्योंकि हम सब कोमलांगी अबला हैं और यह अतिचपल निर्जनवनमानुष है । जिसके दर्शन से यह भय से विह्वल हो जाता है, वह हमारे मण्डल की स्वामिनी (श्रीराधा) भी यहाँ नहीं है । सुदुर्मुख-अभिमन्यु आदि सेनापति भी इस वृत्तान्त को नहीं जानते वे भी दूर हैं । तो इस भयानक प्रदेश में युद्ध छिड़ जाने पर सभी ओर से दुष्ट चोर लुटेरे आकर हमारे मोतियों को लूट कर ले जायँगें । ऐसा होने पर हमारी बड़ी हानि होगी । इसका तो छठा भाग ही है उसको देने से हमें कम हानि होगी । यदि आप सबकी सलाह हो तो हम सब शान्त होकर इस समय राज्य विवाद को छोड़, औचित्य से भी अधिक मूल्य से मुक्ताओं को लेकर, चील के समान झपटने वाले इसके स्पर्श मात्र से उत्पन्न होने वाली अपकीर्ति

से अपने को बचा कर अपने घरों को प्रस्थान करें। बाद में इस वृत्तान्त को सुनकर वृन्दावन की रानी (श्रीराधा) हमारे से मुक्ताओं को पाकर (जटिला-अभिमन्यु आदि) गुरुजनों को उन्हें प्रदान कर उनको सन्तुष्ट कर लेगी। तदनन्तर वह (रानी) महाराग के अतिवेग से स्वयं यहाँ आकर दूर से ही कपटदर्प को स्वीकार कर स्वयं युद्ध न करने पर केवल निज चञ्चल नेत्र प्रान्त की प्रेरणा द्वारा तीक्ष्ण नोंक वाले वाणों से युक्त (तीक्ष्ण कटाक्ष बाण युक्त) भ्रकुटि चढ़ाकर धनुर्धारी सुमुख, कञ्ज, भीषण तथा अभिमन्यु आदि सेनापतियों को बुला लेगी और वे ऐसी विकट भङ्गी रचना करेंगे जिससे यह वन में ही अपने को वीर मानने वाला शीघ्र ही भय से काँपता हुआ अनेक हाहाकार रूप पद्मराग मणि समूह से जड़ा तथा मनोहर स्तुति-वाक्य रूप चिन्तामणि समूह से बनी मञ्जुल माला को अपने कण्ठ से उतार कर उपहार रूप में (राधा रानी)के चरणों के समीप शरण ग्रहण करेगा समुचित गद्‌गद वाक्य रूप तीक्ष्ण अग्नि कणों से नवनीत के समान कोमल चित्तमयी राधा रानी द्रवित हो इस पर करुणा करेंगी। उसके चरणों के यावक अरुण वर्णमणिद्रव से यह अपने शिर स्थित मोरमुकुट को लाल बनाकर तथा उनके राज्य में समुत्पन्न सम्पूर्ण मुक्ता आदि को उनके समर्पण कर स्वयं उनका अनुचर बन जायगा ॥४८२॥

यह सुनकर आनन्द तथा उल्लास के साथ मुसकराता हुआ मैं टेढी दृष्टि से जहाँ राधा छिपी बैठी थी उधर देखने लगा ।।४८३।। तब मुसकराती हुई नान्दोमुखी बोली—हे गोकुल के प्रकृष्ट वीर ! तुम्हारे इस विषमशर समर में अर्थात् भयंकर बाणयुद्ध—कामयुद्ध में प्रवीणा वृन्दावन चक्रवर्तिनी श्रीराधा ही तुम्हारे अनुरूप है। उसके साथ ही एक मात्र तुम्हारी युद्ध परिपाटी शोभाकारक होगी। ये गोपियां अत्यन्त कोमल हैं तथा स्वामिनी के बिना तुम्हारे साथ उस प्रकार युद्ध विलास कैसे कर सकती हैं ? अतः व्यर्थ का विरोध छोड़कर इस समय शेष गोपियों के मुक्ताओं का मूल्य निर्णय कर दो। राज्य विषयक न्याय का तो पश्चात् भगवती विचार करेगी ।।४८४।।

तत्पश्चात् व्रजाङ्गनाओं के अभिप्राय युक्त वचन सुनकर मधुमङ्गल "गर्वित गोपियाँ हार गयीं हार गयीं" ऐसा कहता हुआ वामहस्त की मुष्टिका को मुख पर लगा भेरी की तरह शब्द करके बजाता हुआ आनन्द से नृत्य करने लगा ।।४८५।। वृन्दा बोली—हे नट श्रेष्ठ मधुमङ्गल ! हमारी चक्रवर्तिनी श्रीराधा जब यहाँ पर आ जायगी तब उसकी प्रसन्नता के लिए तुम्हारा यह प्रियसखा "हा हा" इत्यादि विनती रूप ढक्कावाद्य की शिक्षा विशेष से षट्पद अर्थात् भ्रमर रूप होकर उड़ उड़ कर भ्रमरिका को धारण कर तुम्हारे इस नृत्य से भी अत्यधिक उद्दण्ड ताण्डव नृत्य करता हुआ दो पैर वाले गोपों के साथ सुगहन नन्दीश्वर गोष्ठ में भाग जायगा। ऐसा दृश्य देखकर हम सब अपने नेत्रों को सफल करेंगी ।।४८६।।

तब जोर से हँसता हुआ मैं बोला—नान्दीमुखि ! इन गोपियों में यह जो चन्द्रमुखी है, वह सामञ्जस्यरता (शान्ता) है। ललिता आदि की तरह कलह करने वाली नहीं है। अतः मैं इस पर सन्तुष्ट हूँ और इसको बिना मूल्य के ही मुक्ता प्रदान करूँगा। किन्तु यह चन्द्रमुखी मन्त्र जानने वालों में शिरोमणि है। अतः कल अथवा परसों परम पवित्र होकर एकान्त स्थान में मेरे पास आवे। तत् पश्चात् स्नानादि द्वारा और भी परम पवित्र होकर कान्तदर्प नामक आचार्य कथित मन्त्र पटल का मुझे उपदेश प्रदान करे। जिससे इसी वृन्दावन में गोपजाति में उत्पन्न होकर भी मैं "सुराधिकाश्री" अर्थात् देवताओं द्वारा वाञ्छित लक्ष्मी श्रीराधिका को शीघ्र ही प्राप्त कर सकूँ ।।४८७।।

तब वक्र दृष्टि से मेरी ओर देखती हुई चन्द्रमुखी कहने लगी—अहो ! तुम्हें हितोपदेश करने

वाली मुझको भी अकृतज्ञ होकर तू कदर्थना करने के लिए उद्यत हो गया ? मैं तेरे मन्त्र की जानकार नहीं हूं उस मन्त्र को तो काञ्चन लता जानती है, उसी को अपनी आचार्या बना ।।४८८।।

तब मैं बोला—हे कांचन लते ! तुम्हारी विदग्धता देखकर मेरा मन रूपभ्रमर तेरे पर अत्यन्त अनुरक्त होकर उत्कण्ठित है। अत: मुसकराहट पूर्वक देख रहीं इन समस्त गोपियों के सामने अपने समीप रहने वाली परमसुन्दरी श्रीराधिका एकावली को प्रेम सहित उत्कण्ठा युक्त मेरे हृदय पर यदि तू अर्पण कर दे तो मैं बिना मूल्य लिए ही तेरे मनोऽभिलषित सम्पूर्ण मुक्ता तुझे प्रदान कर दूँगा। साथ ही अपने आलिंगन रूप तीन रत्न हारों से तेरे कण्ठ से लेकर नाभि पर्यन्त प्रदेश को अलंकृत कर दूँगा। इतना कह कर मैं कांचनलता के समीप जाने लगा। तब वह मेरी ओर कुटिल कटाक्ष से देख हुंकार करती हुई कुछ दूर पीछे हट गयी। और राधा मुसकराती हुई अपने प्रति शंका करके संभ्रम को प्राप्त हो गई ।।४८९।।

तत्पश्चात् विशाखा ने तर्जनी तथा अगूँठे से चुटकी बजाकर नान्दीमुखी का ध्यान अपनी ओर खींचा और नेत्र के इशारे से श्रीकृष्ण के लिये रंगणमाला और तुलसी को दिखाया ।।४९०।। तब मुसकराती हुई नान्दीमुखी बोली—मोहन ! रङ्गणमाला और तुलसी ये दोनों श्रीराधिका के चरणों की प्रीति पूर्वक सेवा करने वाली हैं एवं उसकी प्रिय हैं। ये श्रीराधा के विना क्षणमात्र भी कहीं नहीं रह सकतीं। अत: इनके मुक्ताओं का मूल्य निर्णय कर शीघ्र ही उस (श्रीराधा) के समीप भेजो ।।४९१।।

तदनन्तर मैं मन में प्रसन्न होकर मुसकराता हुआ बोला—नान्दीमुखि ! अदृष्ट पूर्व नेत्र प्रान्त के चञ्चल अवलोकन रूप मिर्च-चूर्ण मिश्रित तथा सुन्दर मुसकराहट रूप कर्पूर से युक्त कभी न सुने गए नव नव वाक्य रूप मकरन्द के पान से मैं विह्वल सा हो रहा हूँ। स्नेह विह्वला रङ्गणमाला मेरे वक्ष-स्थल पर अपनी दोनों कुचकलिकाओं को स्थापित कर मेरे जीवन स्वरूप अपने अधरामृत का पान करा कर मेरे को शीघ्र ही शान्ति प्रदान करे ।।४९२।। यह सुनकर सभी हँसने लगीं तथा तुलसी और रङ्गणमाला नीचा मुख कर विशाखा की पीठ की ओर खिसक गईं ।।४९३।।

नान्दीमुखी ने कहा—हे मुक्ताफल व्यापार के विलासी श्रीकृष्ण ! इन यूथेश्वरी राधा तथा विशाखा के मुक्ताओं के मूल्य निर्णय में अभी तक तुम्हारा ध्यान भी नहीं गया है, इसका क्या कारण है ? ।।४९४।। तब मैं बोला—वह यूथेश्वरी (राधा) यदि मेरे समक्ष आकर स्वयं मूल्य निर्णय करावे तभी उसके मुक्ताओं का मूल्य निर्णय हो सकेगा बिना उसके सामने आये मूल्य निर्णय कैसा ? ।।४९५।। नान्दीमुखी—वीर ! पहले उसकी अनुपस्थिति में ही हमारे सामने मूल्य प्रकाश कर दो, तब हमारे द्वारा निर्णय सुन कर वह राधा उस मूल्य द्रव्य से अपनो मुक्ताराशि प्राप्त कर लेगी ।।४९६।।

तब मैं बोला—राधा और विशाखा परस्पर भिन्न न होने से मुझे ये दोनों ही अत्यन्त प्रिय हैं। अत: किंचित् मूल्य बताता हूँ, सुनो—मेरी पीठ परमसुन्दर तमाल वृक्ष है। उस पर इन राधा और विशाखा के सुन्दर सुकोमल क्रमशः दक्षिण तथा बाम वाहु रूप स्वर्णलताएं सुशोभित होनी चाहिएँ। मैं भी इनके झुके हुए स्कन्ध प्रदेशों पर विलास से उल्लसित एवं कुंकुम चन्दनादि की सौरभ से युक्त अपनी आजानुलम्बित भुजाओं को धारण करूँगा। इस प्रकार (दाहिने बाएँ राधा-विशाखा और बीच में) मैं पुष्प आदि से परम सुन्दर सुगन्ध युक्त वन विहार माधुरी का अनुभव करूँ। उस समय इन दोनों के मधुर मुखचन्द्र रूपी प्रवीण नटराज परस्पर एक दूसरे को प्रेमपूर्ण दृष्टि से देखते हुए परम कौतुक द्वारा

एक साथ अथवा पृथक् भाव से मेरे कपोल रूपी रङ्गस्थल पर मृदु मृदु भाव से नृत्य प्रकाश करके मेरे आनन्द का विस्तार करें।

और राधाकुण्ड के तटवर्ती कुडुंग नामक भवन के प्राङ्गण में झंकार शब्द पूर्वक भ्रमण करते हुए भ्रमरों से युक्त पुष्पों से मकरन्द झर रहा हो, वहीं मनोज्ञ वकुल वृक्ष के नीचे निर्मल स्वर्णवेदी पर मनोहर मोतियों के पुष्प समूह से बनाई गई सुकोमल शय्या के ऊपर स्वर्णयूथिका से निर्मित तकिए के ऊपर मैं अपनी वाम कोहनी स्थापन करूँगा। दोनों घुटनों को सिकोड़ कर जब सुख से मैं बैठूँ उस समय मेरे मन रूप भ्रमर की आश्रयभूता विशाखा मेरे वक्षस्थल पर लेप करने के लिए कुंकुम रस से भरा स्वर्ण सम्पुट खोले; परन्तु उस कुंकुम रस को अधिक गीला देख कर अपनी प्रिय सखी राधा का इंगित पाकर अपने गोलाकार स्तनस्थित कुछ सूखा कुँकुम लेकर उस गीले कुंकुम में मिलाकर सम रूप से बना ले। उससे पुलकायमान मेरे वक्षस्थल पर कोमल हस्त द्वारा लेपन करे; तत्पश्चात् मेरे प्राण रूपी पिंजरे की शारिका राधिका कभी अपने तथा कभी विशाखा के कुच संपुट से मृगमद द्रव उठा उठा कर उसके द्वारा मेरे शरीर पर चम्पककली से लता, मकर, अंकुर, और पत्र आदि अनुपम चित्रमय वेश रचना करके परस्पर असमोर्ध्व सौहार्द्र सौरभ से चमत्कृत मेरे तन, मन तथा वचन आदि सम्पूर्ण को सुवासित करें।

यह सुनकर राधा और विशाखा के शरीर एक साथ प्रेम के साथ पुलक से परिपूर्ण हो गये, वे परस्पर एक दूसरे को देखती हुई चारों आँखों को झुकाकर लज्जित सी हो गयीं ।।४९७।। विशाखा बोली—ललिते ! लम्पटता नाट्य में इन दोनों (श्रीकृष्ण एवं मधुमङ्गल) लम्पट नटों के द्वारा असम्भव मनोरथ' नामक नाटक का निर्जन वन में अभिनय किया जा रहा है, जिसमें यथार्थ नाम वाली यह नान्दीमुखी (नाटक के आरम्भ में प्रयुक्त प्रार्थना के समान) नाटक देखने के लिए इस निर्जन वन रूपी रंगस्थल में मुक्ता प्रदान के मिथ्या वाक्य को प्रस्तुत कर हम सबको इस नाटक का दर्शक बनाने के लिए यहाँ स्थिर रखते हुए हमारी विडम्बना कर रही है। अतः इस रंग में जिसको रंग (आनन्द) आता हो वही कुलवती साध्वी इस चौषठ कला प्रवीण नट के नृत्य को यहाँ स्थित होकर दर्शन करके पति एवं पितृ इन दोनों कुलों को भली प्रकार उज्ज्वल बनावे मैं तो अब अपने घर जा रही हूँ ।।४९८।।

तब नान्दीमुखी ने कहा—सखि विशाखे ! परिहास कर्म में दक्ष इस दुर्लील के वचन विलास मात्र से ही इतनी विरक्त होकर दुःखित क्यों हो रही हो ? क्षणकाल मात्र ठहरो, निश्चित रूप से मैं अभी मुक्ता दिलाऊँगी। विशाखा को इस प्रकार समझाकर लौटाया और वह मेरे पास आकर कहने लगी—हे दुर्लील गोपयुवराज ! आपके अयोग्य परिहास वचनों को सुनकर विशाखा आदि गोपियां मेरे को दोष दे रही हैं। अतः इस समय कृपा कर परिहास कर्म के विस्तार को छोड़ क्रय विक्रय व्यवहार को स्वीकार कर धन आदि मूल्य द्वारा मुक्ता प्रदान करो, जिससे तुम्हारी प्रियतमा राधा की यह सेना शीघ्र ही प्रसन्नता प्राप्त करे ।।४९९।।

तब मैंने कहा—नान्दीमुखि ! यद्यपि राधा मेरे प्रति सदा कठोरता का विस्तार करती है, तथापि स्वभाव से कोमल स्निग्ध मेरा मन उसके नाम मात्र के श्रवण से ही अपने सम्पूर्ण अङ्गों का अनुसन्धान नहीं रख सकता। अतः मैं उसकी सहचरियों पर कठिनता का व्यवहार कैसे कर सकता हूँ ? आज से दो दिन के मध्य जो कोई निर्धारित मूल्य चुका देगा, वह तदनुसार सुवर्ण चांदी के अलंकारादि, रंग, रस तथा प्रिय गो आदि धन मेरे पास धरोहर रूप में रख कर तदनुरूप मुक्ताओं को

ग्रहण करेगा। इतना कह कर पुनः कुछ क्षण मौन धारण कर विचार कर फिर मैं बोला—नान्दीमुखि ! मैं तो अपनी सर्वदा प्रिय गोचारण लीला के लिए वन-वन में फिरता हूँ, तब ये सब मुक्ता सम्पत्ति मैं कहाँ सुरक्षित रख सकूँगा ? कोई ऐसा विश्वास पात्र भी नहीं दीखता, जिसे परस्त्री धन की रक्षा में लज्जा अपयश आदि से महान् भय लगता हो। अतः सत्य बात तो यह है कि तत्काल ही मूल्य के बिना प्राप्त किए कुछ भी नहीं दिया जा सकता ।।५००।।

नान्दीमुखी—मोहन ! यह अपूर्व मूल्य कहीं भी देखा नहीं कहीं सुना भी नहीं ।।५०१।। तब मैंने कहा—हे चतुर नान्दीमुखि ! यदि ऐसा मूल्य कहीं देखा सुना नहीं तो फिर क्या ऐसे भूमि में कृषि से उत्पन्न अपूर्व मुक्ता भी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में तुमने कहीं देखे सुने हैं ? इसीलिए अपूर्व पदार्थ का मूल्य भी अपूर्व ही है। उस पर भी मैं मुक्ताओं का व्यापार करने वाला नहीं हूँ, एक मात्र भगवती चरणों—श्रद्धेय पूर्णमासी जी के आदेश तथा आपके आग्रह से इस कार्य में प्रवृत्त हुआ हूँ। अतः यदि इच्छा हो तो परस्पर निर्धारित मूल्य इसी समय प्रदान करके इन मुक्ताओं को ये परम चतुर गोपाङ्गनाएं ले जायँ। अन्यथा अपने अपने घर पधारें। देखो, मध्याह्न काल हो गया है। अतः हम भी गोधन चारण के लिए गोवर्धन को जाते हैं ।।५०२।।

तदनन्तर नान्दीमुखी कुछ दुःखित सी हो ललिता के पास जाकर धीरे से बोली—सखि ललिते ! सखि विशाखे ! तथा सभी प्रिय सखियो ! यह हठी नागर निज अभीष्ट मूल्य लिए विना मुक्ता नहीं देगा। मैंने बहुत अनुरोध किया है, परन्तु इसका यही निश्चय है। मुक्ता भी अवश्य ग्रहण करने हैं इसलिए मैं तुम सबको यही मन्त्रणा देती हूँ कि इसके बताए हुए मूल्य पर किसी भी बहाने से किञ्चित् मात्र सम्मति प्रदान द्वारा इसे सन्तुष्ट कर मुक्ताओं को लेकर घर चली जाओ, फिर कौन किससे मूल्य लेता है और कौन किसको देता है ? ।।५०३।।

यह सुनकर "ओ अद्भुततपस्विनि ! ठहर ठहर"—इस प्रकार नान्दीमुखी पर आक्षेप कर मुसकराती हुई ललिता मुझसे कहने लगी—अजी धीरललित युवराज ! यह मुक्ता को उत्पन्न करने वाली वृन्दावन की क्यारी अपूर्व है। ये मौक्तिक बीज भी अपूर्व हैं। मुक्ता फल भी अपूर्व हैं। यह मुक्ता बेचने वाला वणिक् भी अपूर्व है। तया यह आपका बताया हुआ मूल्य भी अपूर्व है। परन्तु हम तो अपूर्व नहीं हैं। अतः बताओ इस प्रकार के अपूर्व मूल्य प्रदान करने में हमारी सामर्थ्य कैसे हो सकती हैं ? किन्तु यह नान्दीमुखी हमारे प्रति महान् प्रेम रखने वाली हमारे से अभिन्न है। और तुम भी अपूर्व ब्रह्मचारी हो। इसलिए यह अपूर्व ब्रह्मचारिणी नान्दीमुखी अपूर्व तपस्या के बल से तुम्हारे अपूर्व मूल्य को चुकाकर तुम्हें सन्तुष्ट कर इन मुक्ताओं को ग्रहण करले। हम अपने घरों को जाती हैं। इस प्रकार प्रेम युक्त ईर्ष्या का प्रदर्शन कर कम्प-स्वेद, आदि विविध सात्त्विक उल्लास से परिपूर्ण वे सब गोपाङ्गना मनोहर ढंग से ग्रीवा को मोड़ती हुई मुसकराहटयुक्त नेत्र प्रान्त से क्षण-क्षण में मेरे प्रति दृष्टि डालती हुई कुञ्ज मध्य में छिपी हुई उन्हीं के समान विविध सात्विक आदि विकारों से युक्त राधाको आगे कर सब राधाकुण्ड के तीर के समीप वर्ति मञ्जुल बकुल कुञ्ज मन्दिर में चली गईं ।।५०४।।

तत्पश्चात् परमानन्द से परिपूर्ण हो मैंने उन मुक्ताओं में से उत्तम से उत्तम मुक्ता छांट कर अपने हाथों से विचित्र शिल्प कल्पना युक्त श्रीराधा के प्रत्येक अङ्गों के आभूषण बना कर स्वर्ण सम्पुट में रख कर उनकी नाममुद्रा से चिह्नित कर दिया। और ललिता विशाखा आदि समस्त सखी मण्डल के

उसी प्रकार नामांकित भूषण बना कर उसी प्रकार पृथक् पृथक् सम्पुटों में रख उन उनकी नाम मुद्रा से चिह्नित कर दिया तथा और भी बहुत से विना आभूषण बनाए खुले हुए मुक्ताओं को नान्दीमुखी के साथ मधुमङ्गल, सुबल, तथा उस समय पर आए हुए उज्ज्वल, वसन्त, एवं कोकिल आदि सखाओं के हाथों राधाकुण्ड के निकुञ्ज मन्दिर (जहाँ वे सब जाकर बैठी थीं भिजवा दिये ॥५०५॥

हँसती हुई ललिता विशाखा आदि सखियों के साथ मुसकराहट सहित हर्षित हो श्रीराधा ने उन मुक्ताभूषण पिटारियों को ग्रहण कर लिया। मधुमङ्गल को आदर पूर्वक इच्छानुसार मधुर पक्वान्न भोजन कराया तथा सुबल आदि अन्य सखाओं को प्रीति रूप गन्ध-चन्दन ताम्बूल आदि से सन्तुष्ट कर उन्हीं के हाथों निज हस्त विनिर्मित सुगन्धित तथा सुकुमार रक्त पुष्पों से चित्रित स्वर्णजुही की माला एवं कपूर सुवासित ताम्बूल उपहार स्वरूप मेरे लिए भेजे। उन्हें प्राप्त कर मैं अति आनन्दित हुआ तथा उसी माला से भूषित होकर उसी ताम्बूल को चर्वण करता हुआ मैं सखाओं को साथ लेकर गोचारण के लिए गोवर्धन आ पहुँचा ॥५०६॥

तदनन्तर मेरे भेजे हुए स्वर्ण सम्पुट को खोलकर ललिता ने उन अलंकारों से राधा को शृङ्गारित किया ॥५०७॥ तत्पश्चात् ललिता-विशाखा आदि अन्य सभी सखियों ने उन स्वर्ण संपुटों को खोल-खोल कर एक दूसरे को अलंकृत किया। मुक्ताभरणों से विभूषित हो घर जाकर पर्याप्त मुक्ता प्रदान से अपने अपने पति तथा स्वसुर-सास आदि गुरुजनों को भली प्रकार सन्तोष प्रदान किया वे पुनः राधाकुण्ड तीर पर श्रीराधा के समीप बैठ कर परस्पर मेरी मधुर-मधुर परिहास वार्ता के विनोद द्वारा सुख से विहार करने लगीं ॥५०८॥

श्रीसत्यभामा ने पूछा—हे गोकुल-विलास-उपवन के मत्त कोकिल स्वरूप स्वामिन्! तत्पश्चात् और क्या लीला हुई? ॥५०९॥ श्रीकृष्ण—प्रिये! इस समय तुम्हारे प्रश्न के अनुरूप जो कुछ सुनाने योग्य था, वह सब तुमने सुन लिया है। अब अधिक वार्ता से कोई प्रयोजन नहीं है। इतना कहकर उस मधुर रहस्य केलि के उद्घाटन से व्याकुलित धैर्य त्याग कर श्रीकृष्ण उस प्रकार विलाप करने लगे—जो मेरे कण्ठ की मनोहर मणिजटित शोभामयी स्वर्ण की माला के समान है, जो दोनों कानों के सुन्दर भूषणों सदृश है, जो सम्पूर्ण शरीर में सुगन्धित कुंकम लेप के समान है, हाय! वह प्रियतमा राधा अनन्त पुण्यों के प्रभाव से कब मेरे दृष्टि-पथ में आवेगी ॥१॥५०८॥

इस प्रकार क्षण भर के लिये मौन धारण कर पुनः उत्सुकता पूर्वक कहने लगे—जो मेरे वक्षः स्थल की चम्पकावली है, दोनों नेत्रों को अमृत से अभिषिक्त करने वाली है, जिसकी सम्पूर्ण अङ्गशोभा ही एकमात्र मेरा विलासस्थल है, जो मेरी अभिलाषाओं की सम्पत्ति है; मेरे प्राणपक्षी की आश्रय वल्लरी तथा मेरे जीवन की जो ओषधि स्वरूपा है, हाय! राधे! तुम मेरे को अब कब मिलोगी ॥२॥ ॥५०९॥ इस प्रकार अश्रुपूर्ण नेत्रों से विलाप करते-करते व्रजलीला के स्मरण से विह्वल होकर श्रीकृष्ण भूमि पर गिर गए। तत्पश्चात् जोर से रोते हुए मधुमङ्गल को आलिंगन कर सत्यभामा से कहने लगे—हे प्राणवल्लभे! तू ही मेरे जीवन की ओषधिभूत राधिका है एवं कम्पयुक्त गद्गद् स्वर से विलाप करते हुए पुनः पुनः आलिंगन कर दीर्घ, उष्ण तथा उच्च निश्वासों को छोड़ने लगे ॥३॥५१०॥

श्रीसत्यभामा संभ्रम के साथ अश्रु बहाती हुई एवं रोमाञ्चित होकर अपनी साड़ी के अञ्चल से श्रीकृष्ण को व्यजन करती हुई मौन हो गई ॥५११॥ भगवती पूर्णमासी की शिष्या समञ्जसा के

मुख से उक्त सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर लक्ष्मणा जी रोमाञ्चित होकर कौतुक एवं खेद से युक्त होकर कहने लगी– सखि समञ्जसे ! फिर क्या हुआ ।।५१२।।

समञ्जसा ने कहा—पहले तो कुछ क्षण सत्यभामा अति घबड़ाहट में मौन धारण किए रही, फिर कहने लगी—"हे प्राणनाथ ! सम्पूर्ण व्रज के एकमात्र जीवन स्वरूप ! आपकी जय हो, जय हो। धैर्य धारण कीजिए, धैर्य धारण कीजिए, आश्वस्त होइए आश्वस्त होइए"—इस प्रकार व्यग्रता तथा विशंका युक्त जोर से पुकारती हुई बारंबार व्यजन के द्वारा एवं उनके अंगों को शनैः शनैः दबाकर गोकुल व्रज में चलने के लिए कहकर अनेक क्रियाओं से अपने प्राणनाथ को सत्यभामा ने चेतन किया। श्रीसत्यभामा अपने अनन्त सुखामृत सागर की तथा अपनी, अनन्त प्राण परम्परा की भी तृण के सदृश्य उपेक्षा करके सदा अपनी परमाभिलाषा को एक मात्र प्रियतम श्रीकृष्ण के लवलेश आभास मात्र सुख में धारण करती हैं।

उन्हीं के चरण कमल ही उनकी एकमात्र गति हैं। ऐसे अवसर पर उन्होंने अपनी एक सखी द्वारा श्रीमान् उद्धव को बुलवा भेजा। श्रीउद्धव के आने पर उनके व्रज जाने का शुभ मूहूर्त पूछा। मन्त्रिराज उद्धव ने आने वाले परसों वृहस्पतिवार शुक्ला दशमी धनिष्ठा नक्षत्र परम गुणयुक्त शुभ अभिजित नामक मुहूर्त श्रीकृष्ण के व्रजगमन के लिए निर्धारित किया। श्रीकृष्ण उस मङ्गलकाल में निर्विघ्नता प्राप्ति के लिए समस्त प्रशंसनीय मंगलमय नियमों को पालन करके गोकुलपुर प्रवेश के लिए यात्रा करने के लिये तैयार हुए। उधर पूज्यचरण उनके ज्येष्ठ भ्राता श्रीबलराम जी भी गोकुल गमन के लिए अत्यन्त उत्कण्ठित हो उठे। श्रीकृष्णचन्द्र ने विनय पूर्वक उनको द्वारका पुरी की रक्षा के लिए वहीं रहने को कहा। भगवती पूर्णमासी को अग्रगामिनी बनाकर उद्धव तथा रोहिणी एवं मधुमङ्गल को साथ लेकर नन्दीघोष नामक रथ पर बैठ कर सर्व सम्मति से श्रीकृष्ण ने गोकुल प्रदेश जाने का निश्चय किया। उस निर्णय के अनुसार द्वारका का राजकीय वेश उन्होंने त्याग दिया। श्रीकृष्ण अब आनन्द के साथ चिर अभिलषित अपने पूर्व व्रज गोप जातीय शृङ्गार से युक्त होकर उक्त मुहूर्त में व्रज यात्रा करेंगे।—समञ्जसा के द्वारा श्रीकृष्ण व्रजागमन के इस वृत्तान्त सुधा का कर्ण पात्रों से पान कर परम सौभाग्यवती सत्यभामा के समान श्रीकृष्ण पटरानी लाखों शुभलक्षणों से परिपूर्ण लक्ष्मणा जी आनन्द तथा उत्सुकता पूर्वक सखी समञ्जसा से कहने लगी—सखि समञ्जसे ! इस मधुर वृत्तान्त को सुन कर मैं अत्यन्त उत्कण्ठित हो रही हूँ। मेरी यह महान् अभिलाषा है कि श्रीयादवेन्द्र श्रीकृष्ण के साथ व्रजराज के गोष्ठ में जाकर श्रीराधा के सखीत्व रूप पुण्य गन्ध से अपने को सुवासित करूँ ।।५१३।।

समञ्जसा ने कहा—सखि लक्ष्मणे ! आपकी सम्पूर्ण अभिलाषा पूर्ण हो। ग्रन्थकार श्रीरघुनाथ दास गोस्वामिपाद प्रार्थना करते हैं—दांतों में तृण दबा कर मैं बारंबार याचना करता हूँ कि मैं जितने भी जन्म धारण करूँ, उनमें सदा श्रीमान् रूप गोस्वामी के चरणकमलों की धूलि बनूं ।।१।।

श्रीरूप गोस्वामि से शिक्षा प्राप्त करके जिन अपने एकमात्र जीवन स्वरूप श्रीजीवगोस्वामी के आज्ञा रूपी अमृत से प्रबोधित होकर यह मुक्ताचरित्र नामक पुष्प स्तवक मैंने प्रस्तुत किया है, जिनकी बुद्धि श्रीकृष्ण की लीलासुधा में सदा उत्कण्ठित रहती है वे श्रीजीवगोस्वामिपाद अपनी दृष्टि रूपा भ्रमरी से इस मुक्ता चरित्र पुष्प स्तवक की सौरभ को ग्रहण कर इसे परिभूषित करें ।।२।।

श्रीमुक्ता चरित्र कुसुमों द्वारा जो मेरे द्वारा यह अत्याश्चर्यमय स्तवक ग्रथित हुआ है, इसके

द्वारा श्रीपाद रूप गोस्वामी के अनुगत भक्तवृन्द अर्थात् रागानुगा-भक्ति के साधक मेरे प्रति स्नेह प्रकाशित करें और निर्जन स्थान पर बैठ कर अपने कानों को इस कुसुमस्तवक से विभूषित करें अर्थात् श्रवणास्वादन करें ।।३।।

जिनकी संगति के बल से मैंने इस आश्चर्यमय श्रीमुक्ताचरित्र की उत्तम कथा को प्रकाशित किया है, जन्म जन्म में उन श्रीकृष्ण दास कविराजगोस्वामी का संग मुझे ब्रजमें ही सदा प्राप्त होता रहे ।४

इस प्रकार श्रीपाद रघुनाथदास गोस्वामी विरचित मुक्ता चरित्र ग्रन्थ का सम्पादन श्रीश्यामदास द्वारा श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी दण्डमहोत्सव की तिथि ज्येष्ठ शु० त्रयोदशी तदनुसार ११ जून १९९५ रविवार को श्रीवृन्दावन में सम्पूर्ण हुआ ।

श्रीश्रीमुक्ताचरित्रम्

॥ नमः श्री श्रीगान्धर्वागिरिधराभ्याम् ॥

❋ मंगलाचरणम् ❋

कन्दर्पकोटिरम्याय स्फुरदिन्दीवरत्विषे। जगन्मोहनलीलाय नमो गोपेन्द्रसूनवे ॥१॥

क्रय विक्रय खेलाब्धौ मुक्तानां मज्जिवतात्मनोः।
मिथो जयार्थिनोर्वन्दे राधामाधवयोर्युगम् ॥२॥

निजामुज्ज्वलितां भक्तिसुधामर्पयितुं क्षितौ।
उदितं तं शचीगर्भवोम्नि पूर्णं विधुं भजे ॥३॥

नामश्रेष्ठं मनुमपि शचीपुत्रमत्रस्वरूपं
रूपं तस्याग्रजमुरुपुरीं माथुरीं गोष्ठवाटीम्।
राधाकुण्डं गिरिवरमहो राधिका माधवाशां
प्राप्तो यस्य प्रथित कृपया श्रीगुरुं तं नतोऽस्मि ॥४॥

हरिचरितामृतलहरीं वृन्दाविपिनाम्बुराशिम्भूताम्।
रसविद्वृन्दारकगण परमानन्दाय सन्तनुमः ॥५॥

ग्रन्थारम्भः ॥

एकदा किंचिन्मात्रश्रुतपूर्ववृत्तान्तया सत्यभामया कृष्णः साकुतं पृष्टः ॥६॥

लतास्ता मधुराः कस्मिन् जायन्ते धन्यनीवृति।
नाथ ! मत्कङ्कणन्यस्तं यासां मुक्ताफलं फलम् ॥७॥

ततस्तद्वृत्तान्तस्मरणात् कृष्णः स्वान्तर्ग्लानिर्वहिर्विहस्याह ॥८॥

गतः स कालो यत्रासीत् मुक्तानां जन्म वल्लिषु।
वर्त्तन्ते साम्प्रतं तासां हेतवः शुक्तिसम्पुटाः ॥९॥

ततस्तदपूर्वं श्रुत्वा सविशेषश्रवणोत्कण्ठितया तया वाढ़माम्रेड़ितः कृष्णः पुनराह। एकदा कार्त्तिके मासि गोकुले गोवर्धनगिरौ दीपमालिकामहोत्सव आसीत्। तत्र सर्वो जनो विचित्रनेपथ्य-सामग्रीणां संस्काराय साधनाय च परमाशक्तो वभूव। गोपास्तु स्वं स्वं भूषयन्तोऽपि विशेषतः गवादि-पशूनां प्रसाधनार्थमुदयुक्ता आसन्। गोप्यः किल प्रसाधितसदनाः आत्मनां भूषणार्थं नानालङ्कार संस्कारसाधनपरा वभूवुः। राधा तु माल्यहरणाख्यसरस्तीरोपान्तमाधवीचतुःशालिकायां स्वसखीसमुदयेन परमोत्तममुक्ताभिर्विविधभूषणानि रचयितुमारेभे ॥१०॥

मया च विचक्षण इति यथार्थनाम कीरकुमारमुखतस्तन्निशम्य सकौतुकं तत्र गत्वातिप्रेमास्पदस्य हंसी हरिणीति नाम्नो धेनुयुगलस्य भूषणौत्सुक्येन तासां सकाशे मौक्तिकानि प्रार्थितानि। ततः सुविविध वैदग्ध्य परिमल परिलसित सामि निमिलित वामनयननीलोत्पलदलांचलेन सावहेलनमित्र मनागेव मामव-

लोक्य मुनिव्रत जतुमुद्रित हसित हीरकानर्घ्यमहारत्नवहि:-प्रकाश्य: निर्भरावेशविशेषेण हारादिगुम्फन-विलासमेववितन्वतीस्ता: प्रति सम्मितमिदमहमाभाषितवान् भो: ! अभिनवयौवनामूल्यचिन्तामणिलब्धि-विवर्द्धितोत्तुङ्ग गर्व महापर्वतावगुण्ठितकर्ण्य: ! प्रियवरस्य मम प्रार्थिते क्षणमपिकर्णानुद्घाटयन्तु भवत्य: ।।११।।

ततस्तासामीषत् स्मित्वान्यौन्यमालोकयन्तीनां मध्ये प्रगल्भा ललिता विहस्य सरोषमिव व्याजहार। अये नागर ! एतानि वहुमूल्यानि मौक्तिकानि राजमहिषीयोग्यानि, तव महिषीनामेवालं-क्रियायै सत्यमभिरूपाणि कथं न दास्याम: ।।१२।।

ततस्तद्वच: श्रुत्वा मया कौतुकेनाविष्टेन साम्ना पुन: पुनरिदमेवोक्तं भो: प्रियभूषणा: सर्वाणि यदि न देयानि तदा मदत्यन्तप्रियधेनुयुगल श्रृङ्गचतुष्टयभूषापर्य्याप्तान्येवावश्यं दीयन्ताम् ।।१३।।

ततो ललिता सर्वासां मौक्तिकानि पुन: पुनश्चालयन्ती भूय: प्राह—हे कृष्ण ! किं कर्त्तव्यं तव धेनुयोग्यमेकमपि नास्ति ।।१४।।

तदाहमुक्तवान्-अयि परमचतुरे ललिते ! तिष्ठ तिष्ठ अहं कार्पण्यभाक् पाश्चात्त्वया वक्तुं न शक्य इत्युपालभ्य सत्त्वरमम्वां ब्रजेश्वरीमागत्य मातर्द्देहि मे मौक्तिकानि, अहन्तु तानि कृष्टकेदारे वप्स्यामीति पुन: पुनरवोचम्। ततो मात्रा विहस्योक्तं वत्स ! न मौक्तिकान्युप्तानि प्ररोहस्ति। तदा मयोक्तं मातरवश्यमेव दीयन्तां दिनत्रयाभ्यन्तरे प्ररूढ़ानि भवत्यैव साक्षात् कर्त्तव्यानीत्यस्मन्निबन्ध-परिहारासमर्थया तया दत्तानि बहूनि मौक्तिकानि मया गोकुलजलाहरणघट्टसमीपवर्त्तिनि यमुनोपकण्ठे पौरुषत्रयमवगाढ़ां केदारिकां निष्पाद्य सहासं पश्यन्तीषु कासुचित् गोपीषु तान्युप्त्वा सा पुनरपुरि। परितो वृतिश्च काष्ठैर्निविड़ा कृता ।।१५।।

ततस्तासां मौक्तिकप्रार्थनवचनावसरनिरासार्थं केदारिकासेकाय वयस्यद्वारा गव्येषु प्रार्थ्यमानेषु सोल्लुण्ठं विहस्य ता: प्रोचु:। तन्मौक्तिककेदारिकासेकोऽस्माकं गव्येन कथमुचित:। यत्प्रियगोभूषणार्थं कृतमौक्तिककेदारिकासेकस्तासां गवां दुग्धेनैव क्रियताम्। तत्केदारिकोत्पद्यमाने फले नास्माभिरभिलाष: कर्त्तव्य:। इति श्रुत्वा मया स्वगृहानां गवां बहुभि: पयोभिरेव ता दर्शयता प्रत्यहं सेक: क्रियते स्म ।।१६।।

ततश्चतुर्थदिवस एव मौक्तिकानि प्ररूढ़ानि, तद्दर्शनेनोल्लसितेन मया मातुरंचलं गृहीत्वानीय तदंकुरा दर्शिता:। तान् दृष्ट्वा तु माता किमेतदिति मनसि विचारन्ती सान्दिग्धा सती ब्रजं जगाम ।।१७।।

गोप्यस्तु तत् श्रुत्वा हिंस्रालता: प्ररूढ़ा इति परस्परं सहासमुचिरे ।।१८।।

ततो नातिविलम्बेन मुर्वाकारिण्यस्ता मौक्तिकलता विस्तारिण्य: समालोच्य समीपवर्त्तिनां कदम्बानामुपरिष्टात्क्रमेणारोहिता तत: कतिपयैर्दिवसै: ता: सौरभोन्मादितमधुव्रतै: कुसुमनिचयैर्गोपीनां चमत्कारमातन्वानै: सकलं गोकुलमेवाध्यवासयन् ।।१९।।

ततोऽष्टविधयोनिजमौक्तिकेभ्यो विलक्षणां श्रियं दधति मुक्ताफलानि तासु जातानि तानि दृष्ट्वा व्रजवासिनां विस्मयोऽत्यर्थं जात:, विशेषतश्च गोपीनाम्। तत: प्रत्यहमेव तद्दर्शनेन जातलोभा: ता: मन्त्रयांचक्रिरे। भो: सख्य: ! भद्रेण ज्ञातमस्मभ्यं कृष्णो मौक्तिकानि सर्वथैव न दास्यत्येव, भवतु तत्कृतमौक्तिककृषिप्रक्रियास्माभिर्न दृष्टास्तीति न स्यात् तत्रानध्यवसायं त्यक्त्वा तद्द्विगुणिकाया: केदारिकाया आरम्भ: कथं न क्रियते ? ।।२०।।

इति श्रुत्वातिचतुरा ललिता प्राह—भोः पवनव्याधिव्यापृता गोप्यः ! गोवर्द्धनोद्धरणादिभूमि-मौक्तिकोत्पादनादिकं लोकोत्तराणामपि दुष्करं कर्म्म तेन यदंजसा क्रियते, तत् किल महासिद्धतो लब्ध-सिद्धौषधिमन्त्रादिप्रभावादेवेति समस्तव्रजजनैर्निश्चितमेव । अन्यथास्मद्व्रजेन्द्रगृहिणीगर्भसरोवरोत्-पन्नसुकोमलनीलोत्पलस्यज्ञातस्वगोपजातिक्रियाकलापमात्रस्य गोपालकस्य तस्य तत्तत्करणे कथमेतावती शक्तिः स्वतः सम्भवेदिति जानन्त्योऽपि भवत्यः सिद्धौषधिमन्त्राद्यन्तरेण यत्तत् कर्म्मणि प्रवर्त्तितुमभिलषन्ति, तत् खलु परिणतावगाधलज्जा परिहाससागरान्तः स्वपतनायैवेति सत्यमवधार्य्यताम् ।।२१।।

ततस्तुङ्गविद्या प्राह—अस्माभिरपि श्रीभगवती पादपद्मसिद्ध मन्त्रशिष्या नान्दीमुखी सकाशात् सिद्धमेकमादाय कथं न तथोद्यमः क्रियते ? ।।२२।।

सर्वाः—भद्रं वदति तुङ्गविद्येति निर्न्नीय तत्पार्श्वमुपेत्य सविनयमात्माभिलाषं निवेदयामासुः ।२३

ततः अये निजनयनयुग्मदृष्टिसाफल्याय चिरदिनमस्मद्विधाभिलष्यमाणक्रय–विक्रय–क्रीड़ाकुतुहल कल्पतरोर्वाढ़मकस्माद्दृशां भाग्यातिशयवशात् साक्षाद्वीजरूपोऽयमवसरः प्रत्यासन्नो वभूव । तद्विदग्धानां शिरोमणीरप्येतास्तथा युक्तिसौष्ठवातिशयेन कृतोऽत्र प्रवर्त्तयामि । यथा स तरुस्त्वरितमेव प्ररूढ़ः फलवान् भवेदिति मनसि विचिन्त्य सान्तरानन्दं नान्दी प्राह भोः सख्यः ! सत्यं मुकुन्दस्य न मन्त्रकृतेयं मृदि मौक्तिकसृष्टिः ।।२४।।

सर्वाः तन्निजजनन कारणशुक्त्यादिमात्रमन्तरेण कथं मृत्तिकायामसम्भवेयं तदुत्पत्तिः प्रतीयते ? ।।२५।।

नान्दी । अस्या भुवः स्वाभाविकेदृक्प्रभावादेव । यद्विविधरत्नजननीयं व्रजवनभूरिति श्रीभगवतीपादपद्मैः पुनः पुनर्निवर्ण्यते । ऋतमप्यनुभूयते तथा । यतः प्रवालनवपल्लव मरकतच्छद व्रज मौक्तिकप्रकरकोरककमलरागनानाफलादिमन्तो हिरन्मयमहीरुहाः स्फुटमत्र जाता जायमानाश्च दृश्यन्ते, अतोऽस्यामुप्तमुक्ताफलानि जनिष्यन्ते फलिष्यन्ति चेति किं चित्रम् ? तद्भवतीभिरपि सुरभितरनवन-वनीतादिसेकपूर्वकमतिप्रयत्नेन तथा तत्कृषिः क्रियतां यथा ततोऽप्यधिकतमानि परमोत्तमफलानि लभ्यन्ते ।।२६।।

इति तद्वचनमाधुरीमापीय ससन्तोषं सश्लाघं प्रत्ययन्त्यः सर्वास्तामालिङ्ग्य निजां स्थलीमागत्य स्पर्द्धया मज्जयाय समुचितवेतनतो द्विगुणत्रिगुणगोरसप्रदानेन कर्म्मकारानानाय्य स्थाने स्थाने केदारिकाः कृत्वा पेटिकायामग्रथितानि ग्रथितान्यङ्गभूषणरूपाणि च यावन्ति स्थितानि तावन्ति यथायुक्तमल्पान्येव संरक्षचाङ्गतः समुत्तारितानि च मौक्तिकानि निरवशेषं उप्त्वा प्रत्यहमेव त्रिसन्ध्यं गोदुग्ध नवनीत-सुवासितघृतैरेव सेकं कर्त्तुमारब्धवत्यः ।।२७।।

ततस्तासां मुक्ताकृषिकरणश्रवणान्मात्सर्य्यतो लोभतश्च चन्द्रावलीप्रभृतयोऽपि सर्वा वल्लव्यस्त-तोप्यधिककेदारिकाः स्थाने स्थाने कृत्वा देहगेहयोरेकमप्यसंरक्ष्य समस्तमौक्तिकान्युप्तवत्यः ।।२८।।

ततः कतिपयदिनान्तरे स्वस्वकेदारिकासु जातान् हिंस्रालतांकुरान् दृष्ट्वा अन्तर्गर्भित गर्वाभिः वल्लभीभिस्ताभिः सर्वाभिश्छलतो मत्प्रियवयस्याः परिहस्यन्ते स्म ।।२९।।

एकस्मिन् दिने गौरसानामतीवव्ययं स्वस्वगृहस्य च निर्म्मौक्तिकतां वीक्ष्य गोपाः ससंरम्भं कारणं पप्रच्छुः ।।३०।।

तच्छ्रुत्वा वृद्धा ऊचुः ।– भो आयुष्मन्तः ! नानुयोगविषयो अयमाभिर्वालाभिः कृतो मौक्तिक-

केदारिकाणां निमित्तं बहुलो व्ययः अचिरादेव बहुतरलाभो भविष्यति ।। यत्कृष्णकेदारिकायां राजदाराणामपि दुर्ल्लभानि मुक्ताफलानि किल दृष्टानि सन्तीति ।।३१।।

अथैकदा विशाखया स्वकेदारिकासु तानंकुरान्निरीक्ष्य कासांचित्कर्णे निभृतमिदमुक्तं भोः सख्यः ! कृष्णकेदारिकामध्ये मया यादृशा अंकुरा दृष्टा, एते तु तादृशा न दृश्यन्ते, न जाने पश्चात् किं भवेत् कृष्णवयस्यदृष्टिनिवारणार्थं छलतः सुष्ठु वेष्टयन्ताम् ।।३२।।

अथ कतिपयदिवसैः तासां राधादीनां अन्यासांच केदारिकासु कण्टकादिचिह्नेन लताभिर्निजरूपे प्रकाश्यमाने गोपीकेदारिकासु हिंस्रालता जाता इति सकलगोकुल एव ख्यातं ।।३३।।

एतदाकर्ण्य वयस्यद्वारा गान्धर्व्वा गोष्ठ्यां मयेदं सोत्प्रासं विज्ञापितं, श्रुतं भवतीनां केदारिकासु बहूनि मुक्ताफलानि जातानि सन्ति । अहं तावत् स्निग्धस्तत्सवस्याय मह्यं प्रथमफलानि दीयन्ताम् ।।३४

ततस्ताभिरुक्तं ।—यदि वयं कृषिम् अकरिष्यामः तदा सकलगोष्ठं मौक्तिकमयमभविष्यत् । पशुपाल्यस्वधर्म्ममपहाय स इव कः कीलासवृत्तिमाश्रयेत् ।।३५।।

तदाकर्ण्य मया निखिलवयस्याः सवत्सा गावः शकटवहा महिष्यः, सशावकमेषाः, सवर्करा अजा, वृन्दावनवर्त्तिन्यो वानर्य्यश्च मौक्तिकमयैर्मालाद्यलङ्कारैर्मण्डिताः ।।३६।।

ततश्च गोप्यो लज्जया स्वभूषणव्यतिरेकेण बहुधनविनाशेन गोपभिया च किमत्र युक्तमिति मन्त्रयितुमारेभिरे । अये ! गृहीतकृष्णपक्षया धूर्त्तनान्दीमुख्याऽभद्रेण प्रतारिताः स्म इत्याभाष्य सरोषं तन्निकटमागत्य तत्कथनपूर्व्वकंबहुशस्ताभिर्निर्भत्सिता नान्दीमुखी प्राह —भोः तपोभ्यः शपे न मया सर्वथैव प्रतारिताः स्म, किन्तु युष्माभिरेव तत्सर्वं विनाशितम् ।।३७।।

सर्व्वाः —कपटिनि ! कथंकारम् ।।३८।।

नान्दी —यतो गर्व्विताभिर्युष्माभिर्ढक्कावाद्यवत् कोलाहलप्रपञ्चेन सवयस्यागणस्य तस्य श्रवणकुहरे सुष्ठुगोचरीकृत्य केदारेषु (केदारिकासु) मुक्ताः स्फुटमुप्ताः तथा कोऽप्येकः प्रहरिको अपि तत्र न रक्षितः ।।३९।।

सर्व्वाः ।— एतावता किं न जातम् ।।४०।।

नान्दी सरोषम् —यज्जातं तच्चतुरम्मन्याभिः श्रूयताम् । युष्मान् विजेतुमभीष्टमिष्टान्नप्रदानेन सुष्ठुप्रलोभ्य धूर्त्तगुरुणा युष्मन्नागरेण तेन प्रेरितलोलुपभण्डमधुमङ्गलेनातिनिर्व्वन्धतो विचित्य किंचित् किंचिज्जातांकुराः सर्व्वा मुक्ता निरवशेषं समादाय तत्र तत्र हिंस्रावल्लीकदम्बान् समारोप्य कियत्यः पृथक् स्वकृत एकस्मिन् केदारे प्रयत्नतः संरोपिताः । तथान्यासान्तु तथैवानीय कालिन्दीगभीरनीरान्तः प्रक्षिप्ताः । इति मया सुदृढ़ं ज्ञातमस्ति ।।४१।।

इति निशम्य सर्व्वा आहुः —अयि कूटत्व-नाटक-नटन-प्रकटनैककार्य्यानिन्द्य-महानान्दि ! अयि ! भण्डमधुमङ्गलगुरु-प्रायमहासतीर्थे ! अयि ! व्रजप्रथित शठनटसहित नाट्ययोग्ये ! तत्प्रियतमे नटि ! अयि कलियुगतपस्विनि ! तिष्ठ तिष्ठेति सभ्रूभंग तामाक्षिप्य स्वगेहमागत्य पुनः पुनस्तदेव विचारयन्ती तासु राधा—भोः सख्यः ! नान्दीमुखी वा प्रतारयतु स धूर्त्तस्तथा वा करोतु अधुना तद्विचारेण को लाभः साम्प्रतमन्यद्दुःखं न गण्यते गुर्व्वादितो भयमेव नः खेदयति । तद्भयन्तु तेभ्यो मौक्तिकेषु दर्शितेष्वेव शिथिली भवेत् । तादृशानि सर्व्वथैवात्र सुदुर्ल्लभानि किन्तु कृष्णादेव मूल्येन यथा गृहीतानि स्युः तत्रोपायश्चिन्त्यताम् ।।४२।

ततः सर्वाभिर्विभाव्योक्तम्,—चन्द्रमुखी चतुरा भवति सुवर्णानि गृहीत्वा गत्वा समुचितमूल्येन मौक्तिकान्यानयतु ।।४३।।

ततस्तयोक्तम् । संप्रत्यस्माभिरुपालब्धस्य तस्य समीपमहमेकाकिनी गन्तुमशक्तास्मि, कांचनलता मम संगे समागच्छतु । इति सर्व्वासामनुमतया बहुसुवर्णानि गृहीत्वा मौक्तिकबाटिकासमीपं ते आजग्मतुः । तत्र तद्बाटिकाधिकारिणं सुबलं मया सह निविष्टमब्रूताम्,—हे सुवल ! श्रुतमस्माभिर्भवद्भिर्नव्यमुक्तानि विक्रीयन्ते । तदिमानि शुद्धसुवर्णानि गृहीत्वा समुचितमूल्येन प्रवीणप्रवीणमुक्ताफलानि दीयन्ताम् ।।४४।।

ततः स्मित्वा मयोक्तम् —तदानीमनेकधा प्रार्थ्यमानं नैकमपि मौक्तिकमस्मभ्यः दत्तम् । अस्मत्-केदारिकासेकार्थं दुग्धपारी च भवतीभिर्नदत्ता । अस्माभिर्वरं कालिन्दीमध्ये प्रक्षेप्तव्यं तथापि भवतीनां गृहसर्व्वस्वेनापि पणीकृतेन निखिलमौक्तिकवृन्दादपकृष्टमेकमपि मौक्तिकं सर्वथा न दातव्यम् ।।४५।।

ततः कांचनलतयोक्तम्,—मौक्तिकनिमित्तं पत्यादिभ्या यदि तासां भीर्नभवेत् तदास्य कदर्थ-नोक्तिमीदृशीं का नाम सहेत । भवतु किं कर्त्तव्यं । हट्टप्रसारितबहुरत्ना मथुरा तावद्दूरे तदद्य भोः सुबल ! स्वयमेव भवता मध्यस्थेन भूयताम् आन्यत्रिकमूल्यादस्माभिर्विशेषोऽपि दातव्यः ।।४६।।

ततश्च विशेषशब्दश्रवणान्मया विहस्योक्तम्—भवतु नाम स्वभावकोमलेन मया तु भवतीभिरिव काठिन्यं कर्त्तुं न शक्यते । अदत्त्वा वा अन्यत् किं कर्त्तव्यम् । किन्तु मौक्तिकार्थिनीनां सर्व्वासां मौक्तिकमूल्यनिर्णयः किं भवतीभ्यामेव भविष्यति ? ।।४७।।

ताभ्यामुक्तम्—अथ किम् ।।४८।।

मयोक्तम् ।—कस्तावद्विशेषः । ततश्चन्द्रमुखी किंचिद्विहस्य कांचनलतामालोकितवती । कांचनलताथ सलज्जं सुबलं प्रति व्याजहार,—सखे सुबल ! स्वयमेव मध्यस्थेन भूत्वा समाधाय समीचीन-यशोभारस्तावदङ्गीक्रियतां भवता ।।४९।।

सुबलेनोक्तम्—वयस्य ! रहस्यतया बहुमूल्यत्वं कियत् कांचनलतया प्रकटीक्रियते । आत्मनोऽ-भीष्टमूल्यं स्वयमेव स्फुटं निगद्य न कथं गृह्यते ।।५०।।

ततोऽहमब्रुवम्,—सखे सुबल ! चन्द्रमुख्या अभिप्रायो ज्ञातः मुक्ताफलानि ग्रहीतुं कांचनलतैव विचार्य्यानर्घ मूल्यत्वेन परिकल्प्य राधादिभिः प्रहित्य मम दत्तास्तीति । किन्तु कांचनसञ्चय तोऽपि मुक्ताफलानामधिकं मूल्यं जगति प्रसिद्धम् । तस्मादेकयैव कांचनलतया कथमेतासां मूल्यपर्य्याप्तिः । यदि वा अस्याः वक्षसि स्वर्णसम्पुटरूपफलद्वये बहवश्चिन्तामणयोऽपि सन्तीति चन्द्रमुखी वक्षति तथापि न । यतो वैकुण्ठनाथकण्ठस्थितकौस्तुभतोऽपि ममैतदेकं मुक्ताफलं परमपरार्द्धम् । ५१।।

तच्छ्रुत्वा भ्रूभङ्गेन मामवलोकयन्ती कांचनलता सरोषमाह,—निर्बुद्धिके चन्द्रमुखि ! तदैव मयोक्तं तस्य धृष्टस्य सविधे मया न गन्तव्यम् । तथापि त्वयाहमाग्रहेणानीय कदर्थितास्मि । त्वं मुक्ता-फलान्यादाय समागच्छ अहमितश्चलितास्मि ।।५२।।

चन्द्रमुखी आह,—कांचनलते ! सत्यं कथयसि, तत् कथमेकाकिन्या मया मूल्यनिर्णयो भवतु, कथं वा निर्ज्जनेऽत्र स्थातव्यम् "एकयोगनिर्द्दिष्टानां सह वा प्रवृत्तिः सह वा निवृत्ति" रिति मयापि गन्तव्यम् । इत्युभे एव गमनोद्यते दृष्ट्वा मयोक्तम् सुबल ! तदैव मयोक्तं यदेताभ्यां मूल्यनिर्णयो न भविष्यति ।।५३।।

तच्छ्रुत्वा तयोः सविधमागत्य (आसाद्य) सुबलेनोक्तम्,—सखि चन्द्रमुखि ! वयस्यस्य मूल्य-विषये महानाग्रहो दृश्यते । तेन प्रियसखी राधा, ललितादिभिः (प्रियसखीभिः राधा ललितादिभिः) सहागत्य समक्षमेव समुचितमूल्यं प्रदाय स्वेप्सितमुक्ताफलानि गृह्णातु । तत्र मया मध्यस्थेन भूत्वा साचिव्यं करणीयम् ।।५४।।

इति निशम्य चन्द्रमुखीकांचनलते तासां सविधे गत्वा सरोषमिव सर्वं वृत्तं कथयांचक्रतुः ।।५५।।

ततश्च राधा ललितादिभिः सह मौक्तिकवाटीप्रान्तमासाद्य चन्द्रमुखीद्वारा सुबलमाकार्य्य तमाह, प्रियवयस्य सुबल ! अस्मासु भवतो निरंकुशः स्नेहः, अतः स्वयमेव तथा विधीयताम्; यथास्माभिः समुचित मूल्येन मुक्ताफलानि लभ्यन्ते ।।५६।।

तच्छ्रुत्वा सुबलेन मह्यं निवेद्य मद्वचनेन मत्सन्निधौ ताः ललितादयः समानीताः ।।५७।।

राधा तु ममात्रागमनं त्वया मदुपद्रावक स्वप्रियवयस्याय सर्वथा न प्रकाशमीयमिति सुबल-माभाष्य सन्निकटस्थकदम्बकुञ्जान्तर्निखिलवृत्तान्तं निशमयन्ती निगूढ़मास्थिता ।।५८।।

ततो मया ताः सर्वा निभाल्य "राधा कथं न दृश्यते" इत्युक्ते तुङ्गविद्ययोक्तम्,—गोकुल-युवराज ! सा खलु सप्रणयं आर्य्यया जटिलया कस्यचिद्गृहकार्य्यविशेषस्य कृते रक्षिता गृहे विद्यते ।।५९।।

ततस्तदवसर एव प्रविष्टेन मधुमङ्गलेन इङ्गितविज्ञापितराधानिगूढ़मन्निकटस्थितिमवधार्य्य किंचिद्विहस्य मयोक्तम्,—तुङ्गविद्ये ! मुक्ताग्रहणेच्छा तस्या न विद्यते इति दृश्यते ।।६०।।

ततस्तयोक्तम्,—न हि न हि तन्मुक्तामूल्यमस्माभिरेव दास्यते ।।६१।।

तदा मयोक्तम्,—विशाखैव राधा, राधैव विशाखा; ततस्तन्मूल्यं विशाखैव दास्यतीति ज्ञायते । भवतु तत्र ममाग्रहो नास्ति किन्तु या खलु स्वयमागत्य न गृह्णाति तस्याश्चतुर्गुणं मूल्यं गृह्यतां, मौक्तिकानि च साधारणान्येव दीयन्ताम्, इति मे सर्वेषां सखीनां सुदृढ़ो निर्णयः ।।६२।।

तदनु सुबलं प्रति मयोत्तम्, सखे सुबल ! अवचित मुक्तापूर्णसम्पुटानानीय पुरतः प्रसार्य्य विचित्य सर्वकनिष्ठान्येव मौक्तिकानि पूर्वकृतं तत्कार्पण्यमप्यविगणय्य प्रथमं तत्कृते विशाखायां समर्प्य तत् सकाशाच्च तन्मूल्यं गृह्यताम् । यदि वा प्रस्तुतं दातुं न शक्नोति ततस्तदभिन्नेयम् । तावत् पुष्प-प्रवालचोरिका गोपकन्यका यत्र रक्ष्यन्ते तत्रैवारान्माधवीकुञ्जकारायां संवध्य (संरुद्ध्य) रक्ष्यताम् ।।६३।।

तच्छ्रुत्वा मधुमङ्गलेनोक्तम् – प्रियवयस्य ! निरोधेअपि (निशीथेऽपि) पररामाभिः पलायन-विद्याः स्फुटमधीताः सन्ति ।।६४।।

तदा मयोक्तम् —वयस्य ! मयाप्येतद् ज्ञायते एव । किन्तु चिन्ता नास्ति, यद्यपि पररामास्पर्शो लज्जात्यागश्चास्मद्विधानाम् स्वप्नेऽप्यतीवायोग्यस्तथापि,—"स्वकार्य्यमुद्धरेत् प्राज्ञः कुर्व्वन्नपि विगर्हितम्"। तथा "आहारे व्यवहारे च लज्जामपि परित्तेजत्"। इति संहितावचनवलादहमेव प्रहरिको भयन् सर्वामेव रात्रिम् जाग्रन्निरन्तरं निवत्स्यामि ।।६५।।

इति निशम्य सुवलसस्मितमाह,—पुरुषोत्तम ! प्रियसख्या विशाखया एतावति महाशङ्कटे कियन्तम् कालम् स्थातव्यम् ? ।।६६।।

ततो मयोक्तम्,—यदर्थमिमम् रक्ष्यते सा यावत् निःशेषं मूल्यद्रव्यम् न प्रस्थापयति, किम्बा

कियद्द्रव्यं गृहीत्वा स्वयमेवागत्य ध्रुवमस्याः स्नेहादित्थमत्र स्थित्वा अवशिष्टद्रव्यानयनार्थमेनां प्रस्थापयति। तावदनया स्थातव्यम् ॥६७॥

इति श्रुत्वा मधुमङ्गलः प्राह,—सखे ! एतद्गोष्ठीनामधीशा सा सर्वाभ्योऽपि सर्वकर्म्मणि विचक्षणा, विशेषतः पलायने, गव्यघट्टयाम् (गव्यघटी) दानादिषु सर्व्वैरस्माभिः पुनः पुनः प्रत्यक्षीकृतास्ति त्वन्त्वनिशमुत्घूर्णसे तेन मे महती चिन्ता जायते ॥६८॥

ततः स्मितमपवार्य्याहमवदम्,—सखे ! अलमनया चिन्तया। तन्निकटे ममोद्घूर्णा न जनिष्यत एव। यदि वा जायेत तर्हि मदुत्तमाङ्गस्य तद्वामभुजामृणालोमुग्धानीकृत्य तदुरस्तलोल्लसितपीत-पट्टाम्बरवरविधूपधानोपरि मद्वामकरपल्लवमरुणमभिन्यस्य तथा मौक्तिकपणनिमित्तकवाग्विलासमुल्ला-सयिष्यामि यथा सुखेन जागर्य्ययैव चत्वारो रजनिषामा द्रुतमेव विरमन्ति। अथवा मदुरोनाम घनान्ध-कारविषमकारागारान्तस्तां प्रविश्य तत्पार्श्वयुगलं कठोरभुजगारुत्मतार्गलाभ्यां दृढं संरुद्धच सुखेन निरातङ्कः स्वप्नविलासं वितरिष्यामि (वितानिष्यामि) ॥६९॥

इति श्रुत्वा सर्वाः स्मयमाना वभूवुः। राधा तूद्ग्रीविकया मां विशाख्यं सर्व्वाश्च सखीरवले कयन्ती आह,—चन्द्रावलीकेलिकुरङ्ग ! तिष्ठ तिष्ठेति अनुच्चैर्मां तर्ज्जयन्ती सुस्मितासीत् ॥७०॥

विशाखा तु कुटिलदृष्ट्या मामवलोकयन्ती आह,—व्रजधूर्त्त धृष्ट ! अपेहि अपेहीति वदन्ती सखीमध्ये लीना वभुव ॥७१॥

ततः सर्व्वाभिः सबलं प्रत्युक्तम्,—सुबल ! विदूषकताम् त्यजः यदि भवतां विक्रयेच्छा वर्त्तते, तर्हि मुक्ताः प्रदर्श्य समुचितमूल्येन प्रदीयन्ताम्, नोचेद्वयम् गृहं गच्छामः। मथुरात एव मौक्तिकान्या-नयितव्यानि ॥७२॥

इति निशम्य सुबलेन सम्पुटानुद्घाट्य ताभ्यो मौक्तिकानि प्रदर्श्य मां प्रत्युक्तम्—प्रियवयस्य ! इमानि मौक्तिकान्यमूल्यानि आभिर्गृहपत्यादिक्यं समस्तगोधनानि च विक्रीयापि एकस्यापि मूल्यं दातुम-शक्यं (न शक्यम्)। एताः खलु भवत् स्निग्धाः सर्वानुपेक्ष्य त्वामेव जानन्ति। तस्मादेतत्पूर्व्वकृत-कार्पण्यमपि विस्मृत्य माञ्च त्वदनुगतमवेक्ष्य यत्किञ्चिन्मूलं गृहीत्वा विनामूल्येन दत्तवदासामभीप्सित-मौक्तिकानि दातुमाज्ञाक्रियताम् ॥७३॥

ततोऽहं (अवोच) सखे न हि न हि वयं वाणिज्यव्यवसायिनः। भवतु किं कर्त्तव्यं भवद्वचनञ्च रक्षणीयम्; तद्वत् किंचिदल्पमेव मया मृग्यते, तद्दापयित्वैव (तन्मामाज्ञापयित्यैव) दीयन्ताम्। किञ्च उत्कोचं गृहीत्वा वारम्बार मम घट्टीदानद्रव्याणि भवता विनाशितानि सन्तीति मम केनापि कथितमस्ति तस्मान्मूल्यद्रव्यं समक्षमेव मयैवाभ्यो गृहीतव्यम् ॥७४॥

सुवलः किंचिद्विहस्याह,—भद्रं वचः; किञ्च एताभिः स्वीयस्वीयाभीप्सितमौक्तिकानि विचित्य पृथक् पृथक् कुटीकृतानि दृष्ट्वा भवतापि स्वाभीप्सितमूल्यं कथ्यताम् ॥७५॥

ततोऽहमव्रवम्;—भद्रं दर्शयस्तु स्वस्वाभीप्सितमौक्तिकानि मूल्यं कथ्यते मया ॥७६॥

सुबलः प्राह, प्रियवयस्य ! एताः विनयेन यन्निवेदयन्ति तत् कृपयावधार्य्य भवते यदि रोचते तदा विधीयताम् ॥७७॥

ततोऽहम्,—सुबल ! कथ्यतां, किं निवेदयन्ति, युक्तञ्चेत्कर्त्तव्यम् ।।७८।।

सुबलः (प्राह),—एवं निवेदयन्ति, "मधुपुरी तावद्दूरे, समग्रमूल्यद्रव्याणाञ्च समाचयनं दिनद्वयमध्य एव सम्पद्यते। गुरुकुलन्तु मौक्तिकालङ्काराद्यदर्शनात् क्षणे क्षणे खिद्यमानं वाढ़माक्रोशति। अतोऽतिस्निग्धान् भवद्विधानवगत्य लज्जामपि परिहाय निर्ज्जनवनान्तरमागतानामस्माकमृणे नैव मौक्तिकानिदापयित्वा द्रुतमेव विदायः क्रियताम्। मूल्यद्रव्याण्यस्माभिर्भवतामभीप्सितवृद्धिसहितानि दिनद्वयाभ्यन्तरे परिशोध्य प्रहेयाणि यद्यस्मासु भवद्वयस्यस्य प्रतीतिर्न जायते, तदा त्वमेवास्माकं प्रतिभूर्भवे"ति। तस्मात् परमप्रतीतिपात्राभ्यः सन्ततसत्यवादिनीभ्यः एताभ्यः प्रतीतिं कृत्वा दत्तेषु मौक्तिकेषु मूल्यद्रव्यम् अभीप्सितवृद्धिश्चाचिराल्लप्स्यते। तथैताभिः सह निबिड़स्नेहोऽपि वर्द्धिष्यत एव ।।७९।।

ततोऽहं विहस्य, सुबल ! त्वं शुद्धबुद्धोऽसि; आसां व्यवहृतिः किञ्चिन्मात्रापि त्वया न ज्ञायते। कुटिनाटी नाटिकानर्त्तक्य इमा मौक्तिकं गृहीत्वा निज निजभर्तृ महादुर्गकोष्ठै र्वेष्टितान् स्वस्वगुरुकुलमहापर्व्वतान् प्रविश्य द्रव्यमदत्त्वा यदि खेलयन्त्यस्तिष्ठेयुस्तर्हि त्वया किं कर्त्तव्यम् ।।८०।।

सुबलः (प्राह)। सखे ! मैवं ब्रवीः। एताः खलु नैवं करिष्यन्ति। यदि वा कुर्य्युस्तदोज्ज्वलवनान्ताज्र्जुनकोकिलादिभिः सह तत्र गत्वा स्वयमाभिः स्वीकृतम् स्वयं ग्रहाश्लेषचुम्बनस्वाधरसुधापानादिरूपमूल्यमेतासां भर्तृषु संश्राव्य तत् प्राप्त्यर्थं तेभ्यस्तथा भयं प्रदर्शयिष्यामि। यथा त एव द्रुतममूस्त्वत्समीपं प्रस्थाप्य तद्दापयिष्यन्ति ।।८१।।

तन्निशम्य मधुमङ्गलेन सक्रोधमुक्तम्,—रे सुवल ! त्वं नाम्नैव सुबलः पुमांश्चासि वस्तुतस्त्ववलाकृतिर्मुहुर्दृष्टोऽसि। यतः साम्प्रतमप्यासाम् अवलानां फुत्कारं क्षुद्रादतिक्षुद्रतरेषु तद्भर्तृषु कर्तुं यदिच्छसि; तद्भीरुस्वभावस्य तवैतत् समुचितमेव, तस्मात्त्वमेवात्रोपविश्य तिष्ठ। मयैव विजयादिधाटीं प्रगृह्य बलादासां भर्तृसहितगोमहिष्यादिकं वेष्टयित्वा समानीय रुद्ध्वात्र नन्दीश्वरपुरे रक्षिष्यते; तदा ता एव स्वयमागत्य स्वस्वद्रव्यं सुतरां दत्त्वा स्वं स्वं पतिं गोधनादिकञ्च मोचयिष्यन्ति ।।८२।।

ततः तच्छ्रवणेन जनित महादुःखभरेनैव मयोक्तम्, प्राणसख मधुमङ्गल ! कथमेवं त्वया मन्त्र्यते ? व्रजवासितो भिल्लपुलिन्दाद्या अपि मे प्रियोभ्यऽप्यधिकप्रियाः। एते तु सगोत्राः सहोदरा मदभिन्ना एव; तस्मादेतन्मन्त्रणमतीवानुचितम्। सुवलभाषितमेव किंचिद्भाति। तथापि प्रियजनैः सममादानप्रदानप्रयोगेण रसरक्षा न जायत एव। तथा च स्मृतिः—नैवादानं प्रदानं हि मित्रैः सह वितन्यते। कृते प्रीत्या भवेल्लोपः कलहस्तदनन्तरमिति ।। ततः प्रस्तुतमेव मूल्यं दत्त्वा मौक्तिकानिनयन्तु ।।८३।।

तच्छ्रुत्वा सक्रोधमिव सुबलं निभाल्य अये ! कौटिल्यपारङ्गत सुबल ! सर्व्वैरेव मिलित्वा विड़म्बयितुमेव वयमत्रानीता भवता, तद्यूयं मौक्तिकवाणिज्यव्यवसायेन राज्यं कुरुत। वयं चलिताः स्म" इत्युक्त्वा चलन्तीनां तासां सविधमासाद्य सौहार्द्दमभिव्यञ्जयन् सुबलो ललितां नोचैः प्राह—सखि ! ललिते ! आदानप्रदानव्यवहारस्य स्नेहभङ्गकारित्वात् केवलं तद्भयेनैव प्रियवयस्येन मूल्यनिर्णयं प्रस्तुतवित्तलाभञ्च विना सर्व्वथैव मौक्तिकानि न देयानीति सर्व्वप्रकारेणावधारितं तस्मात् समागत्य प्रथमं तावन्मूल्यमेव निर्णीयताम्; तद्दानोपायः पश्चाच्चिन्तनीयः" इत्यनुनयेन ताः परावृत्य मत्समीपमानीय मां प्रत्युवाच,—वयस्य ! नर्म्म हित्वा मूल्यमेव तावत् कथ्यताम् ।।८४।।

ततोऽहम्,—सखे सुबल ! प्रथमं तावत् कस्या मौक्तिकानां मूल्यं कथनीयम् ? ।।८५।।

सुबलः प्राह,—एतासां मध्ये ललितैव मुख्या तदेतद्गृहीतमौक्तिक-मूल्यं प्रथमं निरुच्यताम् ।८६।

ततोऽहं किंचिद्विहस्य,--एतद्वाहिनीनां प्रवीणया ललितया समरे पौरुषेण यदि मादृशः पुरुषंहिः सकृदपि कुण्ठितास्त्रीकर्त्तुं शक्यते ; तदास्याः समक्षं सर्व्वथैवास्त्री न भविष्यामि । किम्वा सन्ततम-मुक्तास्त्री भूत्वा एतत् पौरुषमेवानुकीर्त्तयन्निमा मेवानुचरिष्यामीति इदमेव यत्किञ्चिन्मूल्यं दत्त्वा गृह्णातु ।।८७।।

सुबलः स्मित्वाह —गोकुलवीर ! सुदीप्रदर्पभरैर्महेन्द्रगर्व्वपर्व्वतखर्व्वनाय सप्तरात्रमत्र वामकर-कमलकनिष्ठांगुलिवराटकशिखरोपरि भ्रमर इव गोवर्द्धनगिरिर्येन व्यधारि तेनोच्चण्डेन भवता सममबलेयं कौमल्यललिताकथमिव समितिमतिविस्तारयतु ।।८८।।

मधुमङ्गल प्राह,—सुबल ! तं कं पूर्व्वमस्य पौगण्डकृतं दर्पमतिश्लाघसे ? यदधुना तारुण्या-मृतसेकेन स दर्पककल्पतरुर्लक्षलक्षगुणं पल्लवितोऽस्ति ।।८९।।

सुबलः प्राह,—कथमिति विदितम् ।।९०।।

मधुमङ्गलः प्राह,—यदनेन पूर्व्वारीणां सकलानां पूर्व्वं यादृशवैकल्यं कारितमासीत् साम्प्रतमेतद्-दुर्गमं तद्धृदयङ्गमानतनुपर्व्वतानभिलोलयैव केन च नखरास्त्रेणैव खण्डखण्डीकृत्य महामारादिभि स्ततो-ऽप्यतुलतरवैकल्यमापादितमास्ते ।।९१।।

ततोऽहं विहस्य,—सुबल ! सत्यमन्यत्र मया तादृशेनैव भूयते, नत्वेतस्याः पुरतः यस्मात्ततोऽपि प्रवरविग्रहे विविधवैचित्रीप्रवीणयानया वारम्बारं भ्रूधनुष्टङ्कारेणैव हुङ्कारेण हेलया स्तब्धीकृतोऽस्मि । तत् कथमियमबला भवतु ।।९२।।

इत्याकर्ण्यनेन स्मेरमुखीः सखीरवलोक्य स्वानन्दोत्थविकारानवगुह्य सक्रोधमिव ललितयोक्तम् —अये ! सुबल विदूषक ! मधुमङ्गलसहचरस्य गोकुलभण्डस्य भण्डतादेव्या सत्यं त्वमप्याविष्टोऽसि; यदस्मानेतत्समक्षं समानाय्य विड़म्बनसमुद्रे संपातयन् कौतुकं पश्यन्नसोति निगद्य कुटिलदृष्ट्या मामाक्षि-पन्तीमागच्छत भोः सरलाः ! आगच्छतेत्युक्त्वा सर्व्वाभिः सह गच्छन्तीं तदवसर एव तत्रागता भगवत्याः पूर्णमास्या अन्तेवासिनी नान्दीमुखी तद्गमनवार्त्तामखिलां सर्व्वाभ्यः समवधार्य्य व्याजहार,—सखि ! ललिते ! नर्म्मशालिनोऽस्य श्रीव्रजेन्द्रनन्दनस्य परिहासवाङ्मात्रेणैव स्वकार्य्यमुपेक्ष्य कथमपयान्त्यसि क्षणं मया सह निर्वृत्य,—"अपमानं पुरस्कृत्य मानं कृत्वा तु पृष्ठतः । स्वकार्य्यमुद्धरेत् प्राज्ञः कार्य्यध्वंसो हि मूर्खता" ।। इत्यादिन्यायेन परिहासविड़म्बनानि (न्यपि) सोढ्वा स्थैर्य्यमालम्ब्य स्वकार्य्यमुद्धर । किञ्च मया शपथं कृत्वा व्याह्रियते । अस्य नर्म्मभिरेव लग्नकैरिव मौक्तिकानि दापयितव्यानि । अन्यथा भवत्पूर्व्वकृतकार्पण्यमनुस्मरथोऽप्यभिमानशालिनोऽस्य नर्म्मप्रयोगो न सम्भवति । तदन्यस्या मौक्तिक-मूल्यं श्रुत्वा यत्कृते भद्रं स्यात्तदेव व्यवहर्त्तव्यमिति बलादिव तां हस्ते गृहीत्वा सर्व्वाभिः सह मुक्ताकूट-निकटमानीय मां प्रत्युक्तवती गोकुलयुबराज ! तत्र भवत्या भगवत्या शुभाशीः शतपूर्व्वकं भवन्त प्रति किञ्चित् सन्दिष्टमस्ति ।।९३।।

ततोऽहं,—नान्दीमुखि ! कुशलमास्ते तत्र भवती भगवती ? तत् कथ्यतां किमाज्ञापयति, तत्सन्देशामृतेनात्मानमप्याप्याययामि ।।९४।।

नान्दीमुखी प्राह,—इमा वत्सा राधादयो व्रजकुमारिका अस्माकमतीव स्नेहपात्राः आयुष्मति भवत्यपि सन्ततं परमानुरक्ताः, तदस्मान् वीक्ष्य अत्याग्रहं विमुच्य आसां दातुं शक्यमानमूल्यमादाय महाष्टनिधिपतेर्व्रजेन्द्रस्य कुमारेण भवता एतदभीष्टमौक्तिकानि दत्त्वा वयं सन्तोषणीया इति भगवत्याः सन्देशमिममवकलय्य नर्म्माणि परित्यज्य मुक्ताफलदानेनैताः सन्तोष्य गृहाय प्रस्थापयितुं महानुभावाः सर्व्वगोकुलसुखकारिणो भवन्त एव प्रमाणम् ।।९५।।

ततोऽहं सश्लाघं,—नान्दीमुखि ! पूर्व्वं सुबलहस्तेन तत् प्रहिताज्ञाकुसुमं शिरसि निधाय समग्रमेव (समाग्रहमेव) परित्यज्य ललिता मौक्तिकानां यः कश्चन् मूल्याभासोऽनया सह निर्णीतोऽस्ति तमस्या मुखतो निशम्य ततो यत्वया त्यज्यते तदपि मया त्याज्यम् ।।९६।।

इत्याकर्ण्य सकम्पाधरं भ्रुवं कुटिलयन्तीं ललितां सर्व्वाश्च स्मितमुखीरवलोकयन्ती नान्दीमुखी स्मितपूर्व्वकमेवाह,—व्रजयुवराज ! स आभ्यः श्रुतोऽस्ति, किन्तु तादृङ्नर्म्म परिहाय अस्मत्समक्षमन्यासां सर्व्वासामेव यथायुक्तं मूल्यं कथ्यताम् ।।९७।।

ततो (तदा) मयोक्तम्,—नान्दिमुखि ! आसां सर्व्वतो ज्यायसी ज्येष्ठा तदस्या मौक्तिकमूल्य-मनया सह विचार्य्य त्वयैव कथ्यताम् ।।९८।।

नान्दीमुखी प्राह,—वित्तस्वामिनैव मूल्यं प्रथमं कथनीयं; तत्स्वयमेव भवता तत् कथ्यताम् ।९९।

ततोऽहं,—निशापतेर्मम हृदयाकाशवीथ्यामुदितायां राधायाम् उदयन्त्यामनुराधायां स्वमर्य्यादा-मुन्मुच्य तयोर्मध्ये रागेणोदयन्ती ज्येष्ठा मन्मुखचन्द्रं ताभ्यां सह वा पृथग्वा मनागपि स्वमुखेन परिष्वजतु इति ।।१००।।

ततस्तन्निशम्य निकुञ्जान्तरितायां राधायां ललिताविशाखाज्येष्ठासु च तिसृषु भ्रूभङ्गेन क्रोधमभिनयन्तीषु मयोक्तम्,—नान्दीमुखि । स्वस्वमहालाभकरमपि भाषितमवधार्य्य कथमेताः क्रुध्यन्ति ।।१०१।।

नान्दीमुखी प्राह,—सुन्दर ! गोकुलश्यामनिशापतेरन्यपरिगृहीतानां सतीनामस्माकमेतत्पर-पुरुषस्य मुखचन्द्रचुम्बनकरणं दूरे तावदास्तां स्पर्शोऽपि महापापायैवेति क्रुध्यन्ति ।।१०२।।

इत्यादि विनोदलीलामाकर्ण्य सत्यभामा कृष्णमाह,—नाथ ! तारागणने राधाया विशाखेति प्रसिद्धमपि नाम हित्वा साङ्गतमनुराधेति नाम प्रयुञ्जतस्तन्नर्म्मालापभङ्गीं स्वस्मिन् स्वस्मिन्नेवा-वधारयन्त्यो स्तयोर्विदग्धराधाविशाखयोर्न्याय्य एव रोषः, ललिता कथं कुप्यति ? ।।१०३।।

कृष्णः प्राह,—प्रिये ! अनुराधेति ललिताया एवापरपर्य्यायः ।।१०४।।

सत्यभामा आह,—यादवेन्द्र ! एतदपूर्व्वलीलाकथाश्रवणेन मम मनसि तृप्तेरलं वृत्तिर्नास्ति तत् कथय कथय ।।१०५।।

कृष्णः प्राह,—ततोऽहं, स्मितशवलितचम्पकलतावदनचन्द्रमालोकयंस्तद्गृहीतमुक्ताकूटं हस्तेन चालयन्निदमवदम्,—नान्दीमुखि ! इयं ते प्रियसखी चम्पकलता कस्मादपि सिद्धात् प्राप्तसिद्धिरिति मया बहुदिनमनुमितमास्ते ।।१०६।।

नान्दीमुखी । कथमनुमितम् ? ।।१०७।।

मयोक्तम्,—यत इयं चम्पकवल्ली स्थावरा मध्ये (स्थावरमध्ये वृहत्फलद्वयभारानतापि लीलया

चंक्रमीति; अतो मुदिरसुन्दरे मदुरसि चम्पकमाला भूत्वा स्वसौरभभरेण मां वासयतु। मयापि स्वसिद्धि-वलात् एतदाज्ञयैवास्याः कण्ठे सूक्ष्मतरमरकतमणिमालया वक्षोजयोरन्तरे च महेन्द्रनीलमणिनाङ्केन त्वरि-तमेव भवितव्यम् ॥१०८॥

सुबलः,—प्रियसख ! चंक्रमणादिनाऽस्याः सिद्धिः सर्व्वैरनुभूयत एव, तव तु केनापि कदापि कुत्रापि सा नैव दृष्टास्ति; तस्माद्दुष्करेऽस्मिन् कर्म्मणि सहसैव प्रवृत्तेन भवता यदि निष्पादयितुमशक्यं स्यात्तर्हि वयमाभिरुपहसिष्यामहे; अतो विचार्य्यैव प्रवृत्तेन भवितव्यम् ॥१०९॥

ततोऽहं,—सुबल ! मम सिद्धिं पश्यन्नपि न पश्यसि ? मया किं कर्त्तव्यम् ॥११०॥

नान्दीमुखी;—मधुराङ्ग ! कदा कुत्र का सिद्धिस्त्वया निष्पादितास्ति, सा कथ्यताम्, सर्व्वे शुश्रूषवः सन्ति ॥१११॥

ततो मयोक्तम्; – देवयात्रायामम्बिकावने शरणागतत्वेन तातपादयोः पतितं महाजगरं पादाङ्गुष्ठ-स्पर्शमात्रेनैव सर्व्वालङ्कृतिभूषितो विद्याधरराजो मया व्यधायि। गिरीन्द्रराजो गोवर्द्धनश्च सप्ताहमेक-करेणैव छत्राकमिवानायासेनैव्यधारि। कालियविषज्वालाविमोहितः सुबलादिवयस्यगणः स्वदृष्टिमात्रेणैव सचेतनः स्फुटमकारि। बारम्बारं महादावानलोऽप्यमृतीकृत्य सुखेनैव (स्वमुखेनैव) स्फुटमपायि। एव-मादयो बहवः सिद्धिप्रभावा गोकुले केन वाननुभूताः सन्ति ? तदतिविस्तरेणालम् ॥११२॥

इति निशम्य ईषत्स्मयमाना ललिता प्राह,—नान्दीमुखि ! एष ते दुर्ललितो नागरः सर्व्वमेतत् सत्यं कथयति; किन्तु स कालो गतः, यत्र ब्रह्मचर्य्यवलेन तत् गर्व्वं निष्पादितमासीत्, साम्प्रतं नृशंसकंस-सेवकगोवर्द्धनमल्लगृहिण्याः पद्मा-शैव्याप्रभृतिनाञ्च ब्रजाङ्गनानां सन्ततसम्भोगविलासेन दूषितब्रह्म-चारित्वादस्यान्तर्हिताः सर्व्वास्ताः सिद्धयः ॥११३॥

ततोऽहं किञ्चिद्विहस्य; ललिते ! "तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्व्वभुजो यथा" इत्यस्य पद्य-स्यार्थमबुद्ध्वैव त्वयेदमुच्यते, तत्तदर्थः श्रूयताम्,–यथा सर्व्वभक्षणेनापि वह्नेस्तेजोग्नानिर्नभवेत्; प्रत्युत तद्बुद्धिमर्हत्येव भवति, तथा भवादृशीनामुत्तमवराङ्गनानामविरतमधुररसोपभोगमाधुर्य्येण ममापि सिद्धि-र्निरन्तरमुज्ज्वला भवन्ती परमवृद्धिमेवाधिकतरामवाप ॥११४॥

मधुमङ्गलः,—ललिते ! सत्यं ब्रवीति प्रियवयस्यः, सिद्धिश्चेन्न वृद्धिमायाति तर्हि मुक्ताः कथं भूमौ प्ररोहन्ति प्ररूढ़ाश्च कथं सर्व्वतः प्रसारिण्यो (वल्लिकाः) भवन्त्यः प्रचुरतरः फुल्लन्ति फलन्ति च ॥११५॥

ललिता विहस्य ; आर्य्य मधुमङ्गल ! तत् किं भवत्-प्रियवयस्यास्य सिद्धेः प्रभावः ? ॥११६॥

मधुमङ्गल,—तत् कस्य ? ॥११७॥

ललिता,—वृन्दावनभूमेरेव ॥११८॥

राधा स्वगतम्,—ललिते ! एतत् कामिनीसङ्गस्य चेत्युच्यतामिति राधयोक्तं विशाखाप्यनु-भाषितवती ॥११९॥

ततोऽहम्—तत् कथमत्रैव भवतीभिरुप्तमुक्ता हिंस्रा जाताः ? ॥१२०॥

ललिता,—भो विदग्धशिरोमणे ! मुक्ताः किं हिंस्रा भवन्ति ? ॥१२१॥

मयोक्तम्,—तत्कथं मुक्ता नोत्पन्नाः ॥१२२॥

ललिता,—भूमिविशेषस्य वीजस्य च वैगुण्यात् ।।१२३।।

राधा स्वगतम्—ललिते ! क्षेत्रस्यास्य गुणादप्युच्यतामित्येतद्विशाखाप्युक्तवती ।।१२४।।

नान्दीमुखी—ललिते ! सत्यमेव कथयति विशाखा ।।१२५।।

ललिता—कथमित्र ? ।।१२८।।

नान्दीमुखी—यस्मात् सर्व्वदा सर्व्वाङ्गीणमुक्तिविषवल्लरि (वल्ली) महोसरभूमौ सन्ततपरमानन्दकरप्रेमभरोज्ज्वलितभक्तिपीयूषसुरवल्लिसरसतरमहाक्षेत्रेऽस्मिन् वृन्दावने ध्रुवमागन्तुका ये केचन जन्तवो भक्ता एव भवन्ति कथं नु मुक्ता भवन्तु ।।१२७।।

ललिता विहस्य—विशाखे ! स्फुटं कामिनीसङ्गस्य इति भवद्वाग्विलासोऽपि स सन्दर्भो भविष्यति तद्विवृत्य कथ्यताम् ।।१२८।।

विशाखा,—"आरूढ़योगोऽपि निपात्यतेऽधःसङ्गेन योगी किमुताल्पसिद्धि" रिति न्यायेनास्य काये मनसि गोत्रे च श्यामलतरस्य सच्छिद्रवंशीरसिकस्य रतनारोकस्य क्षणमात्रसङ्गेन मुक्ता अपि भूमौ गर्भवासेन जननमासाद्य सच्छिद्रीभूय संसारगुणबद्धा बभूवुः ।।१२९।।

ततोऽहं—विशाखे ! निखिलमेव सत्यं कथयसि ।।१३०।।

सुबलः—वयस्य ! कथमिव ? ।।१३१।।

ततो मयोक्तम्,—मम कामविलासाध्यापकस्य सौन्दर्य्यवैदग्ध्यादिगुणान् विशेषेण नारदादिमुखादाकर्ण्य दण्डकारण्यवासिनो जीवन्मुक्ताः कठोरतपस्याकुलमाचर्य्यगोकुलवनेऽस्मिन् प्रवरगोपगृहेषु जनिमङ्गीकृत्य व्रजविलासिन्यो भूत्वा सुसारवैदग्ध्यादिगुणैरावृता (राविष्टा) एता इव मदुरसि स्रज इव विलसन्ति । तथैवापरे परममुक्ता अपि मदचिन्त्यगुणैराकृष्टा अस्मिन् व्रजवने नित्यसिद्धस्थावरजङ्गमेषु पशुपक्षिभुरुहादयो भूत्वा मामानन्दयन्तः परमानन्दमास्वादयन्तो नन्दयन्ति ।।१३२।।

सुबलः—वयस्य ! साधु वर्णितम् ।।१३३।।

ललिता किंचिद्विहस्य,—महासिद्धश्चेद्भूमिभेदगुणं विना तव सिद्धेः प्रभावान्मुक्ता जायन्ते तर्हि परमसिद्धोऽपि भवान् किंचिन्मात्राधिक द्रव्यलाभाय तद्विक्रयक्षुद्रवृत्तौ कथं प्रवृत्तोऽस्ति ।।१३४।।

ततोऽहं—मूर्खे ललितिके ! यौवनधनगर्व्विताभिर्भवतीभिर्यथा स्वधर्म्मं परित्यज्य इतस्ततश्चञ्चल्यते तथा स्वधर्म्मपरिनिष्ठवैश्य शिरोमणि श्रीव्रजराजस्य एकपुत्रेण मयापि स्वधर्म्मं परित्यज्य किमुच्छृङ्खलेन भवितव्यम् ; यतः कृषि-वाणिज्य-गोरक्षाकुशीदं तूर्य्यमुच्यते" इति वैश्यानामस्माकं चतस्रोवृत्तयो भवन्ति ; आसामेकवृत्त्य चरणेनैव सर्व्वसिद्धेर्वृद्धिस्तच्चतुष्टयमाचरतो मम पुनः सिद्धिः परमकाष्ठामारूढ़ैव परं विराजते ।।१३५।।

नान्दीमुखी सस्मितम्,—स्वधर्म्मनिष्ठयुवराज ! भवतः कृषि-वाणिज्यगोरक्षा-तिस्रो वृत्तयः स्पष्टमनुभूयन्त एव वृद्धिजीविका तु कदापि नविकलितास्ति ।।१३६।।

ततोऽहम्,—नान्दीमुखि ! साप्यस्माभिः क्रियमाणापि (स्ति) त्वया किं न ज्ञायते ? साम्प्रतमपि मुक्तात्यन्ताभावसंक्षोभिनीभि रेताभि सह संकामित स्वधर्म्मं मुक्तापारव्यापारवृद्धिवृत्ति विधातुमारब्धवानस्मि ।।१३७।।

विशाखा किञ्चिद्विहस्य,—सुबल ! यत्र यो रज्यति स खलु विनिन्द्यमपि तदेव श्लाघ्यतयोत्-कीर्त्तयति अतस्तावत् सुष्ठु अधर्म्मस्यापि शोभनत्वेन वर्णनमस्य त्वत्प्रियसखस्य नायोग्यम् ।।१३८।।

सुबलः विहस्य,—नान्दीमुखि ! न केवलमसौ धनस्य वृद्धि लभते किन्त्वन्येषां पदार्थनामपि क्षणे क्षणे वृद्धि लभमानोऽस्ति ।।१३९।।

नान्दीमुखी,—कस्य कस्य ? ।।१४०।।

सुबलः,—प्रथमं प्रत्यङ्गे, मनसिजकोटिविजयि(नि) नव तारुण्यस्य, नेत्राञ्चले चञ्चलकमल-विनिन्दिघूर्णनस्य, भाषिते च सुधासारोज्ज्वलमाधुरीनाम् ।।१४१।।

मधुमङ्गलः—सुबल ! इतरपदार्थनां वृद्धिः किं त्वया विस्मृता ।।१४२।।

सुबलः,—स्मारय केषाम् ।।१४३।।

मधुमङ्गलः,—मकरकुण्डल मणिमञ्जीरहार-वलय-केयूरमणि मुद्रिकादिभिः परमसौन्दर्य्य-दर्पादिकमधुरकेलिविलासानाम् ।।१४४।।

ललिता,—आर्य्य ! अन्यतरैकवस्तुनः कथं वृद्धि सङ्गोपितवानसि ।।१४५।।

नान्दीमुखी—कतरस्य ? । १४६।।

ललिता—वल्लभकुलसाध्वीनामधरामृतोच्छिष्टस्य ।। (क) राधा सस्मितम्,—ललिते ! सत्यं सत्यं वपुराख्याति भोजनमित्येतत् प्रगुण तररसायनपानेनैव वाहुयुगले सुवृत्तेन्द्रनीलार्गलादर्पदलनवलनस्य, वक्षसि मारकतकवाटाहङ्कारविध्वंसिविस्तारस्य उरुद्वये च मरकतकदलीस्तम्भगर्व्वसर्व्वङ्कषसुवृत्तितायाः, वदने च शारदशशधरपरार्द्धमाधुर्यासङ्कोचकारिनिर्भरसुषमायाः, चरणयोः नवरसालपल्लवप्रशस्ति वित्रासिमाधुर्य्यस्य, सर्व्वाङ्गे मधुरतरसन्निवेशकुशललज्जाकारिसुभगसौष्ठवस्य, वपुषि च नवनवमुदिरेन्दी-वरेन्द्रनीलप्रभाहारिविसारिप्रकटोज्ज्वलताभरस्य, येनास्य सकलान्तरमप्यभिवाप्य विलसितमिति तन्मृदु-भाषितामृतं विषखयापि सस्मितस्फुटसुलपितकुसुमेन सुवासितं व्यधायि ।।१४७।।

मधुमङ्गलः,—'सपरामर्शं' वयस्य ! पररमणीमधुराधरलोलुपं त्वामेता धूर्त्ता मिष्टमिष्टवचन-माधुरीभरेण परिलोभयन्त्यः प्रचुरतरवृद्धि प्रतिश्राव्य (परिश्राव्य) मौक्तिकान्यादाय जटिलादिदुर्गमास्थाय मूलमपि न दास्यन्ति; वृद्धिवार्त्ता तु दूरे वर्त्तामिति सुष्ठु, विज्ञायाहं मित्रेण हितमाशंसनीयमिति विज्ञापयन्नस्मि (विज्ञापितोऽस्मि) । अग्रे तुभ्यं यद्रोचते ।।१४८।।

ततोऽहम् दशनैरसनां संदश्य—सखे ! इमा गान्धर्वादयः कुलाङ्गनाः प्रकामादानप्रदाने महा-शुचयस्तदजानतैव त्वयेदमुच्यते तच्छ्रूयताम्,—साम्प्रतमेव स्वाधरामृतोपटौकनेन मामतीव सन्तोष्य गान्धर्वया मत्सकाशात् प्रातर्गृहीतकमलराग रेखिका युगलेन निजवक्षोरुहं परिभूष्य मदुरसि तदेव चतुर्गुणीकृत्य सायमेव वितीर्णम् । ललितया च परश्वः सायममृतस्राविचुम्बकरत्नमेकमादाय कलिक्रमेण त्रिगुणीकृत्य परिशोधितम् । विशाखयापि निशीथे परमाग्रहेण मन्मधुराधरामृतमादाय स्वसर्व्वस्वभूतं (तदेव) प्रातर्वहुगुणीकृत्य प्रदाय वाढ़माप्यायितोऽस्मि । चम्पकलतादयश्च वारम्बारं स्वस्वाभीष्टपदार्थ-माग्रहेणाभिगृह्य काश्चिद्द्विगुणीकृत्य काश्चित्त्रिगुणीकृत्य प्रदाय मामतीव सन्तोषितवत्यः, किन्तु आसु जनद्वयी केवलं प्रदाने किञ्चिदन्यादृश व्यवसाया वर्त्तते ।।१४९।।

नान्दीमुखी—कतरा सा ।।१५०।।

ततोऽहम्, एका रङ्गणवल्ली मद्वक्षसि (मदुरसि) निजवक्षःस्थितनिस्तलमधुरफलयुगलस्य त्रिरारोपणमुरीकृत्य मत्करमर्द्दनफलद्वयं गृहीत्वा सकृदेव तदर्पितम् अवशिष्टं द्विरर्पणं गतिक्रियामाचर्य्यं नाद्यापि करोति। काचिदन्या रङ्गणमालासहचरी तुलसी नाम्नी द्विगुणीकृत्य दातुमुक्त्वा मदेकपरिरम्भ नामस्तवकं समादाय साम्प्रतम् इदानीं देयम् तदानीं देयमिति कालं क्षपयन्ती मूलमपि न ददाति ॥१५१॥

मधुमङ्गलः—अयि रङ्गणवल्लीतुलस्यौ ! युवयोः सकाशादलभ्यमानात्मदिव्यद्रव्योऽपि प्रियम्वदोऽस्मत्प्रियवयस्य- सहजसारल्यतो-भवद्विधासु प्रियमेव वक्ति। तथाप्येतादृशेऽप्यस्मिन् वञ्चन-चातुरीमाचरन्तीभ्यां भवतीभ्यां कृतघ्नत्वात् लोकधर्म्मतो भयं न क्रियते ? ॥१५२॥

तदाकर्ण्य चारु हसन्ती ललिता प्राह,—

सख्युस्तवार्य्य ! मधुमङ्गल ! भाषितं तत् पीयूषवतः प्रियतरं न हि कस्य गोष्ठे।

प्रत्यक्षरं प्रतिपदं तदलीकतोग्रशक्राशनस्य न हि चेदिह भूरिगन्धः॥

ततः सहासकोलाहलं साधु ललिते ! साधु वर्णितमिति सर्वास्तास्तामालिङ्गितवत्यः, राधा च तथैव मनसा ॥१५३॥

नान्दीमुखी—मोहन ? कथमप्रतीतिः क्रियते ? ललिताप्रेमपात्रीयं रङ्गणमालिका, द्वितीया च विशाखा-प्रियशिष्या तदेताभ्यामेव ते प्रबोध्य तदवश्यं दापयिष्यते। यथा ताभ्यां सह भवतः शुद्धभावेन पुनः पुनरेष व्यवहारो निर्वहति। यदि वा दापयितुः न शक्यते तदा तदवशिष्टद्रव्यं तत्स्नेहात्ताभ्यां स्वयमेव दाप्यते (दास्यते)। एते अपि यदि ते झटिति दातुं नाङ्गीकुरुतस्तर्हि केनापि भवाननुयोक्तं न शक्यते। भवता त्वनङ्गमञ्जरीसहोदराग्रतः क्रियमाण एव फुत्काराराम्भे ताभ्यामेव साध्वसेन स्वीकृत-वृद्धसहितं (स्वीकृतवृद्धिसमेतं) तत् द्रुतं सुतरां वितरिष्यते ततः सर्व्वासु नान्दीमुखीं माञ्च सभ्रू कुटि-कौटिल्यमीक्षमाणासु किञ्चिदुपसृत्य तुङ्गविद्या सान्तःस्मितमाह,—भो भोः सख्यः ! अपूर्वैका वार्त्ता श्रूयताम् ॥१५४॥

सर्वाः,—सखि ! का सा ? ॥१५५॥

तुङ्गविद्या,—एकःकान्तदर्पनामाचार्य्यः श्रुतोऽस्ति ? ! ॥१५६॥

ललिता,—परम्परया श्रुतोऽस्ति भद्रेण न ज्ञायते ॥१६७॥

तुङ्गविद्या—तत्प्रियशिष्येण श्यामलमिश्रनाम्ना तत्कृतसूत्राणां सन्धिचतुष्टयाख्यातकृद्वृत्तय इति व्याख्याताश्चतस्रोवृत्तयो याः कृताः सन्ति ताः किं भवतीभिर्दृष्टचर्य्यो भवन्ति ? ॥१५८॥

विशाखा,—विष्णुः विष्णुः तद्वृत्तिदर्शनं तावद्दूरेऽस्तु स एव कदापि न कर्णोगोचरी कृतोऽस्ति ॥१५९॥

ललिता साकूतम्—तुङ्गविद्ये ! कुत्रासौ त्वया परिचितः। १६०॥

तुङ्गविद्या,—सखीस्थल्या एकमहापद्माप्सरसा तद्वृत्तिपाठार्थं तं मृगयितुं सायमत्रागतमासीत् ॥

ततोऽहम्,—तुङ्गविद्ये एतावद्दूरभूमौ कथं तत् सञ्चारः ? ॥१६२॥

तुङ्गविद्या,—निकामवन्यावृद्धिसामर्थ्येन। इत्याकर्ण्य सर्वाः स्मितं कुर्वन्ति स्म ॥१६३॥

ललिता,—ततस्ततः ॥ तुङ्गविद्या,—श्यामलमिश्राद्वितीयेनालीकराजपण्डितेन प्रथमं नर्म्म-पञ्जिकां क्रयविक्रयपञ्जिकाञ्च विधाय साम्प्रतमलीकपंजिका तदादानप्रदानपञ्जिका च प्रपंचिता अनुक्रमेण नाम्नान्तरेण च प्रपञ्चितैतत्पञ्जिकाचतुष्टयं भवतीभिः श्रुतमस्तीति मन्ये ॥१६४॥

ललिता,—अथ किं सोऽपि सुष्ठु अनुभूयमानोऽस्ति ॥१६५॥

तुङ्गविद्या—तेभ्योऽपि परमसमीचीनतीव्रधीप्रागल्भ्येन तत्सतीर्थेन कुहकभट्टेन तद्वृत्तिचतुष्टयस्य टीका युगपत्कर्त्तुमारब्धाः सन्ति ॥१६६॥

चम्पकलता,—तुङ्गविद्ये ! त्वं सर्वविद्याविशारदासि तदेषां चतुर्णां शास्त्रकारिणां नामधेयनिरुक्तिमवगन्तुम् सर्वास्त्वत्तोऽभिलषन्ति ॥१६७॥

विशाखा,—आचार्य्यभट्टयोरर्थः स्पष्ट एव तन्मिश्रपण्डितयोः स तावन्निरुच्यताम् ॥१६८॥

तुङ्गविद्या विहस्य,—दोषोऽप्यस्ति गुणोऽप्यस्ति तेन मिश्रेन मिश्रेत मिश्रते वा इति मिश्रः ।१६९

नान्दीमुखी,—कतरो वा दोषः कतरो वा गुणः ? ॥१७०॥

तुङ्गविद्या,—वैदग्ध्य।वैदग्ध्ययोरविचारेणेव यत्र कुत्रापि सर्वत्र प्रवृत्तिरिति दोषः। सारल्याधिक्येन उत्तमानुत्तमा विचारेनैव वैषम्यं विना सर्वत्रसमतया प्रवृत्तिरिति महान् गुणः ॥१७१॥

ललिता स्मितवा,—तदस्यैतन्मिश्रतापदवी समुचितैव ॥१७२॥

चित्रा,—पण्डितोऽपि निरुच्यताम् ॥१७३॥

तुङ्गविद्या,—सदसद्विचारिका बुद्धिः पण्डा तया युक्तः पण्डितः इति अयन्तु बुद्धिगौरवेण "पूर्वपरयोः परविधिर्बलवान" इति विचार्य्य परा असद्विचारिका या सा पण्डा तामेवोत्तमत्वेनाश्रितस्तद्युक्तत्वात् पण्डित इति ॥१७४॥

चित्रा,—सखि तुङ्गविद्ये ! सन्ध्यादिचतुष्टयस्याप्यर्थः प्रकाश्य कथ्यताम् ॥१७५॥

तुङ्गविद्या—चित्रे ! अस्मद्गोष्ठ्यां तत्प्रपञ्चने (एतत्प्रपञ्चने) ललितैव दक्षा तत् सैव कथयतु ॥१७६॥

ललिता,—चित्रे एतत्प्रसङ्गलेशोऽपि मया कदापि नश्रुतोऽपि, तदेतत्प्रकरणव्याख्यात्री तुङ्गविद्येव तदर्थं जानाति ॥१७७॥

चित्रा,—तुङ्गविद्ये ! मच्छिरसा शापितासि त्वयैव व्याख्यायताम् ॥१७८॥

ततोऽतिलज्जया स्वयमसंकथ्य राधिकातिप्रीतिपात्रीं मनागप्यनुच्यमानां तदीयसुखदसविधां भूचारणवर्य्यं किशोरीं तुङ्गनर्म्माख्यवैहासिकीं चक्षुःकुणनेन सस्मितमालोकयन्त्यां तुङ्गविद्यायां, तुङ्गनर्म्मा किंचित् सन्निधाय सस्मितमनः मुखमवलोकयन्ती निजगाद,—चित्रे ! स तावदर्थोऽस्माभिर्न ज्ञायते किन्तु तयाप्सरसा पुनः पुनरागत्य सविनयं स्वयमाग्रहभरेण सुप्रसन्नीकृतात् यथार्थपदवीक-मिश्रवरादधीत्य तद्वृत्तिचतुष्टयव्याख्यानमस्मत्सहिततुङ्गविद्याग्रतः साङ्गं यदकारि तत् समासेन मया कथ्यमानं श्रृणुत.—प्रथमं स्वेन दूतीद्वारा वा कृताभियोगेन यूनोर्मिलनं सन्धिः। तस्यवृत्तिर्विवरणमभिसारादिरिति ततः परिष्वङ्गचुम्बन कुचालम्भनाधर पानरूपानां श्रृङ्गारभेदानां चतुष्टयमेव चतुष्टयम्। तस्य वृत्तिर्वाहुवन्धनभङ्गचादिर्गण्डस्थलेसविलासमुखकमलारोपणादिर्नखक्षतादिः सवैदग्ध्यदंशादिरिति। ततोऽन्योन्यनर्म्मलपितमाख्यातम्। तस्य वृत्तिः परम्परजयाकाङ्क्षया निगूढार्थप्रहेलिकादिप्रयोग इति ॥१७९॥

चित्रा सस्मितम्—तुङ्गनर्म्मन् ! अश्रुतचरैतदपूर्वार्थव्याख्यानमस्मत्कर्णगोचरीकृतं भवत्या तत् कृद्वृत्तेरप्यर्थः सुष्ठु निरुच्यताम् ॥१८०॥

तुङ्गनर्म्मा,—आनन्दं करोतीति आनन्दकृत्-सम्भोगः। तस्य वृत्तिः शीत्कारचक्षुर्निम्मील-

नादिदिरिति। किञ्च कान्तदर्पाचार्य्यद्यवतारिणा कलाप प्रियेण सिद्धकुमारेणानेन तत्तद्विग्रहान्तरैणैवयत् कलापव्याकरणमाविर्भावितं तत्रात्यन्तोपादेयत्वेन अतिशयरहस्यत्वेन च प्रकटमनिगद्य भङ्गया नामधेयान्तरेण च यत्किंचित् निगूहितं तद्भवद्विधरसिकस्निग्धविदग्धजनैर्विदग्धबुद्धिसखीभिः सममधिकविचारेण समनुभवनीयमिति ॥१৮१॥

चम्पकलता किंचिद्विहस्य,—तुङ्गविद्ये ! एतद्भट्टपादानां द्वावेव भुजौ तत्राप्यतीव सुकुमारौ तत् कथमेकदेव टीकाचतुष्टयं लेखितुं शक्नोतु ।।१৮२।।

तुङ्गविद्या,—मुग्धे ! निजेन्द्रजालवलेनायं भुजचतुष्टयमपि प्रादुष्कर्त्तुं शक्नोति ॥१৮३॥

ललिता,—सत्यं सत्यं वासन्तिकरासोल्लासमहोत्सवे परमरामस्थली निकटवर्त्तिप्रविष्टकनामारण्यखण्डान्तर्निकुञ्जान्तरालेऽपि पररामारत्नमपहर्त्तुं निखिलवल्लवीवृन्दवंचनाय च स्वपरिचायकाद्भुतनिजमाधुरीसन्ततिमवगुण्ठय कुहकबलादेवानेन चतुर्भूजत्वमाविष्कृतमासीत् ॥१৮৪॥

विशाखा,—ललिते ! सत्यमेतत् सर्वमस्यकुहकवलविजृम्भितमेव यत् प्रियसख्या सह गद्यपद्यैर्नर्म्मालापगोष्ठ्यां तां जेतुं निजकुहकपाण्डित्येन सम्प्रति वृद्धिवृत्तिमाचरता पदद्वयस्य वृद्धिः कदाचित् कदाचिद्यदनेन क्रियते तच्चास्माभिरपि दृष्टमस्ति ॥१৮৫।

सुदेवी— विशाखे, ! चतुर्णामितेषां शास्त्रकारिणां प्रायेणैक एव व्यवसायः कथं दृश्यते ? ॥१৮৬॥

नान्दीमुखी,—सुदेवि ! एतद्विवरणमल्पाक्षरेण तुङ्गनर्म्मणा यदकारि तत् किं त्वया न हि श्रुतम् ? ॥१৮৭॥

सुदेवी—यावग्रामस्थप्रियसख्यां तदानीं दत्तमनस्कया मया तत् सम्यक्तया नावधारितम्, तत् कृपया त्वयैव विस्तरेण संकथ्य श्राव्यताम् ॥१৮৮॥

नान्दीमुखी,—सुदेवी ! श्रूयतां; वस्तुतः एते चत्वारः कुहकभट्टनामा एक एव कुमारो भवति। विनोदसम्पादनायात्मनः प्रकृष्टतरकुहकप्रभावात् प्रकटितेनैकेन विग्रहेणैव "कान्तदर्पाचार्य्य" इति अपरेण "श्यामलमिश्र" इतिपदवीमध्यारूढो वर्त्तते। अलीकराजपण्डितेन समं तु स्फुटमस्य पृथग्विग्रहता नास्त्येव किन्त्वयमेव सदा धर्म्मी कुमारः, स्फुटमत्र विलासविशेषोल्लासकारणाय किंचित् प्रकाशभेदेनालीकराजपण्डितेति नामान्तरमुररीकृत्य काममातमीयानामात्मनश्च परमानन्दकल्लोलमास्फालयन् विहरते।१৮৯

ततोऽहम्,—हं हो ! यच्चतुर्भुजत्वादिकलीलायितमखिलमस्माभिः सिद्धताप्रभावैरेवाविर्भावाते। तन्मूर्खाभिराभिरुग्राभिः कुहकभट्टार्मिनिजनिकृष्टकुहकप्रभावैरेवेति सन्ततमुद्घूष्यत ॥ इति मद्वचः समाकर्ण्य सर्वाः—अनेन सिद्धगोस्वामिना स्वप्रभावेण निजालीकतापि सिद्धीसम्पाद्य स्वमुखेनैव परं निर्द्धारिता व्यधायी"ति सर्व्वैर्निर्भरमुल्लास्यमाने हासकूतुहले ॥१৯०॥

अहं स्वगतम्,—भो ! आश्चर्य्यम् आश्चर्य्यम् अमूभिर्वावदूकवल्लवीभिर्वंचनप्रकाशपरिपाटीभिर्वाढ़मलीकतैव मयि सिद्धीकृतेति मनसि विभाव्य लज्जया मया तदनार्कणितमुद्रयैव ताः सुष्ठ्ववधार्य्येव किञ्चिद्विहस्य व्याहृतम्, भो मुग्धाः यौवनान्धाः विलासिन्यः ! यद्यत्र न हि वः प्रतीतिस्तर्हि सर्वेषां समक्षमेव स्वसिद्धि दर्शयन् प्रथममस्याः कण्ठे वनमाला भवानि इति" विहस्य चम्पकलतामुपसर्पन् "वयस्य ! सिद्धस्य तव पररमणीस्पर्शः परमन्याय्य" इति विहस्य वदता मधुमङ्गलेन निर्वर्त्तितोऽहमवदम्—सखे सिद्धस्य सिद्धया संयोगो मिथः परमानन्दलाभायैव भवति ॥ उक्तञ्च श्रीनारदेन,—परमानन्द-

लाभाय स्वयूथ्यामेव संश्रये" दिति । इति निशम्य हसन्तीषु सर्वासु परमानन्दजनितकम्पादिसात्विक-विकारान् भयेनेवाच्छादयन्ती चम्पकलता प्रपलाय्य कुञ्जान्तराले प्रविष्टा राधां पृष्ठे समालिङ्ग्य निलीमासीत् ॥१६१॥

ततोऽहं,—चित्रां मौक्तिकानि हस्ते चालयन्नुक्तवान्,—चित्रे ! समक्षमागत्य मौक्तिकमूल्यं शृणु, शृङ्गारकर्म्मविचक्षणायास्तव मूर्त्तिमञ्जुषिकायां तत्साधनानि वहूनि सन्तीति त्वत्प्राणप्रेष्ठसख्या कथितमस्ति, तैं विचित्रशृङ्गारेण मत्प्रत्यंगानि तथा भूषय यथाऽहमपि त्वद्वक्षःस्थकांचनघटद्वयमर्द्ध चन्द्र-पत्राङ्कुरादिभिः सन्तोषेणालङ्कृत्य त्वत्कौशलविशेषं त्वत्प्रियसखीराधिकापुरतः सुष्ठु संकीर्त्त्यतामानन्द-यामीति ॥१६२॥

तच्छ्रवणतः सक्रोधं चित्रा,—अये अविरतमतिविकटभण तोच्चण्डचण्डिकाविष्ट ! अये त्रिजगति प्रसिद्धधृष्टतोद्भट शठभट्ट-पराद्र्ध पुरी-प्रगाढ़महासम्राड़्वर ! झटिति साकोटवाटिका कुरङ्गकुटुम्बिनी-कुल-नट ! त्वद्योग्याभिस्तत्तत्साधनकर्म्मकर्म्मठाभिस्ताभिरेव ससन्तोषं सुचित्रितेन भवता ता एव सुश्लाघं सुस्वरेण सन्ततमनुकीर्त्त्यन्ताम् इतस्त्वरितमपसरतु स्वामी ॥ इत्याकर्णनेन जातहासाः सर्व्वास्तां सुष्ठु तुष्टुवुः ॥१६३॥

तदनु नान्दीमुखी—गोकुलमङ्गल ! सकलगोकुलजन (जीवन) जीवातु-मुखचन्द्रप्रकाशं भवन्तम् अकस्माद्विमनस्कमिव संवीक्ष्य भवदेकायुषामस्माकं हृदयानि मर्म्मव्रणवेदनावह्निजालितानीव स्फुटन्ति सन्ति, ततस्तन्निदानमवश्यं कृपया प्रकाश्यताम् यथा भगवतीद्वारा तत्प्रतीकारं झटिति निष्पाद्य श्रीमन्तं भवन्तं वाढ़मानन्द्यैवात्मानं सन्धुक्षयाम ॥१६४॥

इति नान्दीमुखीवचनमाकर्ण्य सवैक्लव्यमिव मयोक्तम्;—नान्दीमुखि ! श्रूयताम् अदृष्टाश्रुत-चरचारुचातुर्य्य-निरवद्य महावैदग्ध्य-विविधसुदुर्बोधनर्म्म कर्म्मस्वाध्यायप्रथमाचार्य्यायाः, समस्तकल्याण-गुणमणिमंजुषायाः, स्वपरिजनगणजीवनीभूतस्मितनवघनसारसुवासितभाषितपीयूषायाः, शच्यादिसौभाग्य वतीवृन्दवर्ण्यमानसौभाग्यभरायाः, सन्ततमिन्दिरादिगौरीगणमृग्यमाणसौन्दर्य्यरसस्फुरितनखांचल प्रतीकायाः, सुर-नरगण-गन्धर्व-विद्याधरमुनिवरवन्दितभुवनेश्वरी शतवन्द्यमानपदारविन्दायाः, समस्त-वैकुण्ठतोऽपि परमोत्तमपरमव्योमतोऽपि वृंहितमहामहिमोत्तर वृन्दाटवीमहायोगपीठमहासिंहासने संभृत-महारत्नाभिषेकायाः महादेव्याः सुधासागरमथनोत्थितराधेत्यक्षरयुगलघनीभूततत्सारांशकलशद्वय-विनिर्म्मितराधेतिनामधेयादपूर्व्वामृतसार-विकारविशेषेणाप्यायित-शीत्कारितचतुर्द्दशभुवनायाः सन्तत-सौरभ्य-निरवधिसौन्दर्य्यनिस्तुलकौमल्यनिर्भरवरारुण्यादिविनिर्जितरक्तोत्पलकुलचरणपरिचरणैकजीविने सकलवरिवस्याविशारदाय मह्यं स्वयमाहूयासङ्कोचतया मत्कामितप्रत्यङ्गसेवा यत्तया न दीयते; अतस्तस्य मयि मधुरां प्रीतिमनवधार्य्य तत्पूर्णांशां यथार्थनाम्नीं तुंगविद्यां भगवतीमुखात् निशम्य सत्वराभीष्ट-लाभाय एनां गुरुत्वेनासाद्यास्याः सकाशात् महादेवी-मन्त्रराजं दिदीक्षिषुरहं त्वां भगवत्यद्वितीयां प्रपन्नोऽस्मि ॥१६५॥

नान्दीमुखी विहस्य,—सुलक्षण ! प्रथम तावत् शास्त्रीनिर्णीत गुरूपसर्त्तिर्विधीयताम् ॥१६६॥

मयोक्तं—भद्रं वचः प्रथमं गुरुशिष्ययोः परीक्षैव न्याय्या । ततस्तिस्रस्त्रियामाः कुत्रापि निर्ज्जनकुंजे क्षणे महिलां क्षणे पुमांसं मां सम्पाद्य स्वविद्यायाः प्रभावमसौ दर्शयतु । ततो विश्रभ्य परम-सम्भ्रमेण मयाप्यस्याश्चरणयावाभरण-श्रोणिमर्द्दनवक्षोजकण्डूयन-वेणीबन्धनादिपरिचर्य्यासु सर्व्वोपेक्षया

क्रियमाणासु सुप्रसन्नेयं 'त्वत्सेवया परमप्रसन्नास्मी''ति निरुच्य मां मनोभवानन्दकरनिकुंजमण्डपवेदिकां प्रापय्य ''भो ! विचक्षण ! मद्वक्ष:स्थलकार्त्तम्बर मंगलघटयुगलं स्वकरयुगलेन स्पृशन् मृगमदकुङ्कुमादि-पङ्कलेपपूर्व्वक मणिपुष्पमालाभिर्वेष्टये''त्यादिभाषितमन्त्रैर्घटं स्थापयित्वा स्ववक्षोजमहाप्रसादकुङ्कुमेन मम ललाटादिषु तिलकं कृत्वा मृगमदेन मद्वक्षसि महादेवीनाममुद्रामभिलिख्य बाहुद्वयंच तच्चरणचिह्न-सौभाग्यमुद्राभिरङ्कितीकृत्य स्वकण्ठादेकावलीमालामुत्तार्य्य मत्कण्ठे निधाय मम वक्ष:पार्श्वयो: स्वकुचौ, अंसद्वये बाहुलते, मुखे च स्वाधरम् अपरांगान्यागमानभिज्ञेय मया स्फुटमज्ञातान्यपि परमागमाचार्य्येयं स्वयं तदर्पणस्थानेऽर्पयतु इति षड़ंगानि विन्यस्य ''षड़क्षरमन्त्रराजस्यास्य स्वयम्भुर्ऋषिर्गायत्री छन्द: श्री-गान्धर्व्वा देवता सविन्दुप्रथमवर्णो वीजं शक्तिरुपास्योपासकयोर्म्मिथ:सुयुक्तरतिजननपूर्व्वकाभीष्टकामसिद्धये विनियोग:'' इत्यादि पूर्वांगं यथाविधि सम्पाद्य ''अथ स्वीयसरस्तीरकुंजरंगस्थले मुदा। सभ्यानालीगणान् भंग्या धिन्वन्तीं नर्म्मनर्त्तनै: ।। गौरीं रक्ताम्बरां रम्यां सुनेत्रां सुस्मिताननाम्। श्यामां श्यामाखिलाभीष्ट साधिकां राधिकां श्रये ।।'' इति ध्यानंच सुचिरं कारयित्वा कृपया मह्यं कामिने कामबीजपुटितं मन्त्र-राजमुपदिश्य मां कृतार्थीकरोतु ।।

तदनु—महाभावोज्ज्वलच्चिन्तारत्नोद्भावितविग्रहाम्।
सखीप्रणयसद्गन्धवरोद्वर्त्तनसुप्रभाम् ।। (क)
कारुण्यामृतवीचीभिस्तारुण्यामृतधारया।
लावण्यामृतवन्याभि: स्नपितां ग्लपितेन्दिराम् ।। (ख)
ह्रीपट्टवस्त्रगुप्तांगीं सौन्दर्य्यघुसृणांचिताम्।
श्यामलोज्ज्वलकस्तूरीविचित्रितकलेवराम् ।। (ग)
कम्पाऽश्रु पुलक-स्तम्भ स्वेद-गद्गद-रक्तता:।
उन्मादो जाडामित्येतैरत्नैर्नवभिरुत्तमै: ।। (घ)
क्लृप्तालङ्कृतिसंश्लिष्टां गुणालीपुष्पमालिनीम्।
धीराधीरात्वसद्वासपटवासै: परिष्कृताम् ।। (ङ)
प्रच्छन्नमानधम्मिल्लां सौभाग्यतिलकोज्ज्वलाम्।
कृष्णनामयश:श्राववतंसोल्लासिकर्णिकाम् ।। (च)
रागताम्बूलरक्तोष्ठीं प्रेमकौटिल्यकज्जलाम्।
नर्म्मभाषितनिस्यन्दस्मितकर्पूरवासिताम् ।। (छ)
सौरभान्त:पुरे गर्व्वपर्य्यङ्कोपरि लीलया।
निविष्टां प्रेमवैचित्त्यविचलत्तरलांचिताम् ।। (ज)
प्रणयक्रोधसच्चोलीवन्धगुप्तीकृतस्तनाम।
सपत्नीवक्त्रहृच्छोषियश: श्रीकच्छपीरवाम् ।। (झ)
मध्यतात्मसखीस्कन्धलीलान्यस्तकराम्बुजाम्।
श्यामां श्यामस्मरामोदमधुलीपरिवेशिकाम् ।। (ञ)
त्वां नत्वा याचते धृत्वा तृणं दन्तैरयं जन:।
स्वदास्यामृतसेकेन जीवयामुं सुदु:खितम् ।। (ट)
न मुञ्चेच्छरणायातमपि दुष्टं दयामय:।
अतो गान्धर्विके ! हा हा ! मुंचैनं नैव तादृशम् ।। (ठ)

प्रेमाम्भोजमरन्दाख्यं स्तवराजमिमं जनः।
श्रीराधिकाकृपाहेतुं पठंस्तद्दास्यमाप्नुयात् ॥ (ङ)

इमं स्तवराजमप्युपदिशतु ततः "श्रीगुरोर्लब्धाभीष्टकामोऽस्मि" इति सगद्गदं वदन्तं सकम्पं तच्चरणकमलयोः पतितं मां सानन्दं समुत्थाप्य समालिंग्य स्वाधरोच्छिष्टपीयूषप्रसादं संभोज्य च स्वमुखोद्गीर्णताम्बूलं मन्मुखे वितरतु। ब्रह्मचारिणो मम ताम्बूल भक्षणमनुचितमिति चेत्तर्हि कर्पूर-वासितनिजमुखवासेन मन्मुखशुद्धिं वितनोतु। ततः कृतार्थेन मयैतदभीप्सितानि अन्यान्यपि बहूनि च मुक्ताफलानि दक्षिणात्वेन समर्प्यमाणानि कृपया स्वीकृत्य मामनुगृह्णातु ॥१९७॥

इतिनिशम्य सर्व्वासु सस्मितं तुंगविद्यामुखमवलोकयन्तीषु तयाप्युच्छलितान्तरानन्दमावृत्य भ्रूभंगेन सरोषमिव मामीषदवलोक्य भासितम्—नान्दीमुखि! त्वं सिद्धा तपस्विन्यसि; तस्मादेतद्विधिना त्वमेवैनं दीक्षय, तदास्य सिद्धातो मन्त्रग्रहणात् स्वाभीष्टकामलाभो झटिति सम्पत्स्यत" इति व्याहृत्य सक्रोधं गृहाय गच्छन्तीं करेण गृहीत्वा व्याघोट्य विशाखा विहस्य नान्दीमुखीं प्राह,—नान्दीमुखि! अस्य सम्प्रति प्राप्तव्यलीकस्य दीक्षादाने महानेव प्रत्यवायः स्यादित्याचार्य्येयं त्वां प्रति क्रुध्यति ॥१९८॥

नान्दीमुखी—मिथ्यावादिनि विशाखे! सकलसद्धर्म्मराजीवबन्धोर्गोकुलराजस्य सत्तनये कथमलीकपरिवादमारोपयसि? ॥१९९॥

विखाशा,—तुभ्यं शपे सत्यमेवैतत् दोषम् ॥२००॥

नान्दीमुखी,—कस्तावद्दोषः? ॥२०१॥

विशाखा,—उच्छिष्टभोजनम् ॥२०२॥

नान्दीमुखी,—कस्य? ॥२०३॥

विशाखा,—दास्याः ॥२०४॥

नान्दीमुखी विहस्य,—का तावत् सा दासी? ॥२०५॥

विशाखा,—शाकोटवनवासिनी काचिन्मायया गोपीव भूत्वा कंसभृत्यगोवर्द्धनमल्ल-गृहिणीमासाद्य तामुवाच,—चन्द्रावलि! त्वं भुवनेश्वर्य्याश्चण्डिकायाः प्रियपरिचारिकासि अहमपि तद्गणमध्ये एकास्मि ततः (अतः) स्नेहभरेण त्वत्सखीत्वमिच्छामि। तच्छ्रुत्वा समीचीनमेत दित्यालिङ्ग्य सा चन्द्रावली यां सख्येन परिजग्राह सेव ॥२०६॥

नान्दीमुखी,—सैब का? ॥२०७॥

विशाखा। अपूर्व्वा पद्मा सा सर्व्वत्र प्रसिद्धा भवत्यापि ज्ञायते ॥२०८॥

नान्दीमुखी,—किं तदुच्छिष्टम्? ॥२०९॥

विशाखा,—तन्मोचकाधरकूपीस्थितं परमपावनं मधु ॥२१०॥

एतन्निशम्य किञ्चित् स्मयमानां राधिकामवलोकयन्तस्तत्सभासदः सर्व्वे जना जहसुः॥ ततो नान्दीमुखी,—विशाखे! केनाप्येतद्दृष्टमस्ति? ॥२११॥

विशाखा,—अथ किम् ॥२१२॥

नान्दीमुखी,—केन? ॥२१३॥

विशाखा,—विविधगिरिधातुपरिच्छदानानेतुं प्रियसख्या गान्धर्व्वया प्रेषिताभ्यां मल्ली-

भृङ्गीभ्यां मानसगङ्गानिकटोषरतटे प्रकटमेवैतत्परमपावनं कर्म्म परश्व एव साक्षादवलोक्यागत्य सर्व्वासां पुरतो विविच्य कथितम् ।।२१४।।

नान्दीमुखी सचिन्तमिव सकलगोकुलजीवनी भूतस्यास्य कथं तदोषध्वंसो भवति ।।२१५।।

विशाखा,—प्रायश्चित्ताचरणेनैव ।।२१६।।

नान्दीमुखी,—ततो भगवतीस्तद्दोषविहितनिष्कृतिं सम्पाद्य पुरुषोत्तममेनं शुद्धं विधाय दीक्षयन्तु भवत्यः ।।२१७।।

तच्छ्रुत्वा चम्पकलता प्राह,—मुग्धे ! उज्ज्वलमणिसंहितायामेव विवृतोऽस्ति तन्निष्कृति-विधिर्भवत्याः प्रायेण गोचरो न भवतीति तयैव कथा प्रसङ्गे कथितमस्ति ।।२१८।।

नान्दीमुखी,—अत्र तत्संहितां कस्तावज्जानाति ।।२१९।।

चम्पकलता,—प्रियसखी गान्धर्व्वैव ।।२२०।।

नान्दीमुखी,—अधुना सा किलात्र सभा मध्ये न विद्यते तत् कथमिदं झटिति निर्वहतु ।।२२१।।

विशाखा,—तदद्वितीयेयं ततोऽधीतसन्दर्भतत्—संहितालिता निरन्तरं तदभ्यसन्ती सुष्ठु तज्जानन्ती तन्निरूपयिष्यति ।।२२२।।

नान्दीमुखी सकाकु,—सखि ललिते ! विचार्य्य यथोचितनिष्कृतिरादिश्यताम् ।।२२३।।

ललिता किञ्चिद्विहस्य,—प्रियसखि ! कृतव्यलीको जनो यदि सभामध्ये स्वयमागत्य निःशेषं स्वयमघं निष्कापट्येन निवेद्यानुतपति, तदैवास्य प्रायश्चित्तं कार्य्यते इति पुराणकृद्भिर्निर्णीतमस्ति ।। तथाहि-संकथ्य स्वमघं गोष्ठ्यां पश्चात्तपति य स्फुटम् तस्यैव निष्कृतिः साङ्गा मुनिभिः कार्य्यतेऽखिला इति ।। इत्याकर्ण्य नान्दीमुख्यां मन्मुखं साकूतमालोकयन्त्यां मयि च सुबल मधुमङ्गलाभ्यां सह ललिता-सविधमासाद्य किञ्चिद्विवक्षमाणे सति ।।२२४।।

विशाखा, प्राह —हे वीर कामातुराणां न घृणा न लज्जेति स्वभावतः कामिना त्वया यत् कृतं तत् कृतमेव अधुना त्वेतस्याः पुरो विविच्य तत् सर्व्वं कथय ।।२२५।।

ततोऽहं स्मितमपवार्य्य सानुतापमिव,—ललिते ! चतुर्थेऽहनि विघटितगवान्वेषणे गौरीतीर्थ-मेवाप्तस्य मम गौरीमन्दिरान्निसृत्य काचिद्गौरी सहचरी चर्च्चिका हठेन मदुरसि सव्यकुचेनाहत्य माधवी-चतुःशालिकान्तरालं मामानीय कम्पमानस्य मम मुखे ताम्बूलचर्व्वितं प्रदाय यत्किंचित् कृतवती तन्मोहितो अहं किमपि नावेदिषम् । परश्वोऽपि सुवर्णसूत्रेण विविधकुसुमैर्ग्रथितमालामादाय राधाकुण्डतटनिकुञ्ज-नागरीं गान्धर्व्वामनुस्मरतो मम माल्यहरणकुण्डतटनिकटमन्दारोद्यानपरिसरे सा चर्च्चिका पुनरध्यावि-र्भूयबलेनैव मम वामगण्डं परिचुम्व्य मुखे स्वाधरपीयूषमर्पितवती तदेतदघयुगलनिराशाय तन्मुखकम-लोच्छिष्टमधुपानरूपं प्रायश्चित्तमादिशतु भवती ।।२२६।।

मधुमङ्गलः विहस्याह,—वयस्य ! भद्रतरमिदं निष्कृतं यत्तदघस्यैव वृद्धिं वितनोति ।।२२७।।

ततोऽहं,—धिङ्मूर्ख ! किमपि न जानासि ? "विषस्य विषमौषधमिति ।। यथा,—वह्नि-सन्तापतो नश्येद्वह्निसन्तापजो व्रण" इति । एवं "दरयेत् कण्टक विद्धं कण्टकेनैव पण्डितः" । इत्यादि-वदुच्छिष्टभोजनदोषमुच्छिष्टभोजनमेव दरयति ।।२२८।।

मधुमङ्गलः,—एवम्बिधपापव्याधिचिकित्सायां त्वमेव सद्वैद्योऽसि तत् किं ललितामनु-वर्त्तसे ? ।।२२९।।

ततोऽहं—सखे ! "ज्ञातसारोऽपि खल्वेकः सन्दिग्धः स्यात् स्वकर्म्मणीति चिकित्सकस्यापि चिकित्सा अन्यैः क्रियत एव ।।२३०।।

इति निशम्य ललिता स्मयमाना प्राह,—हे देव ! देव्या सह देवस्यैव सङ्गः सम्पत्स्यते तत्कथमस्माकं मानुषीणां सा गोचरी भवतु ।।२३१।।

ततो मयोक्तं,—ललिते ! सा कुत्रापि मानुषी भवतीनामदूरे एव विराजमाना वर्त्तते ।।२३२।।

ततः सर्व्वासु सकौतुकं सशङ्कं कर्णाकर्णि केयमिति विचारयन्तीषु राधा स्वगतम्; एतस्य धूर्त्तस्य नर्म्मन्यास एतद्गोष्ठ्यामेव भविष्यतीति लक्ष्यते ।।२३३।।

विशाखा,– देव ! कथ्यतां कुत्र सा यथैनां संस्तुत्य सभामध्ये समानीय भवत्कार्यमचिरादस्माभिर्निष्पाद्यते ।।२३४।।

ततोऽहं,—विशाखे ! भवद्गोष्ठ्यामेव तड़िदिव विराजन्ती सा। किं दीर्घनेत्रयापि त्वया न दृश्यते ? ।।२३५।।

इति मद्गम्भीरालापमाकर्ण्य ललितायामन्यासु सर्व्वासु च आत्मन्यात्मनि तां नर्म्मभङ्गीमाशङ्क्य परस्परमालोकयन्तीषु विशाखयोक्तं,—लम्पट ! किं चम्पकलता ? ।।२३६।।

ततोऽहं,—न हि न हि ।।२३७।।

विशाखा,—किं ज्येष्ठा ? ।।२३८।।

अहं—न हि न हि ।।२३९।।

सुबलः,—रङ्गदेवीसुदेव्योरेकतरा भविष्यति ।।२४०।।

अहम्—अनयोरेकतरापि न ।।२४१।।

विशाखा,—आं ! निष्कृतिकारिणी ललितैव भविष्यति ।।२४२।।

ततोऽहं,—विशाखे ! इयमपि न ।।२४३।।

विशाखा,– इयमपि न एषापि न असावपि न तत् किं इतोऽन्तर्हिता ।।२४४।।

ततोऽहं,—धूर्त्ते ! त्वमेव तां जानासि स्मृत्वा पश्य ।।२४५।।

ललिता,—हा हा सखि विशाखे ! तां प्रकाश्य विकलस्यास्य कार्य्यसिद्धिं द्रुतमापादय ।।२४६।।

विशाखा स्मृतिमभिनीय,—ललिते ! या मया ज्ञायते सा देवीमानुष्योरेकतरापि न स्यात् ।।२४७

नान्दीमुखो,—गोष्टमध्ये देवीं मानुषीं वा विना का पुनरितरा ? ।।२४८।।

विशाखा,—सा खलु शङ्खिनी ।।२४९।।

ललिता—का तावत् सा ? ।।२५०।।

विशाखा स्मित्वाह,—सा दुर्म्मुखी पद्मा ययास्य व्यलीकं कृतमस्ति ।।२५१।।

तुङ्गविद्या,—सखि विशाखे ! सा शङ्खिनीति संकथ्य कथं कलुषमुत्पादयसि ? एषा खलु वहुतिथं कात्यायनीदेव्या वहुतरसेवाप्रसादतः साक्षात्कात्यायनीव वृतास्ति ।।२५२।।

तच्छ्रुत्वा मधुमङ्गलादिषु हसत्सु मयोक्तम्—विशाखे ! तल्लज्जया यदि त्वमन्यतः क्षिपसि तन्मयैव कथ्यते ।।२५३।।

विशाखा,—कथय कथय ।।२५४।।

ततो मयोक्तं,––सा चर्च्चिकादेवी त्वमेव ।।२५५।

ततः सा सर्व्वाः स्मयमानाः विलोक्य सकम्पाधरमाह,–अये चञ्चल ! वञ्चक ! गोपनिष्ठुर ! कंसासुरसेवकदुष्टकालिङ्गमल्ल गृहिणी-हारिद्ररागचर्च्चितसर्व्वाङ्ग ! वैदग्ध्यतुखण्ड ! चातुर्य्यसच्चन्द्र विरहित तद्घृतस्नेहलुब्ध (खण्ड) तत्केलिकोलिकाननचर ! अयुक्त पद्माशङ्खिनीपरिवृढ़ । अवैदग्ध्यरङ्ग-मिलितपञ्चवाणरसव्यापारिमहाधूर्त्त वणिग्वर ! एतद्धार्ष्टचजम्बुलगुड़हट्टं तत्रैव शाखोटवने गत्वा प्रसारय इतो द्रुतमपसर" इति श्रुत्वा राधा अनुच्चैः सश्लाघमाह,––प्रियसखि विशाखे ! विजयिनी भव यन्मन्-मानसगतसम्बोधनोक्त्या मां सुखयन्त्यसि ।।३५६।।

रङ्गदेवी,––सखि विशाखे ! त्वं कथं कुप्यसीत्युक्त्वा सखि ललिते ! शखोटवनीं माधवीचतुः-शालिकात्वेन, मानसगङ्गातटोषरप्रदेशं माल्यहरणसरस्तीरमन्दारोद्यानत्वेन, पद्माशङ्खिनोमुखोच्छिष्टञ्च प्रियसखीविशाखाधरामृतत्वेन, निरूप्य स्वमुखेनैव सानुतापं स्वदुरितमशेषमनेन विदग्धधूर्त्तेन स्वकदर्य्य-कार्य्यप्रकटनजनिष्यमाणलज्जया अर्थोत्थव्यङ्गेनैव त्वयि निवेदितं, तदुपदिशास्य प्रायश्चित्तम् ।। (इति श्रुत्वा) ।।२५७।।

ललिता विहस्य,––आर्य्य मधुमङ्गल सखे सुबल ! सन्निधाय श्रूयतां प्रायश्चित्तम् ।।२५८।।

चित्रा ––सखि ललिते !

"सम्पत्तौ विद्यमानायां प्रायश्चित्तं चतुर्गुणम् ।।२५९।।
ततोऽपि राजपुत्राणां निष्कृतिः षड्गुणा मता" ।। इति
स्मृतिवाक्यं स्मृत्वैव प्रायश्चित्तमादिश्यताम् ।।

ललिता,––मुग्धे ! "ततोऽपि राजपुत्राणां निष्कृतिः स्याद्द्विषड्गुणा" इति पाठः संहिता-सम्मतो मया ज्ञायते, षड्गुणेति कथं भण्यते ।।२६०।।

चित्रा,––एतच्छास्त्रविज्ञया त्वया यज्ज्ञायते तदेव सत्यम्, किन्तु गोवर्द्धनोद्धरण-दावाग्नि-विमोचन-शङ्खचूड़ादि-मर्द्दनादिभिः कतिधानेनन युवराजेन वयं न रक्षिताः स्म ? तस्मादिदानीन्तनतत्-कृतवहुतरवैगुण्यमविगणय्य कृपया षड्गुणेनैव निरूप्यताम् ।।२६१।।

ललिता,––भद्रं त्वत्कथितमेवेदमनुष्ठीयते । आदौ पापमोचने स्नात्वा तथा मानसगंगायां त्रिदिनानि स्नातः सन्नेकविंशतिदिनानि मल्लीभृङ्गचोरधरपञ्चामृतपानेन प्रथमं मुखदोषमुत्सारयतु, पश्चाद्द्विषड्गुणा निष्कृतिः करणीया ।।२६२।।

इति श्रवणेन कपटकोपविकटो मधुमङ्गलः प्राह,––ललितिके ! सद्धर्म्मसेतुव्रजेन्द्रय्येरेतन्मात्र-पुत्रस्य तथास्मद्विधवयस्यवर्गाणां सकलगोकुलवासिनामप्येकजीवातोरस्य चेटिकापुलिन्दीजुष्टभक्षणेन जातिध्वंसः कर्त्तुमारब्धो भवतीभिस्तदहमतिद्रुतं गत्वा वृत्तमेतत् सविशेषमाश्राव्य एतत्पितरावत्रानीय एतत् सङ्कटादमुं मोचयन् सौहृदं वितनोमीति निगद्य फुत्कृत्य द्रुतं गच्छन्तं मधुमङ्गलं सुबलः करे गृहीत्वा बलादिव निवर्त्तयमास ।।२६७।

ललिता,––अनार्य्य वटो ! अस्मत्प्रियसखीप्रणयिसख्योरनयोः माहात्म्यविज्ञाने त्वमनभिज्ञोऽसि; तद्भवन्नान्दीमुखीमुखादेतच्छ्रूयताम् ।।२६४।।

नान्दीमुखी,––भ्रातर्मधुमङ्गल !––

"गोवर्द्धनगिरौ रम्ये राधाकुण्डं प्रियं हरेः ।

यथा राधा प्रिया विष्णोस्तस्याः कुण्डं प्रियं तथा"
तथा—वैकुण्ठाज्जनितो वरा मधुपुरी तत्रापि रासोत्सवात्,
वृन्दारण्यमुदारपाणिरमणात्तत्रापि गोवर्द्धनः।
राधाकुण्डमिहापि गोकुलपतेः प्रेमामृताप्लावनात्,
कुर्य्यादस्य विराजतो गिरितटे सेवां विवेकी न कः ॥

इत्याद्यनुसारेण श्रीभगवती—गुरुश्रीदेवर्षि—भृतिमहामहामुनीन्द्रगणैर्वर्णितमहामहिम्नः श्रीगोवर्द्धनोपरि-विराजमानस्य राधाकुण्डस्य दक्षिणतटे गिरिदरीवासिन्योः "पूर्णाः पुलिन्द्य उरुगाये"-त्यादि श्रीशुकदेव-वर्णितमहासौभाग्यभरयोः पुलिन्दराजसुतयोरनयोरधरगलितपरमपावनपञ्चामृतमेतत् दुरितनाशक किं न स्यात् ? अन्यच्च श्रूयताम्—व्रजनवीनयुवद्वन्द्वरत्नं प्रति विशाखादिद्वारा क्वचित् स्वयं वा लज्जामभिनीय मृदुभासितविविच्यमाननर्म्मकलाकलाप जनितपरमानन्दविशेषलाभाय तथा स्वाभिलषितपरिचरणविशेष-लाभाय च रङ्गणमालाप्रभृतय एताः परमप्रणयिसख्योऽपि परिचारिका इव व्यवहरन्ति ॥२६५॥

एतदवसर एव नेत्रकुणनेन गोष्ठीमध्यात् तुलसीमाहूय बन्धूरातिबन्धूर सुगन्धिगन्धफली सहक्ष-दक्षिणकर-कनिष्ठाङ्गुलिशिखराकृष्टस्वसीमन्तसिन्दूर-रस प्रकटिततत्सौरभ—प्रसररूपसुरूपलिपि प्रचये-नातिसुवासितीकृतकनककेतकीकुसुमदलभूतवर्णदूत एकः। श्रीगान्धर्व्वया तत्करेण ललितादिषु संचारितः। ततस्तं ललिता शिरसि निधाय सखीभिः सहरहः परिपठ्य नान्दीमुखीकरे सम्मितमर्पितवती ॥ नान्दीमुखी त्वानन्दमभिनीय वक्षसि निधाय वाचयति। स्वस्ति श्रीनान्दीमुखी-श्रीललिता-श्रीविशाखाप्रभृतिप्राण-प्रेष्ठसखी-वर्गेषु परिष्वङ्गपरार्द्धरङ्गपूर्व्विका कस्याश्चिद्विज्ञप्तिरियम्,—श्रीदाम-सुबल-भद्रसेनादिप्रमुख-प्रियवयस्यगणैः सह गोवर्द्धनपरिसरे सम्भृतगोचारणपरमामोदस्य-व्रजराज, निजजीवितपरार्द्धशताधिक-परमप्रियतमतनयस्य, व्रजेन्द्रमहिषी स्वप्राण (स्वदेह) परार्द्धपरिपक्वहिरण्मयेष्टकाघटा घटितमहामन्दि-रान्तरालविनिर्म्मितप्राणपरार्द्धविविधरत्नखचितमहापर्य्यङ्कक्लृप्तावात्सल्यनानाविधकुसुमसुवासितसुकुमार सुतूलिकोपरि समधिगतशयनकेलि परमानन्दस्य, मत्-प्राणपरार्द्धार्व्वुदपरार्द्धशतनिर्म्मञ्छ्यमानवाम-चरणैकनिष्ठाङ्गुलिनखाञ्चल-प्रतीकस्य नवमृगमदपरिमलितनगनीतनीलोत्पलदलकुलरचित-सुन्दरसुकुमार विग्रहस्य धीरललितस्यास्य एतावत्कठोरप्रायश्चित्तश्रवणेन मम हृदयं नवनीतमिवविद्रववदास्ते ॥ ततः कृतानुताप-लक्षाणां सुकुमारशरीरिणां स्निग्धानां निष्कृतिः सम्यक्तन्त्रेणैव विधीयते इत्युज्ज्वलसंहिता-वचनमननुस्मृत्यैव ललितया यत्पञ्चामृतपानरूपं प्रायश्चित्तं केवलमुखशोधनाय पृथग् विहितमस्ति; तदेव मुखशोधनाय विविधदूरितनाशाय च तन्त्रेण विधायास्मिन् निर्द्दोषे विहिते मम महत्येव निर्वृतिर्जायते इत्यलमतिविस्तरेण ॥ इहैव प्राणप्रतिम प्रणयिसख्यौ मल्लीभृङ्गचौ प्रति सप्रणयपरिष्वङ्गसञ्चारः कार्य्यञ्च ॥ राजपुत्रोऽय परमपवित्रो महाविलासी च, तन्निजचरणकमलघातेन कङ्केल्लिलतिकां पुष्पिती-कृत्य तन्मकरन्दप्रस्यन्दगण्डुषैश्चतुर्विंशत्या स्वमुखं विशेषेण प्रक्षाल्य स्मितकर्पूरवासितमधरपञ्चामृतं विधाय प्रेम्ना शनैः शनैस्तथा पाययितव्यं यथास्य सुकुमारस्य दूरितं द्रुतमपयाति परमसुखमपि निष्पाद्यत इति ॥२६६॥

इति निशम्य सान्तरानन्दं राधानिकुञ्जमवलोकयतिमयि स्मित्वा ललिता प्राह,—यद्यपि कृतानुतापलक्षाणामित्यादि—सामान्यवचनान्तरं "सम्पत्तौ विद्यमानायां प्रायश्चित्तं चतुर्गुणम्। तत्रापि राजपुत्राणां निष्कृतिः स्याद्द्विषड्गुणे"तिविशेषवचनेन सामान्यविशेषयोर्विशेषविधिर्बलवानिति न्याये-

नास्य द्विषड्‌गुणमेव प्रायश्चित्तं युक्तमेव पृथक् पृथक् निरूपितमस्ति तथाप्याज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीयेति तदाज्ञां शिरसि निधाय तन्त्रेणैव कारयितव्यमिति ।।२६७।।

ततः "शिष्ये विद्यागरीयसी"ति मयोक्ते ललिता साकूतमाह,—नान्दीमुखी ! सौन्दर्य्यरस-भरेणाप्यायितनिखिल-गोकुलजननयनारबिन्दां पररासस्थली विहारिणीं परमरसतरङ्गिणीं रङ्गिणी-सहचरीं हरिणीमेतां परिहाय वाढ़मयमविदग्धकृष्णसारयुवा सखी स्थल्युपशल्ये तद्वास्तव्यशैव्यासहचरी-मृगतृष्णिकां मुहुर्मुहुर्धावति, तथा गान्धर्व्वा-सरोवरनिकुञ्जाङ्गने सौरभप्रसरपरिवासितसकलदिशां-विदिशां चम्पकलतासखीं काञ्चनयूथिकामपहाय गोवर्द्धनमल्लगृहकोणस्थां निर्गन्धपुष्पवतीं कुष्माण्डलतां तन्निकटस्थनीरसोषरस्थलपद्माञ्च तत्सहचरीं चंचलोऽयमविदग्धभ्रमरः पुनः पुनरुड्डीयोड्डीयानुसरति तदेतदालम्बनावैदग्ध्यरूपवैरूप्येण वृन्दावनमहेश्वरी-सहचरीमधुरा रतिर्वहिरप्रसन्ना सती एतच्छयामलरसं न पुष्णाति । तस्मात्तथैनमनभिज्ञं युक्तिमाधुरीभिः प्रबोधय; यथा तामविदग्ध्यां रसगन्धशून्यां सर्व्वदैव विहायैनां वृन्दावनमहादेवीं सर्व्वतोभावेनानुसरति, तर्हि तत्प्रियसखीमधुरारतिः स्वयमेव परमोज्ज्वला भवन्ती एतदभीष्टकामान् सम्पादयिष्यत्येव ।।२६८।।

इत्यखिलविलासरसमाधुरीमापीय सत्यभामा व्याजहार प्राणनाथ ! एतदपूर्व्वरससागरे निमज्जन्त्या मम मनागपि तृप्तेः पर्य्याप्तिर्नविद्यते ।।२६९।।

कृष्णः—प्रिये ! एतद्गोकुलविलासानन्दनिष्कुटे विहरमाणस्य मम त्वत्प्रश्न एव मत्प्रियवयस्य-समयराजवसन्तोल्लास इति तामालिङ्गति ।।२७०।।

सत्यभामा सानन्दं—ततस्ततः ? ।।२७१।।

कृष्णः—ततः सुबलः सस्मितमाह,—प्रियवयस्य ! प्रियसखीयमिन्दुलेखा दुर्दुरूढ़ात् स्वभर्त्तु-र्भर्स्वराख्यादुद्विग्ना मामिङ्गितेन प्रेरयति; तदस्याः मौक्तिकमूल्यं निर्णीय तद्दत्त्वा झटिति गृहकृत्याय गन्तुमाज्ञाप्यताम् ।।२७२।।

ततोऽहं सखे ! सत्यं; सत्यं मय्यतीवानुरक्तेयं मामपि त्यक्तु न शक्नोति, ततोऽपि सुष्ठु विभेतीत्यहमपि जानामि; तदेतन्मौक्तिकमूल्यं शृणु—यथार्थनाम्नीयं मद्विरहमसहमाना कायद्वयं कृत्वा श्यामलतरमद्वक्षोनभसि शाणितनखाग्रेण रचितामेकां स्वमूर्त्तिं संरक्षतु । अहमप्यसह्यं तद्विरहस्तावदस्याः वक्षोजपर्व्वतोपरि स्वविद्यावलेनार्द्धचन्द्रयुगलीभवन्नुदयं करोमि ; तदैषा लब्धमहारत्नमिव सर्व्वतो मां चेलाञ्चलेनावृणोतु, रहसि च क्षणे क्षणे सरोमाञ्चमवलोकयन्ती परमानन्दमासादयतु ।। अथवा मृग-लाञ्छनरहिताया एतस्या हृन्मध्ये मञ्जुलकृष्णसारोऽहं भवामीति ।।२७३।।

ततः सकम्पाधरं कुटिलं मामवलोकयन्तीमिन्दुलेखामालोक्य स्मयमाना तुङ्गविद्या प्राह,—नागर ! रङ्गदेवीयं यथार्थनाम्नी तदस्या मौक्तिकपणः प्रणीयताम् ।।२७४।।

ततोऽहं—सखि रङ्गदेवि ! रासमध्ये तव लास्य–विलासोल्लासः सन्ततमालोकितोऽस्ति; तदधुना निकुञ्जमन्दिराङ्गने रहसि तद्विशेषमनुभवितुमभिलषामि, तदेहि स्ववक्षोजकनककुम्भौ मदुरसि तथा नर्त्तय यथाहमानन्दितः सकलवल्लवीसमुदयसर्व्वस्वभूतमत्स्वाधरपीयूषमहाप्रसाददानेन त्वामानन्दयामीति ।।२७५

तज्ज्ञ्रुत्वा "अपैहि भण्डशेखर ! अपैही"त्युक्त्वा कुटिलं मामवलोक्य विशाखा-पृष्ठान्तरितायां रङ्गदेव्यां सुदेवी सस्मितमाह,—रसिकशेखर ! वल्लवीकुलभुक्तमुक्तसुजुष्टमहाप्रसादास्वादनेनेयं त्वरितमेव सिद्धिमासादयन्तीं स्फुटमस्मानपि सिद्धार्थाः कृतवत्येव ।।२७६।।

सुबल:—वयस्य ! सुदेवी स्वमौक्तिकमूल्यं श्रोतुकामा श्रीमद्भवन्मुखमीक्षमाणेयमुत्कण्ठते ।।२७७

ततोऽहं—सखे ! सुबल ! सुदेवीयमक्षकेलिदक्षेति प्रसिद्धा तच्छपथमेव ददद‌स्मि केनापि कस्यापि पक्षो न ग्राह्य:, आवामेव स्वबुद्धिबलेन, खेलिष्याव, तत्र यद्यहमनया सुष्ठु जीयेयं तर्हि वामेन वक्षोजेन मद्वक्षसि मामापीड्य मम सर्व्वस्वभूतमधरं द्विः पिबतु ; यदि वा मयेयं जीयते, तदा स्वदक्षिणकठिनवक्षोजं मद्दक्षिणकरेण निकामं पीड़यित्वा द्विः स्वाधरामृतमापाययत्विति ।।२७८।।

तत: सा भ्रूभङ्गेन मामवलोकयन्ती सासूयं विशाखामाह,—अयि विशाखे ! सर्व्वकालमेव नर्म्मस्वर्णविक्रय्यसौ महाजनः; साम्प्रतमेव मुक्तामणिव्यापारमारभ्य ततो वृद्धिमलभमानः पुनः स्ववृत्तिमेवारब्धवानस्ति । ततः परार्द्ध द्विगुणपञ्चबाणललितां काञ्चनमुद्राततिमितः प्रकाममूल्येन प्रगृह्य तयैव मुक्ताफलान्यस्मादानयन्तु भवत्यः । मया तु गृहाय गम्यते । इति चलितुमुद्यताञ्चले गृहीत्वानङ्गमञ्जर्य्या निवर्त्तिता सक्रोधमिव साकूतं पुनराह,—केलि लम्पट ! निकाममक्षकेलिनिपुणेयमनङ्गमञ्जरी त्वया सह दीव्यन्ती ते गर्व्वपर्व्वतं खर्व्वयिष्यति ।।२७९।।

ततस्तद्वचनमाधुर्य्यमवधार्य्य मयोक्तं,—अस्यास्त्वबलायास्तत्केलिषु का शक्तिः । किन्तु मद्वक्षोहरिद्ग्राव हरितालीयरेखिकायाः राधिकायाः प्राणसहोदरेयं मय्यतीव स्निह्यति मम च मानसमधुकरः परमस्यामनवरतमनुरज्यति । अतः समुचितपणमन्तरापि सुताराणि सुवृत्तानि बहूनि मौक्तिकान्यप्यस्यै वितरिष्यामि । परञ्च निर्ज्जननिकुञ्जवेदिकायां स्मरपञ्जराक्षराण्यस्याः पञ्चाशदङ्गप्रत्यङ्गेषु स्वहस्तेन विन्यस्य स्वाङ्गं स्वाङ्गेनालिंग्य मन्त्रेणैनां व्यापय्य तथा सिद्धमन्त्रमेकयुपदिशामि यथा तद्ग्रहणमात्रादनंगं सांगं विरचय्य सन्तुष्टेन तेन प्रसादीकृत स्वसर्व्वस्वस्वरूपविलासरत्नानि मन्त्रगुरौ मयि दक्षिणात्वेन सविनयमुपढौकयति ततः सुप्रसन्नेन मया तादृगाशीः शतमाधास्यते येन "विषमशरविलासाचार्य्ये"ति पदवीमासाद्य द्विगुणं मामेव भक्त्या परिचरति ।। इति मद्भाषितकुसुमस्तवकं श्रवणावतंसीकृत्य सकम्पाधरं मामीषदवलोकयन्ती स्मितसुभगवदनाभिराभिः स्नेहेनोत्फुल्लतया तदग्रजया च सस्मितं सस्नेहञ्च निरीक्ष्यमाणा तुलसीरंगणमालिकयोरूपपृष्टमन्तर्हितासीत् ।।२८०।।

सत्यभामा स्मित्वा—प्राणनाथ ! ततस्ततः ? ।।२८१।।

कृष्णः—तदानीमेव मल्लीभृंगीभ्यामानीय दत्तं लेखद्वयं सर्व्वाभिः सममेव वाचयित्वा परमोत्फुल्ला ललिता तयोरेकं लेखं सुबल-हस्ते समर्पितवती ।।२८२।।

ततोऽहं—ललिते ! कस्यायं लेखः ? ।।२८३।।

ललिता स्मित्वा—लेख एव कथयिष्यति ।।२८४।।

ततः तत्र सुबले लेखमुद्घाट्य लघु लघु वाचयति सति ।।२८५।।

नान्दीमुखी—सुबल ! स्फुटमेव वाचय ।।२८६।।

सुबलः स्मित्वा—सखे ! अपूर्व्वपत्रीयमवधार्य्यताम् ।।२८७।।

अहम्—सखे ! वाचय ममापि महती शुश्रूषा वर्त्तते ।।२८८।।

सुबल:—स्वस्तिसमस्तसम्मुख सर्व्वोपमायोग्यबन्धप्रबन्धसद्गुणप्रकरपरिवृतेषु श्रीसुबलाभिधान प्रियनर्म्मसखमहानुभावेषु, यावटाभिधग्रामतो राधायाः प्रणयभरपीयूषपरिपूरिताक्षरप्रकरसुमिष्टपिष्टकपरिवेषणहिरण्मयभाजनरूपोऽयं स्वस्तिमुखः,—भवत्-प्राणबन्धुपद्मानां भवादृशाञ्च मङ्गलकुलमनवरतविराजमानमपि व्रजमण्डले शश्वन्नितरां विराजताम् ।। कार्य्यमिदमन्यदपि अवधेहि प्रियजनसकाशात्

करग्रहणमनुचितमिति बहुतरमपि करद्रव्यमपहायैव एतावद्दिनं किमपि नोक्तमासीत्; सम्प्रति मौक्तिकव्ययेन क्षुभ्यद्गुरुजन-दीयमानमहानुयोगनिचयेन क्षणमपि निर्वृ तिलवमलभमानया यत्किञ्चिन्मया विज्ञाप्य-मानमस्ति तदगुणमविगणय्य मद्वृन्दावनजनपदे यमुनोपकण्ठकेदारिकायां भवत्प्राणबन्धुना सम्प्रति क्षेत्रा-जीवतामाश्रयता कृतमौक्तिककृषेर्ललितया सह लेख प्रतिलेखमाचर्य्य समुचितकरद्रव्यमिह त्वरितमेव प्रहित्य दीयतां; यथा द्रव्येणैव मथुरातो मौक्तिकान्यानाय्य गुरुभ्यः प्रदाय कदनसागरादस्मादुत्तरामः ।। अथवा बहुमूल्यमौक्तिकोत्पत्तिभूमेः करस्याप्यतिबाहुल्यादेतद्द्रव्यप्रदाने यदि भवादृशामशक्तिःस्यात्तर्हि पञ्चभिर्म्मिलित्वा समुचितमूल्यं निर्णीय एतद्द्रव्यपरिवर्त्त नेन मौक्तिकानि ललिता-हस्ते देयानीति किं बहुना परमाभिज्ञवरेष्विति एतन्निशम्य परमानन्दपूर्णेनापि मया साकूतमुक्तं,- अयि मल्लि ! भृङ्गि ! भवदीश्वरी सुखं वर्त्तते ? ।।२८९।।

मल्ली-भृङ्ग्यौ,—श्रीमन्नाथचरण-शुभानुध्यानेन । ततस्तन्निकुञ्जदिशं तिर्य्यगवलोकयन्नहं-कुत्र वर्त्त ते सा ? ते यावटाभिधग्रामे ।।२९०।।

अहम्,– किं कुर्व्वती तिष्ठति ? ।।२९१।।

ते ललितादेवी प्रभृतीनां वर्त्मदिशमवलोकयन्ती वृन्दावनराज्य-सार्व्वभौमकाममुत्कण्ठितेव विराजमाना वर्त्त ते ।।२९२।।

ततोऽहं– सखे ! सुबल ! मन्ये कुटिलया ललितयैव कस्यचिद्द्वारा लेखयित्वा लेखोऽयं वितीर्णोऽस्ति ।।२९३।।

सुबलः—न हि न हि; राधाया एव स्वहस्तलिखितवर्णानां विन्यासोऽयम् ।।२९४।।

ततोऽहं—सखे ! तत्तावदिदं दर्शयेति तद्धस्तादाकृष्य लेखमालोक्य सचमत्कारमात्मगतम्, अहो ! अक्षराणां पङ्क्तिविस्तृतिरियं मन्नेत्रयोः पीयूषवर्त्तिकेव प्रतिभातीत्यानन्दजनितपुलकान् विस्मय-सञ्चारिभावेनैव कृतानिति भङ्ग्या विख्याप्य प्रकाशं विहस्य—आश्चर्य्यमाश्चर्य्यम् आकाशकुसुममिव धूर्त्ताभिरेताभिः किमप्यन्यदकस्मादेव समुत्थापितम् ।।२९५।।

मधुमङ्गलः, वयस्य ! विकटकुटिनाटिकपटनाटिकाताण्डवोद्भटनटार्य्यमहानटीमिमां तदद्वितीयां दुर्ललितां ललितां वाग्विलासाभासमात्रेणैव पराजित्य अवतिष्ठ, ते ध्रियते यावदेकोऽपि रिपुस्तावत् कुतः सुखमित्यादिसंस्मृत्य सर्व्वासामस्मद्वृन्दावनराज्यकाङ्क्षिणीनां धूर्त्तानां ततिमिमामितो वृन्दावनात् झटिति विद्रावय । ततो निष्कण्टकराज्ये मधुराणि रसवन्ति फलान्युपभुज्य सुखेनैवाहं नृत्यन्निव वसामि ।।२९६।।

ततो मयोक्तम्,—ललिते ! इयमस्मद्वृन्दाटवी, भवत्सख्या राज्यं कुतो जातम् ? ।।२९७।।

ललिता,—परमकपटिन् ! तद्राज्यमहाभिषेकमहोत्सवं समक्षमाकलय्यापि किमेवं गोपायसि ?२९८

ततोऽहं—ललिते ! समक्षदर्शनं तावद्दूरेऽस्तु तच्छ्रवणमपि जातमस्तीति नाहं स्मरामि ।।२९९।।

विशाखा—ललिते ! अस्य तावद्दूषणं नास्ति; बल्लवसाध्वीशतधर्म्मोल्लङ्घनजनिततमः प्रचये-नान्तर्हितमस्त्यस्य चेतस्तत्संसर्गीच तादृश इति एतद्द्वयस्यद्वयोरनयोरपि । तत्कथमेते स्मरन्तु नाम । तस्मात्तत्कथनपीयूषप्रस्यन्देन कर्णविवरेषु प्रवेशितेन वाढ़ममीषां चेतांसि कारुण्येनाविर्भावय यथैषां स्मृतिः सम्पद्यते ।।३००।।

ततस्तदानीमेवागतां सर्व्वाभिरेवानन्दितां वृन्दामालिङ्ग्य ललिता सस्मितमाह,—वृन्दे ! भद्रावसरे त्वं प्राप्तासि, तत्त्वयैव निर्व्व र्यतां महोत्सवरङ्गः ।।३०१।।

वृन्दा सविनयानन्दं,—सखि ललिते ! त्वन्मुखपद्माद्विनिष्यन्दमानतन्महोत्सवरसमकरन्दमहमप्या-पातुमागतास्मि तत्त्वयैव परिवेष्यताम् ॥३०२॥

ललिता सानन्दं—भद्रं सर्व्वैरवधाय श्रूयताम्,—ऋतुपतिवसन्तसमये पौर्णमास्यां विशाखानक्षत्रे भगवतो हिरण्यगर्भस्यगगनवाण्या वृन्दावनवासिनो भगवतः श्रीगोपीश्वरस्य स्वप्नकृतनिदेशेन च मानस-सुरधुनीकालिन्द्यादिसरिद्वराभिः सावित्रीसंज्ञकानंशाप्रभृतिदेवीभिश्च समं मुरली-महती झर्झरीमृरजदुन्दुभि-प्रभृतिवाद्यशब्दकोलाहलेनाकृष्टेषु किन्नरीगन्धर्व्वीकुलेषु सानन्दं गायत्सु, अप्सरोविद्याधरीवर्गेषु नृत्यत्सु, शच्यादि-सुराङ्गनानिचयेषु जयजयशब्दपूर्व्वकं पारिजातादिकुसुमवृष्टिं कुर्व्वत्सु, विशाखादिसहचरी-समुदयेसु परिमिलितपटवाससुरागबन्धन नवघनसारक्षोद-मञ्जुलमृगमद-सुललितकुङ्कुम पटीरद्रव विविध-सुरभिकुसुमकुलानि सुललितगानपुरःसरमितस्ततो विकिरत्सु, भूसुररमणीवृन्देषु शुभाशीः शतानि वितरत्सु च सखीवृन्दसमर्प्यमाणशोभनकुङ्कुमागुरुकर्पूरचन्दनविविधसुरभिकुसुमादिसुवासितजलपरिपूरितकांचन्-अष्टोत्तरशतघटैः सुवर्णवेदिकानिहितपद्मरागमणिपीठोपरि सन्निविष्टां प्रियसखीं गान्धर्व्वां भगवती पौर्ण-मासी सानन्दमभिषिच्य विविध सुलक्षणमहारत्नसञ्चयोदकसहस्रधाराभिर्जयजयशब्दपूर्व्वकं रत्नाभिषेकं चकार ॥३०३॥

वृन्दा सहर्षम्,—ततस्ततः ? ॥३०४॥

ललिता,—ततो मयैव सुचीनवसनेन शनैः शनैरङ्गान्यामृज्य सुरक्तदुकूलं परिधाप्य केतकीकुसुम-सुवासितजलदनीलोत्तरीयवसनेनावगुण्ठ्य सुखमन्यतरकनकपीठे निवेश्य नानाविधकुसुमनवगुञ्जापुञ्ज-सुमधुरमुक्तादिमणिनिकरैर्निन्दितशिखिपिच्छकलाप कान्तिसुकेशपाशं सुदीर्घप्रान्तोच्छलत्कुसुमगुच्छं वेणीत्वनाविर्भाव्य, स्वस्वसेवाकर्म्मकर्म्मठ परिजनगणदीयमानविविधालेपभूषणमाल्यादिभिर्यथास्थानं यथा-शोभं निकाममलङ्कृते"त्यर्द्धोक्ते तत्स्मरणानन्दजनितकम्पपुलकस्वरभङ्गपरिमिलितदिव्यमोहमासादयन्ती सा ललिता विशाखया ससम्भ्रमं पृष्ठे समालम्ब्य कर्णे "राधे कृष्ण राधे कृष्णे"ति कीर्त्तनामृतेन सन्धुक्षिता क्षणं मौनेन धैर्य्यमालम्ब्य पुनः कथयितुमारेभे ॥ तदानीमेव मूर्च्छितां ललितामालक्ष्य हा ! मत्प्राण-प्रदीपराजिनिराजितचरिते प्रियसखि ललिते ! हतभाग्याहं त्वया निराशा कृतास्मि । हा भगवन् ! भक्त-वत्सल ! भास्करदेव ! रक्ष रक्ष; हा ! सन्ततमापुलिन्दसकलगोकुलजनावनार्थकलितनिर्व्विकल्प महा-सङ्कल्पगोकुलसुधानिधे ! झटिति निजसुधामयकराभिमर्षणेन मद्विधजीवित-कोकिलकुल-जीवातुललिता-नामाद्भुतपीयूषरसालवल्लीं जीवितामाचर्य्य किलैतत्पणेनैव संक्रीय दासी क्रियतामियं तपस्विनी राधिकेति" विलप्य साश्रुधारं वेगेन तामालिङ्गितुमागच्छन्ती राधिका रसमयसात्त्विकमहास्तम्भसन्तति-सहचर्य्या सुष्ठु परिष्वज्य रक्षितासीत् । इत्यवकलनात् त्रासेन सान्तः कम्पं रङ्गणवल्लीतुलसीभ्यां तत् सविधमुपलब्धं ततो रङ्गणवल्ल्या वामभुजया तत्पृष्ठमवष्टभ्य दक्षिणकरेण मृदु मृदु मृज्यमाना-हा नाथ ! रक्ष रक्ष" इति साश्रुप्रवाहं सगद्गदभासितेन तुलस्या तु नवमृदुलतमालपल्लवकुलव्यजनेनातिजवेन वीज्य-माना वाह्यमुपालभ्य सुस्थामिव ललितामालोकयन्ती सानन्दा बभूव ॥३०५॥

ललिता,—हुं ? तां तदा तदानन्दोच्छलितसात्त्विकभावालङ्कारभूषितसभ्यगणैः सह भगवती विचित्ररत्नसिंहासनोपरि समुपवेश्य एकानंशा-सोदरकामाख्याश्यामलदेवता हृद्यस्थासकादाहृत दत्तमृग-मदेन वृन्दावनराज्यमहाराज्ञीत्वेन शङ्खघण्टादुन्दुभिकोलाहलशब्दपूर्व्वकं जयजयशब्देन तिलकं चकार ॥ तत एतच्छ्रवणेन सर्व्वासामानन्दहासकोलाहले जाते तच्छ्रवणानन्दसमुत्थितसात्त्विकाद्यनुभावान् यत्नेनावृत्य

किञ्चिद्विहस्य मयोक्तम्,—ललिते ! एतत् कथं मया न ज्ञायते एतेन किं वो राज्यमायातं ? प्रत्युत एतदुट्टङ्कनात् स्वमुखेनैव भवतीभिर्युष्मत्सहितमिदं राज्यं ममैवेति निर्णीतम् ।।३०६।।

नान्दीमुखी,—कथमिव ? ।।३०७।।

ततोऽहम्,—यतो वृन्दावनपुरन्दरस्य ममैव राज्ञीत्वेन मदिङ्गितेनैव भगवत्याभिषिक्तेयम् ।।३०८।।

विशाखा विहस्य,—असङ्गतभासिन् ! पुरन्दरस्य महिषी देव्येव भवति, सा खलु शचीतिप्रसिद्धा स्वर्गे वसति, इयन्तु मम सखी भूमिविहारिणी सुभगाभिमन्योर्जाया मानुषी ।।३०९।।

मयोक्तम्,—तर्काचार्य्यशिरोमणिस्मन्ये विशाखे ! त्वं सुष्ठु जड़ासि, यद्वारं वारमधीतमपि प्रत्यक्षखण्डनं त्वया विस्मृतमेव ।।३१०।।

विशाखा—किं तद्विस्मृतम् ? ।।३११।।

मयोक्तं—श्रूयतां,—यदि भवत्सहचरी मत्प्रेयसी न स्यात्तर्हि मद्वक्षःस्थासकाहृतमृगमदेन कथं भगवती तां तिलकिनीं चकार ? कथं वा मत्कण्ठमालाहारवैजयन्तीभ्यां तत्कण्ठमलं चकारेति ? ।।३१२।।

ललिता—भोः शशशृङ्गधनुर्द्धरालीकपुरन्दर ! प्रवर–सुभगलेखावलिकलितपदारविन्दायाः, गन्धर्व्वविद्याधरगणगीय-मानमहावैभवायाः, आत्मभुवापि संस्तूयमानचरितायाः, विविधकामसम्पत्ति-दायिन्याः, नन्द्यादीश्वर गृहिण्याः कामारिपुर वासिन्याः, विन्ध्यवास्तव्यैकानंशाग्रजायाः, कामाख्यानाम-श्यामलदेवतायाः, महाप्रसादमृगमदमालाभिरेव सा किल भगवत्या विभूषिता; तव कस्तत्र सम्बन्धः ? ।।३१३

तुङ्गविद्या,—सखि ललिते ! साधु सम्बोधितं यदयमलीकपुरन्दर एव ।।३१४।।

विशाखा कथमिव ? ।।३१५।।

तुङ्गविद्या,—श्रूयताम् अस्मिन्माथुरप्रदेशे याचकद्विजकलाविद्भिरेव पञ्चविंशतिकपर्द्दिका मात्रलब्धये देव ! महाराजेत्यलीकसम्बोधनैः क्षुद्रतरैकग्रामाध्यक्षोऽपि यथा प्रफुल्लितो भवति तथैव शक्का-शनाशनदुर्गतभण्डभट्टादिवर्गैः पलैकपरिमितनवनीतमात्रमाप्तुं वृन्दावनपुरन्दरेति कृतासम्भवालीकसम्बोधन पूर्व्वकस्तवाभासेनैव निसर्गागम्भीर एष कृषीवलोवाढ़मात्मनः पुरन्दरतामननेननिजजाल्मतोऽमरावती-पुरन्दरत्वमेव प्रकटीचकार। ततस्तुङ्गविद्या नर्म्मस्मितमपवार्य्य भोः ! पावनसरोवरजम्बालजातजम्बु-नदजात-सुतारमुक्ताफलादिविविधरत्नव्रातविरचितमहार्सिहासनोपरि सुष्ठु निविष्टस्य सौरभभरोन्मादी-कृतारुणभ्रमरकुलोच्छलितझङ्काररवनिकरेणानुगम्यमाननिर्म्मलगगनसुमनः प्रपञ्चाविर्भावितवरमुकुट-बन्धातिबन्धुरोत्तमाङ्गस्य, सानन्दं शिरसि सुबलेन धृतपरिणतकमठ-कठोरपृष्ठसपक्षकृतप्रकटसुरभिसुधा-कणाभिवर्षिप्रवरातपत्रस्य, मसृणतरकरतलोद्भुततनूरुहप्रकररचितचामरद्वयेनोज्ज्वलचतुराभ्यामुभय-पार्श्वयोरानन्देनाभिवीज्यमानस्य, अतिसुप्रतिष्ठितवन्ध्या-गर्भजातमहामहासत्पुरुषवर्गैः पद्मगन्धाभिधादि-वलीवर्द्दसञ्चयानां सुमधुरपयः प्रवाहेण वृन्दाटवीमहेन्द्रत्वेऽभिषिक्तस्य, परिणतशशोत्तुङ्गशृङ्गविनिर्म्मित-मञ्जुलकार्म्मुकालङ्कृतवामकरमुष्टिकस्यास्य, तदवधि यशःप्रतापप्रकाशलहरी ब्रह्माण्डभरे यादृशी प्रसरन्ती वर्त्तते ; तामनुभवन्तीभिर्भवतीभिरपि साक्षान्महेन्द्रत्वं यन्न मन्यते ; तद्भवतीनामनयोऽयं महा-नेवेति मयि प्रभासते ।। इति निशम्य सस्मितं नयनकुणनेन सस्मितलज्जितमन्मुखमालोक्य परस्परं चालोलयन्तीषु तासु चित्रा विहस्य,—भोः ! कथमसौ परिहस्यते भवतीभ्यां ? सत्यमेवायं देवेन्द्रः ।।३१६

तुङ्गविद्याः—चित्रे ! इति चेत् स कथमत्रागतः ? ।।३१७।।

चित्रा,—श्रूयताम्—पररमणीरतो"ऽयमिति सर्व्वतः समधिगम्य क्रोधिन्या देव्या पदाघातेन निर्भत्सितस्तां परमसुखदतन्निजभवनञ्च निर्व्वेदतः परित्यज्य वनमिदमागत्य परममञ्जुलनवीनगोपत्वमिवासाद्य पुरश्चरणविधानेनैव वृन्दावनेश्वर्य्याः कर्षको भूत्वा सुखेन समयं गमयन्नस्ति तदेनं हास्यरसविषयालम्बनमविधाय वाटिकरूपप्राघूणे अस्मिन् स्नेह एव निकामं विधीयताम् ।।३१८।।

तच्छ्रुत्वा सर्व्वासु स्मेरमुखीसु नान्दीमुखी विहस्य,--सखि चित्रे ! ब्रज एव नित्यविहारिणि व्रजेन्द्रनन्दने यत् किंचित् त्वयेदं व्याहृतं ; तस्य शब्दार्थोत्थगूढ़ाभिप्रायेण भवितव्यमिति लक्ष्यते , ततस्तस्य विवेचनपूर्व्वककथनेनास्मान् बाढ़मानन्दय ।।३१९।।

ततः स्मित्वा मुनिव्रतमालम्बितवत्यां चित्रायां वृन्दासानन्दमाह—नान्दीमुखि ! अस्याः परमविदग्धाया गूढ़ाभिप्रायः स्फुटं मयैव निर्वर्ण्यमानः सुष्ठु समाकर्ण्यताम् ।।३२०।।

नान्दीमुखी,—कथमस्य देवेन्द्रत्वं ? तत् प्रकटय ।।३२१।।

वृन्दा,—दीव्यन्ति क्रीड़न्तीति देवाः—विचित्रविविधमनोहरकेलिविलासशालिनः, तथा दीव्यन्ति विशेषेण द्योतन्ते इति देवाः—परमोज्ज्वलतेजस्तरङ्गहृद्याद्भुतसौन्दर्य्यामृतप्रवाहशालिनस्तेषां तेषामपीन्द्रः महापरिबृढ़ इति देवेन्द्रस्तेभ्योऽपि परमोत्कर्षेण सुष्ठु विराजमान इत्यर्थः ।।३२२।।

नान्दीमुखी सस्मितं—समीचीनोऽयमर्थो विवृतः किन्तु "पररमणीरत" इत्यस्य कोऽर्थः ? ।।३२३

वृन्दा,—परा अन्या, तथा परा विपक्षा, तथा परा परमोत्कृष्टा, परा चासौ रमणो चेति पररमणी श्रीराधिका तस्यां रतः परमाशक्तस्तामेव परमानुरागेण रमयन्नित्यर्थः ।।३२४।।

चम्पकलता स्मित्वा,—वृन्दे ! देव्यपि निरूप्यताम् ।।३२५।।

वृन्दा,—नादेवो देवमर्च्चयेदिति चण्डिकापरिचर्य्यापरत्वात् अस्य देवस्य भार्य्येति वा । किम्वा अमङ्गले मङ्गलशब्द-वदियं देवी ।।३२६।।

नान्दीमुखी,—सेयं का ? ।।३२७।।
विशाखा,—एतादृशी चन्द्रवल्येव भविष्यति ।।३२८।।

वृन्दा स्मित्वा मौनमालम्बते ।।३२९।।
सर्व्वाः स्मितं कुर्व्वन्ति ।।३३०।।

नान्दी—पदाघातेनेति धाष्टर्यातिशयेन तस्या अनुत्तमता स्फुटैव किन्तु परमसुखदतन्निजभवनं वा कतरत् ।।३३१।।

वृन्दा—निविड़त्व-पुष्पवत्त्व-भृङ्गगुञ्जित्वादिराहित्यात् परम् असुखदम् । किम्वा परमसुखं दारयतीति परमसुखदं यत्तस्या देव्या निजभवनं—सखीस्थलीनिकटवर्त्तिनं तदपहाय ।।३३२।।

नान्दीमुखी,—अहो शब्दानां गूढ़ार्थविज्ञायास्तव व्याख्याकौशलं तदस्मादृशीभिर्दुरवगाहो नवीनगोपत्वादिपदानां गूढ़ोऽर्थः कृपया प्रकाश्यतां (दर्श्यताम्) ।।३३३।।

(क) वृन्दा,—वेणु-विषाण-लगुड़-निर्योगपाश-गिरिधातुचित्र-नवशिखण्ड गुञ्जाहारारण्याशृङ्गारधारित्वं मञ्जुलनवीनगोपत्वं तत्रापि नवीनशब्देन तस्य प्रथमतो नित्यनूतनता च ध्वनिता ।

पुरश्चरणसंविधानेनेति पुरः— सम्मुखे भृङ्गरणितकुसुमकलितवकुलराज तले चरणं प्रोद्दामदोन्मत्तगजेन्द्रवद्विविधविलाससमुल्लासितमितस्ततो भ्रमणं तत्पुरःसरं यत् सम्बिधानं लीलाकमलचुम्बनकङ्केलिवल्लिनवपल्लवदंशन निस्तुलनिस्तलदाड़िमीफलकर-विन्यासकांचनयूथिकासमालिङ्गनपूर्व्वकस्मितनवकर्पूर-सम्मिलितचञ्चलनयन कमलांचलावलोकनपरमोन्मादकमधुरमाध्वीकपायनम् । तेन मल्लिवकुलचम्पक-माधवीकनकयूथिकादिकुसुमचयनविलासमाधुरीभरमनुभवन्त्याः श्रीवृन्दावनराजधानीविलासिन्याः कर्षक-आकर्षको भूत्वा तेन तामुन्माद्य निजनिकटमाकृष्येत्यर्थः ।। सुखेन—श्लाघ्यमधुरमधुररसास्वादनजनित-परमानन्दसन्दोहेन समयं—सहजसर्व्वदोज्जृम्भमाणवसन्तकालं निरन्तरं निरुपमविलासमाधुरीभिः सौभाग्यलक्ष्मीभरं गमयन्—प्रापयन्नस्ति तया सहाऽवरतमनिर्व्वचनीयमधुरखेलाविलासतत्परः सन् सदा विराजत एवेति ।।३३३।।

(ख) ततोऽहं सान्तरानन्दं,- विश्वासघातिनि वृन्दे ! मम वृन्दावनोद्यानपालिकापि त्वं कथमेतासु मिलितासि ? ।।३३४।।

मधुमङ्गलः,—प्रियवयस्य ! इयमुद्यानपाली सलवणतक्रश्लथितभक्तभक्षणाय तदुद्यानपालनं परित्यज्य साम्प्रतमासां गृहपालीं वृत्तास्ति ; तत् कथं न कथयिष्यते (वुक्किष्यति) ।।३३५।।

वृन्दा,—अये भूसुराभास ! कटुवटो ! निज-सहचरप्रथममुदिरवचनजलधारावर्षेण प्रफुल्लवर्षा-भूस्त्वं सन्ततश्रवणकटुशब्दं कुर्व्वन् सर्व्वानुद्वेजयसि ।।३३६।।

मल्लीभृङ्गचौ,—देवि ललिते ! स्वामिन्या यदन्यपत्रे लिखितमस्ति; तत् किं विस्मृतं भवत्या ? ।।३३७।।

ललिता,—किन्तत् स्मार्य्यताम् ।।३३८।।

मल्लीभृङ्गचौ,—समुचितकरदाने यः कुयुक्तिमुत्तोल्य विरोधमाचरति, सोऽत्र बद्ध्वा शीघ्र प्रहेय इति ।।३३९।।

ललिता,—आं ! तत्करदानविरोधी मधुमङ्गल एव, तदेनं लतापाशेन दृढ़ं निबध्य कोमलायाः प्रियसख्याः सविधमनीत्वैव जटिलाभिमन्यु-पार्श्वे युवाभ्यामेव सत्वरं समर्प्यताम्, यथा स यावग्रामसिंहोऽभिमन्युरेव ताडनपूर्व्वकं स्वकरं गृह्णाति ।।३४०।।

मधुमङ्गलः,—अन्तःसभयमिव—वयस्य ! किंचिन्निगूढ़ं कार्य्यं मम गृहे विद्यते तत् सम्पाद्या-गच्छन्नस्मि ! ।।३४१।।

ततोऽहं,—धिग्ब्राह्मण ! कथमबला-वागाडम्बरेण मदग्रतोऽपि विभेषि ।।३४२।।

मधुमङ्गलः,—महाशूर ! घट्टीपालस्य तव गोवर्द्धने दानवर्त्तन्यां वहुशः शौर्य्यम् अनुभूतमस्ति; यत्तस्मिन्दिने एताभिरेव वृन्दावनकरनिमित्तं गान्धर्व्वा निदेशेन निजोत्तरीयपटांचलेन वद्धा नीयमानमपि मां वीक्षमाण एव विलक्षस्त्वमासीः अहमेव निजभूसुरत्वं विवृत्य भाग्येन कथंचिदुर्व्वरितोऽस्मि, इत्युक्त्वा भीतिमनुकृत्य पलायन्तमिव तं करे गृहीत्वा परावर्त्त्य मयोक्तं,—ललिते ! तादृश्याः कोमलावलाया अपि अथमहं करं दास्यामि ? प्रत्युत वलात् काममादास्य एव ।। इति निशम्य नेत्रभागेन मामीषदवलोकयन्ती राधा सुस्मिता आसीत् ।।३४३।।

नान्दीमुखी,—चित्रे ! वाटिका-प्राघूण इत्यस्य कस्तावदभिप्रायः ।।३४४।।

ललिता,—नान्दीमुखी ! तज्जानन्त्यपि कथं पृच्छसि ? यत् सर्व्वकालीन निज-वासग्राममहावनमपहाय वत्सरषट्सप्तकमात्रमत्रागतोऽस्ति ।।३४५।।

नान्दीमुखी,—प्रियजन्मभूमेस्त्यागे किं तावत् कारणम् ? ।।३४६।।

राधा अनुच्चैः,—तत्स्थानस्यास्वाच्छन्द्यात् जनताधिक्येन तद्ग्रामे नगर इव जाते अबलाबधभाण्डस्फोटन-नवनीतहरणादिविविधविसदृशव्यवसायाभ्यासेन जनितबहुविधविकर्म्माभिलाषस्यासिद्धत्वात् निर्ज्जनेऽस्मिन्महति वने वृन्दावने कुलावलाकुलानां गेहदेह अधरदशनवसनानि स्वाच्छन्द्येनापहर्त्तुमधिकलालसैव । इत्येवं ललितया स्फुटं व्याहृते नान्दीमुखी सस्मितं साकूतमाह,—ललिते ! साम्प्रतमस्य तादृशव्यवसायो न दृश्यते ।।३४७।।

राधा पुनरनुच्चै,—सत्यमेव कथ्यते ; यदयं सम्प्रति स्वधर्म्मत्यागेन विसदृशसंस्कारेण च जनितान्यादृशबुद्धिकृतचौर्य्यादिदुष्कृतं ललिताचार्य्यया पूर्व्वमपि विहितनिष्कृतेन निर्वास्य निर्व्वेदकृतविवेकेन तासामेव कृषिवृत्तिमेव निजधर्म्ममाचर्य्य प्रकामं शस्यान्युत्पाद्य ताभ्यः प्रदाय तत् स्वांशमपि स्वयमादाय ताः स्वात्मानमप्यानन्दयन् महाशुचिरिव विराजते ।। इत्येव स्फुटं विशाखापि सस्मितं भाषितवती ततस्तन्निशम्य सर्व्वेषु हासकोलाहलमहोत्सवमाविष्कुर्व्वत्सु सकपटासूयं मयोक्तम्—सखे सुबल ! धूर्त्ताभिरिमाभिर्नर्म्मभङ्गीमिषेण मम वृन्दावनराज्याधिकारितैव दूरीक्रियमाणास्तोति समधिगतं भवता ।।३४८।।

सुबलः,—न केवलमधिकारितैव दूरीकृता किन्तु कर्षकोऽपि कृतोऽसि ।।३४९।।

वृन्दा,—सुबल ! त्वं बहुश्रुतो विचक्षणस्तथानयोरपि परमस्निग्धः ; तत्कथं नान्दीमुख्या सहानयोः परमस्निग्धयोरपि राज्यहेतोर्व्विवदमानयोरुचितन्यायावलोकनेन विरोधं न दवयसि ? ततो भद्रं भद्रमिति मया ललितया चोक्ते सुबलः प्राह,—वयस्य ! प्रथमं तावत् कथमासामेतद्राज्यं तल्ललितैव कथयतु, पश्चाद्भवानपि कथम्बा भवद्राज्यं तज्ज्ञापयतु ।।३५०।।

ततोऽहं,—सुबल ! यासां व्रजदेवकन्यानामज्ञानेनापि सङ्गमाचर्य्य जातव्यलीकोऽहं प्रायश्चित्तेन शुद्धोऽभवं स कथं ताभिः सममपि पुनर्वाकोवाकं विस्तरयामि ।।३५१।।

वृन्दा,—महाशुद्ध ! भवद्वाग्गन्धमात्रेणापि समुदितकलुषसञ्चया एता अपि श्रीवृन्दावनचक्रवर्त्तिन्या नूनमशेषविधिना श्यामलविषमशरसरोवरमहातीर्थे पुनः पुनः स्नपनेन शुद्धीकृता एव स्वनिकटमापिताः सन्ति तच्चीर्णनिष्कृतयोरुभयोः सम्वादे दोषो नास्ति । तल्ललिते । भवत्येव कथयतु ।।३५२।।

ललिता,—प्रथमं तावदस्मिन् वृन्दावनराज्येऽस्यालीकवादिनो धूर्त्तस्याधिपत्यं तावद्दूरेऽस्तु सम्बन्धलेशोऽपि नास्ति ।।३५३।।

नान्दीमुखी—कथमिव ? ।।३५४।।

ललिता,—स्वपैतृकराज्ये वृहद्वन एव कुलक्रमागतसन्ततवासित्वात् ।।३५५।।

नान्दीमुखी,—किमत्र प्रमाणम् ? ।।३५६।।

ललिता,—भागवतादिपुराणवक्तृव्यासादिमुनीन्द्रवचनान्येव ।।३५७।।

सुबलः,—ललिते ! मध्यस्थेन मया यथार्थमेव वक्तव्यं; त्वन्मुखमालोक्य मिथ्या वक्तुं न

शक्यते। तदस्य वृहद्वनराज्यत्वेनैव भवत्या वृन्दावनराजचाधिपत्यं किमायाति ? किन्तु तत्र चेत् महा-प्रमाणमस्ति तद्वद ।।३५८।।

ललिता, – प्रत्यक्षं परोक्षमपि बहुतरपुराण-वचन-कुलमस्ति तत्रापि "प्रत्यक्षपरोक्षयोः प्रत्यक्षमेव वलीयः" इत्यनुसारेण प्रत्यक्षमेव ग्राह्यम् ।।३५९।।

नान्दीमुखी,—किं तत्प्रत्यक्षं प्रमाणम् ? ।।३६०।।

ललिता,—मया किं तद्वक्तव्यं युष्माकमनुभूतमेव तत् ।।३६१।।

नान्दीमुखी,—न स्मर्य्यते तत् प्रकाशय ।।३६२।।

ललिता,—ब्रह्मगृहिणीसावित्रीप्रभृतिदेव्यादिभिर्दुन्दुभिवादित्रादिकोलाहलपूर्व्वकं कृतोऽत्र महा-सिंहासने यो रत्नाभिषेकः स च त्रिलोकीवासीषु कस्य वा परमानन्दप्रदायको न संवृत्तोऽस्ति ।।३६३।।

ततः सुबलः – ललिते ! एतत्तु तावदन्यथात्वेन निरूप्य प्रियवयस्यो युष्मानप्यात्मसात् कर्त्तुं विराजमानो वर्त्तते ।।३६४।।

ललिता,—सुबल ! एतच्चेद्भवद्द्विपदगोपप्रियवयस्यः सत्यमेव वक्ति तर्हि वृन्दावनराज्येऽभि-षिक्ताया महासिंहासनस्थाया इत्यादि तथैतस्याश्चरणानुजीविन्यो ममेत्यादि व्याहृत्य स्वाम्यसौ साम्प्रत-मपि कथं तच्चरण परिचरणमात्रैकलाभाय तन्मन्त्रराजमादातुमाग्रहेणाध्यवस्यन्नस्तीत्यादिसर्व्वं किं भवादृग्भिर्विस्मृतम् ? ।।३६५।।

नान्दीसुखी स्मित्वा,—ललिते ! अस्य विलासिनो राजपुत्रस्य मदनमोदकभोजिनो महाकामु-कस्य यत् प्रलपितं तत् किमत्र प्रमाणं स्यात् ? अन्यच्चेद्गाढ़ं प्रमाणं स्यात्तद्दर्शय ।।३६६।।

वृन्दा,—यद्यत् प्रमाणमियं दर्शयति; तत्तदेवास्योन्मादिनो राजपुत्रस्य पक्षमाश्रित्य युवाभ्यां खण्डयते। अतोऽन्यत्र सर्व्वत्र प्रसिद्धमपि प्रमाणं ललितातिकोपेन नोट्टङ्कयति ।।३६७।।

नान्दीमुखी,—वृन्दे ! तत्त्वयैव तावत् कथ्यताम् ।।३६८।।

वृन्दा,—प्रेम्ना निजासाधारणसारूप्यदानपूर्व्वकमियं वृन्दाटवी प्रियसख्या स्वप्रियसखीत्वे नित्यं निरूपितास्तीति ।।३६९।।

नान्दीमुखी— कीदृशं स्वारूप्यं (सादृश्यं) तत् कथ्यताम् ।।३७०।।

वृन्दा,—श्रूयताम् ।।३७१।।

तनोरस्या ज्योतिः परिमलचरच्चम्पकलतावली विद्युद्वल्लीजयिकनकयूथीततिरपि ।
स्वरूपं सारूप्यं परमगमयद्वल्लवपुरे मुखस्यापि प्रोद्यद्रुचिरतरराजीवनिवहः ।।१।।

दृशोरीषद्घूर्णन्नवकुवलयानां समुदयस्तथा लीलास्तिर्य्यक्क्रमनगमनोन्मत्तहरिणः ।
लसद्बिम्बीवृन्दं वरविकचवन्धूकनिकरोऽप्यसौ सोऽधूस्यन्दिस्फुरदधरयुग्मस्य सुकृती ।।२।।

तुजाया वल्लर्य्यश्चलनललिताश्चञ्चुनिचयाः शुकानां नासायास्तिलकुसुमसख्या द्युतिभृतः ।
स्मितस्य प्रोन्मीलत्कुमुदनिकरो दन्तसुरुचेरलं गन्धैरन्धीकृतमधुकराः कुन्दकलिकाः ।।३।।

भ्रुवोर्भङ्गीभ्राम्यद्भ्रमरवरपंक्तिः परिमिता ललाटस्य स्फुर्जत्सुभगवकपुष्पातिसुषमा ।
अलं वेणेरुद्यन्मदशिखिशिखण्डावलिरसौ श्रुतेर्मुञ्जायुक्तिर्मदनधनुषो ज्यादुतिमुषः ।।४।।

अलं विल्वं तालं करकमुदयच्चारुकुचयो स्फुरद्वक्षःस्थल्याः कनकक्तनसिंहासनगणाः ।
नितम्बस्यैतस्य स्फुरितनवघण्टारवभृतः स्फुटं वंशध्वानाञ्चितगुरुगिरिस्फारविकटाः ॥५॥

वरोरुद्वन्दस्य स्मरकलिसमर्थस्य सरसप्रभारम्भास्तम्भाः स्थलकमलसङ्घाश्चरणयोः ।
सदोन्मादप्रोद्यद्गजगमनशिक्षागुरुगतेर्मरालीपालीनां ललितचलितोद्यच्चतुरता ॥६॥

अलं भ्राजज्जम्बूफलमलकपंक्तेः शतमितं मधौ मञ्जुध्वानाः पिकयुवक्रताश्चारुभणितेः ।
प्रसन्नश्रीवक्त्रस्फुरितनयनप्रान्तनटन क्रमस्य स्मेरोद्यत्सरसिजनटत्खञ्जनगणः ॥७॥

स्फुरत्प्रेम्ना नेत्रांजनगलितपानीयविततेर्यमी चेतोगङ्गाजलममलचित्तस्य सततम् ।
घनस्वेदस्यन्दस्य च त्रिविधकासारनिवहो महारागस्योच्चै रुचिरुचिरगुञ्जाफलकुलम् ॥८॥

सपत्नीनासानां सततमभितापं जनयतां सुहृच्छ्रेणीनासाप्रमदमनुवेलं रचयताम् ।
वपु सौरभाणां परिलिमितसर्व्वव्रजभुवां निकामं काश्मीरव्रजकमलगर्भा वररुचः ॥९।

सुमेरो कान्तीनां मददमकहृपाल्लवकणच्छटाया विद्यु च्छ्रीरचितभजनायास्तनुरुचः ।
स्फुरद्भूमीभागाः कनकनिचिताः सद्मनिवहागुहान्तःकुञ्जान्तर्गिरिकुलशिलाश्च क्वचिदपि ॥१०

ह्रदाः श्रीमन्नाभेस्तदुपरिलसल्लोमलहरेर्भुजङ्गालीकाली वत वकरिपोर्वेपथुभृतः ।
वदान्यत्वादीनां सुरतरुगणा रत्नखचिताः परं रोमांचानां प्रियकगुरुकिञ्जल्कनिकरः ॥११॥

परे ये मुक्ताः स्युः स्थिरचरपदार्था व्रजभुवः सदा स्तव्या भव्यैस्त्रिजगति निकामं जनकुलैः ।
सदङ्गप्रत्यङ्गप्रकरसुषमायाः परमुमारतिश्रीवर्ण्यायाः परिषदि यथा युक्तमपि ते ॥१२॥

रमेश स्वानन्दोच्छलितपरमव्योमपुरतो ऽप्यजस्रं विस्फूर्जद्विपुलसुखदैकद्रुमलता ।
समस्तब्रह्माण्डे शशिवदुदयत्प्रौढ़यशसस्ततः श्रीराधायाः प्रकटमटवीयं प्रियसखी ॥१३॥

ततोऽहं साटोपमवदम्,—॥३७२॥

व्रजेन्द्र स्वाराज्ये विजययियुवराजत्वविधिना समासिक्तः स्नेहस्तिमितमतिमित्रादिवलितः ।
निजामेतां रक्षाम्यटविमिह गोचारमिषतः कथं सारूप्येनैव तु भवतु वः साम्प्रतमियम् ॥१४॥

तच्छ्रुत्वा वृन्दा,—॥३७३॥

सखित्वं यो यस्य व्रजति निजसारूप्यमथवा स चेत्तस्य स्यान्नो भवति परमन्यस्य हि तदा ।
कथं नो गृह्णासि द्रुतगतिरिदं हन्त ! कथयन् स्वयं गत्वा लक्ष्मीं तदीयसमरूपं गणमपि ॥१५॥

तन्निशम्य साट्टहासं मधुमङ्गलः—भो असत्यवादिनि वृन्दे ! कुर्च्चिकालोभेन निजदेवीत्वमुत्सृज्य वन्दिनी भूत्वा मिथ्यास्तवमात्रेणैवास्मद्वृन्दाटवीं निजसख्यां संचारयितुं कथा शक्ष्यसि ?॥३७४॥

नान्दीमुखी,—ललिते ! विज्ञप्राचीनमुनीश्वरवचनं विना कोऽपि निरस्तो न भविष्यति तस्मातु पूराणवचनमेव दर्शय ॥३७५॥

ललिता,—अस्य पक्षमाश्रित्य तादृग्भिरेवं चेत् कथ्यते तदा तत्र गत्वा भगवत्याः सकाशाद्बहूनि पुराणवचनानि श्रूयन्ताम् ॥२७६॥

सुबलः—भवत्य एव पठन्तु ॥३७७॥

ललिता,—वल्लवजातीनां तत्रापि स्त्रीणामस्माकं पुराणवचनपाठेऽधिकार एव नास्ति ॥३७८॥

सुबलः,—वृन्देयं देवी ; तदियमेव श्रावयतु ।। वृन्दा स्मृतिमभिनीय,—अत्र सुबहूनि वचनानि सन्ति, तानि कति पाठ्यानि किन्तु अन्येषु देशेषु अन्याः पृथक् पृथग्देवीरधिकारिणीरुक्त्वा "राधा बृन्दावने वने" इति सर्व्वोपमर्द्दकपुराणवचनं भगवत्याः सकाशात् केन वा न श्रुतमस्ति ।।३७९।।

ततस्तासां जयाभिमानेन प्रफुल्लतामालोक्य मधुमङ्गलः साटोपमाह,—नान्दीमुखि ! सर्व्वपुराण-शिरसि महोपनिषदि गोपालतापन्यां वृन्दावनस्य कृष्णवनत्वेन प्रथितख्यात्या वृन्दावनराजधानी-पुरन्दरत्वेन प्रियवयस्यं ब्रह्मभवादयोऽपि निरन्तरं गायन्तः सन्तीति के वा न जानन्ति ? ततः 'श्रुत्या स्मृति-र्वाध्यते" इत्यस्माकमेवेदं राज्यं सुसिद्धम्; तत् सखे सुबल ! विद्रावयामूरितः परराज्यकाङ्क्षिणीः ।।३८०।।

ततः सखे ! त्वमेव मे प्रियङ्करः प्रियवयस्य इति सानन्दं मधुमङ्गलमालिङ्गति मयि किंचिद्वै-लक्ष्यमिव राधाधिष्ठितनिकुंजमालोक्य ललितादिमुखमालोकयन्त्यां नान्दीमुख्यां राधा स्मित्वा अनुच्चैः,—अहो कृष्णेति शब्दश्रवणमात्रत एवानेन महादूरदर्शिना तदर्थमबुद्ध्वैव पराराज्येऽस्मिन् स्वतामर्पयता किंशुककुसुमसादृश्येन दुर्विधवोऽस्य रोलम्बस्य शुकतुण्डपानस्मरणं सुष्ठु समानीताः स्मः ।।३८१।।

ततस्तस्मिन्नेव वर्णविन्यासे सोल्लुण्ठं ललितयापि प्रकाशिते सति कृष्णवनशब्दस्यार्थान्तरं नूनमेषा घटयिष्यतीति तदभिप्रायं मनसि मनाक् विचारयति मयि नान्दीमुखी सचमत्कारं मां प्राह,—जयाकाङ्क्षिन् ! एकं विज्ञापयितुमिच्छामि यदि तुभ्यं रोचते ।।३८२।।

ततोऽहम्,—कामं कथ्यताम् ।।३८३।।

नान्दीमुखी—श्यामवनसमासमाचर्य्य त्वया सह तत्समासेनैव न्यायमाचर्य्य त्वां पराजित्य स्व-राज्यमादातुं ललितेयम् अभिलषति ।।३८४।।

ततोऽहं, विविधकुसुमचन्दनवर्णिकादिभिः शृङ्गाररचनाचार्य्येयं; तदेव जानाति, यदनया तद्-वनपुष्पैर्मुहु, शृङ्गारितोऽस्मि तद्व्याकरणस्य केयम् ।।३८५।।

वृन्दा स्मित्वा,—व्याकरणविज्ञम्मन्य ! त्वत्तोऽपि मत्प्रियसखी ललिता तद्व्याकरणस्य प्रथिताचार्य्या ।।३८६।।

ललिता,—पामरि वृन्दे ! अपेहि अपेहि ।।३८७।।

वृन्दा,—त्वत्पक्षमाश्रित्य विवदमानां मां किमित्याक्षिपसि ।।३८८।।

ललिता,—भो समासाचार्य्यशार्द्दूल ! कथं स्वेप्सितापरसमासेन विभीषिकां प्रदर्श्य मत्प्रिय-सख्याः खेलास्पदकृष्णवनमिदमादातुं वृथैवाध्यवस्यसि । यतोऽत्र नित्यं वैश्वानरवज्जाज्वल्यमानबहु-व्रीहिकर्म्मधारयाद्यवधारणतः स्वयमेव दूरादेवापसरिष्यसि ।। समासाभिज्ञ ! कृष्णवनशब्दस्य नर्म्मच्छलेन तत्पुरुषसमासं विरचय्य पराराज्यं ग्रहीतुं कथमभिलषसि ! यदत्र कर्म्मधारयबहुव्रीहिसमासयोरे-वावकाशः ।।३८९।।

ततो मयोक्तं,—चतुरम्मन्ये ! प्रकटेऽत्र तत्पुरुषसमासे कथं कर्म्मधारयादियोजना सम्भवति । "भवतु तुष्यतु दुर्जन" इति न्यायेन तदेव तावत् कथय श्रोतव्यम् ।।३९०।।

राधा अनुच्चैः,—वनस्यास्य घनताप्राचुर्य्येण कृष्णं श्यामंच तद्वनञ्चेति कर्म्मधारयः स्फुट एव ।।३९१।।

इत्येवं ललितयापि स्फुटं भाषिते चम्पकलता सश्लाघमाह,—ललिते ! साधु साधु सत्यं सत्यं,

यतः कर्म्माणि—अरिष्टकेश्यादिवध-कालियदमन-गोवर्द्धनोद्धरणनित्यारासादिलीलाः धारयति—निष्पादयति प्रकाशयति वा इत्यस्य वनस्य कर्म्मधारयत्वं स्फुटमेव सुसिद्धम् ।।३९२।।

पुनर्ललिता राधानुच्चभाषितमेवानुवदति,—कृष्णानि क्वचित् क्वचिदतिशय्यमानि वनानि यत्र तत् कृष्णवनमिति बृन्दावनस्य विशेषणत्वेन बहुव्रीहिरपि ।।३९३।।

वृन्दा,—सत्यं सत्यं; कालिन्दी-तीररासस्थल्यामन्धकारिवटवनं, तथा गोवर्द्धनोपशल्यपररासस्थल्यामन्धकारिनिबिड़वनं सर्व्वानन्दकरं सुप्रसिद्धमेव ।।३९४।।

इन्दुलेखा, ललिते ! सत्यं सत्यं; बहवो व्रीहयोधान्यादिशस्यानि किम्वा केदारिकाजातत्वान्मुक्ता एव व्रीहयः, बहवो व्रीहयो यस्मिन्नित्यस्य वनस्य बहुव्रीहित्वं स्फुटमेव ।।३९५।।

ततः सगर्व्वगर्भितं हसन्तीषु तासु मयोक्तं,—नानाकूटकल्पनानगरीचक्रवर्त्तिनि ललिते ! मुख्यमत्र तत्पुरुषसमासं, कल्पितकर्म्मधारयबहुव्रीहिभ्यां कथं दवयितुं शक्यसि ।।३९६।।

ललिता,—महापण्डित ! तत्पुरुषस्तत्पुरुष इति वारम्वारं जल्पसि, तत्पुरुषस्तावदनेकविधो भवति, तत्र कतमोऽयं स इति सुष्ठु निर्णीय कथ्यताम् ।।३९७।।

मयोक्तं,—जड़बुद्धिके ! कृष्णस्य वनं कृष्णवनमिति षष्ठीतत्पुरुषस्त्रिजगति सुप्रसिद्ध एव ।।३९८

राधा,—कृष्णस्य वनमिति चेत्तर्हि सखीस्थली-वटश्रेणिरेव पुरुषशार्द्दूलस्य तव वनम् । यतः षष्ठीतत्पुरुषोऽपि नित्यं तत्रैव वर्त्तते । अत्र षष्ठीसमासस्य सम्भावनापि न विद्यते इत्येवं विहस्य ललितयाप्युक्ते ।।३९९।।

नान्दीमुखी,—ललिते ! एष ते वाग्विन्यासो गर्भितसन्दर्भ इति लक्ष्यते, तत् प्रकाश्य कथ्यताम् ।।४००।।

ततो ललिता नेत्रान्तनीलोत्पलमालया मामलङ्कुर्व्वती स्मितगर्भितमाह,—नान्दीमुखी ? षष्ठी काचिदेका, तस्याः पुरुषः पतिरेव, जनो वा षष्ठीतत्पुरुषः ।।४०१।।

विशाखा सस्मितं,—ललिते ! तत्पुरुषो ज्ञात एव सा तावत् का ।।४०४।।

ललिता,— चन्द्रावली ।।४०३।।

विशाखा,—चन्द्रावली कथं षष्ठी ? ।।४०४।।

ललिता,—देवीगणमध्ये प्रथम कंस-गोप गोवर्द्धन मल्ल महाभैरवोपास्या कात्यायनी, द्वितीया तन्माता भारुण्डा (भारण्डा) चण्डी, तृतीया चन्द्रावली-मातामहीकराला चर्च्चिका, चतुर्थी शैव्या काली पञ्चमी पद्मा शङ्खिनी (प्रसिद्धा), षष्ठी सखीस्थलीवटवासिनी चन्द्रावली षष्ठि, यतो वटवनवासित्वात् तस्याः षष्ठीत्वं युक्तमेव ।।४०५।।

ततः सर्व्वेषां हासकोलाहलवृत्ते अहं स्वगतं,—अहो ! बुद्धेर्वरिष्ठता व्रजवालानाम ; यदहमपि वचनाटोपविलासैर्निर्वचनीकृतोऽस्मि । प्रकाशं सनिर्व्वेदमिवाह,—नान्दीमूखि ! अस्मद्दत्तभोगरागमसृणवसनादिभिः संवर्द्धिताभिरस्मद्दत्तमुक्ता-मणि-प्रवाल-कमलराग-मरकत-वज्रादिखचितविविधभूषणभूषिताभिः साम्प्रतमभिनवयौवनमहाधनगर्व्वेणोज्झितगुरुलघुगणनोत्-कराभिरस्मत्कृषकगुर्ज्जर गुर्ज्जरीभिरप्येताभिर्हेलोल्लासितचञ्चलनयन-प्रान्त-नर्त्तनपूर्व्वकं साहङ्कृतिवचनाडम्वरविन्यासभरेण समस्तव्रज

साम्राज्यसार्व्वभौमस्य परमोद्दण्डकुमारोऽहमपि निरवधिविडम्ब्यमानोऽपि केवलं भगवतीचरण-परिजन-मुख्यनान्दीमुखीमुखमालोक्य तथैव ग्रामवासेनापकीर्त्तिभयेन च एतत्कृतं प्रतीपव्यवसितमपि एतावन्तं कालं दुःखदत्त्वेनापि न गणितवानस्मि। साम्प्रत मम दोषो न देयः। अधुनैव निजनिज वक्षसि मसृणमेचक पटपरिवेष्टितमतिर्विचित्रितकार्त्तस्वर-सम्पुटयुगपुटितमरुण-द्वितीया-शशधर मुद्रामुद्रितं स्वस्वपरिवृढ़ैरपि कदाप्यनालोकितचरं दुर्ल्लभनवतारुण्यधनं, महतीव्रनखभटैस्तथैव निरुपमदशनच्छदपद्मरागमहारत्नमपि दशनोद्धरसामन्तैरपि लुण्ठयित्वा एता वचनधनदरिद्रा विदधानोऽस्मि इति साटोपं सहसोपसृत्य ताः सन्दिधीर्षौ मयि कुटिलभ्रूनर्त्तनवलितस्मितशवलित कटाक्षेण मदवलोकनपूर्व्वकमितस्ततो मनागपसर्पन्तीषु सर्व्वासु, सरोषमिव ललिता,—अये श्यामल रसपाननिरत ! अपेहि अपेहि; एतां ते मत्ततारभटीं व्रजेश्वर्य्यै वर्णयितुं वयं चलिताः स्मः ।।४०६।।

सत्यभामा सचमत्कारं हसन्ती,—विनोदिन् ! एकं प्रष्टुमिच्छामि ।।४०७।।

कृष्ण,—प्रिये ! विज्ञापय (समाज्ञापय। ।।४०८।।

सत्यभामा,—राधा-स्वगतलपितावलिरेव ललितादिभिरपि कथमन्ववादि ? ।।४०९।।

कृष्णः,—प्रिये ! राधायाः कायव्यूहरूपा एव ललितादयस्तत्कथं नाधिगमिष्यन्ति ? ।।४१०।।

सत्यभामा,—सुभग ! राधाया नर्म्मोत्तरवर्णविन्यासः कथं वा भवन्मानससञ्चारी बभूव ? ।।४११

मधुमङ्गलः सगद्गदं,—प्रियसखि, सत्ये ! परिमलमञ्जरी-मञ्जुलमृगमदाविव परस्परसंपृक्तौ गान्धर्व्वागिरिधारिणौ तत् कथं न सञ्चरत्विति ।।४१२।।

इति तद्वचननिशमन मधुरपयः पानपरिवर्द्धितगान्धर्व्वाविरहोत्कटकटुगरलोद्भटविकटज्वाला-जालजनिताभिः, पुनः पुनश्चाल्यमानहृदयमर्म्मनिमग्नार्द्ध भग्नप्रतप्तलौहतिर्य्यगवशल्योज्जृम्भितयातना-भरतोऽपि महातीव्रपीड़ावलिभिरभितोऽन्तरनिर्भरकातरो यदा बभूव तदैव तदवधानतः सञ्चरदपूर्व्वजाडच-मोहोन्मादादिप्रियसहचरसमुदय-सहितसूद्दीप्ततमस्तम्भकम्पाद्यष्टसात्त्विक—प्रियवयस्येषु बाढ़महं पूर्व्वमहं पूर्व्वक्षेलनविधिना नर्म्मोच्छलित परस्परविजयाय प्रगाढ़प्रागल्भ्यमुपलभ्य युगपत्त्वरितमुपर्य्युपरि तमा-लिङ्गितुं (सर्व्वतः) सरभसमारभमाणेषु रे रे विदग्धशिरोमणिम्मन्याः ! खेलनसमयमुत्तमं लब्धाः स्थ इत्युपालभ्य श्रीमत्प्रेमानिर्वचनीयपरिणामविशेषस्वरूपेण निरवद्यहृद्य सौहृद्याचिन्त्यमहिममहौषध-रसाति-वशीकृतसप्रियपरिजनगण-कृष्णैकसर्व्वस्वरूपेण समस्तातर्क्यमहामहाप्रभावबहुविधलीलादिशक्त्यपण चिन्तारत्नादिरत्नविञ्छोलीकमङ्गलाकरेण निरुपमविविधवैदग्ध्यचातुर्य्यसमयादिविज्ञत्वसुगन्धकुसुमोत्-करानिर्भरारामेण श्रीश्रीरसनामप्राणप्रियतमनर्म्मसखेन सभ्रूभङ्गः नयनघूर्णनलीलया विहितप्रतिषेधात् स्वयमपि च पश्चादवधाय। भो भोः ? अनार्य्यमनार्य्यमिति रसज्ञां (रसनां) दशनैः संदश्य लघु लघु ससङ्कोचं स्वपृष्टेन दूरमपसरत्सु तेषु—ततोऽस्फुटवहिर्विकारनिकरः सम्भृतहृत्कम्पातिशयः स श्रीश्रीमान्-यादवेन्द्रः स्वगतमिदं विललाप,—हा मत्प्राणकपोत-वासवड़भिप्रेमस्फुरन्माधुरीधारापारसरिद्वरे ! गुणकला नर्म्मप्रहेलीखने ! हा मन्नेत्रचकोर-पोषकविधुज्योत्स्नातते राधिके ! हाहा मद्दुरितेन केन निधिवद् प्राप्ता करात्त्वंच्युता ? ।।४१३।।

ततः सत्यभामा,—यादवेन्द्र ! श्रीमन्मुखारविन्दाद्गोकुल विलासमाधुरीमकरन्दं धयन्त्या अपि मम पिपासा परमुल्लालसयतीति; तत्कृपया तदेव पुनः पायय ।।४१४।।

कृष्णः,—प्रिये ! श्रूयताम् ।।४१५।।

ततो मधुमङ्गलेनोक्तं सखि ललिते ! प्रियसखस्याहमलङ्घ्यवाक्यसचिवोऽस्मि । तदपूर्व्वं कमप्युत्कोच मह्यं देहि, मया मौक्तिकमूल्येन वः साचिव्यं विधास्यते ।।४१६।।

विशाखा,—आर्य्य ! किमप्यत्र नास्ति; सायं शक्राशनार्थं तुभ्यं वराटिकाचतुष्टयमवश्यं देयम्; यदि प्रतीतिर्नक्रियते त्वया नान्दीमुखोप्रतिभूर्गृ ह्यताम् ।।४१७।।

मधुमङ्गलः सक्रोधम् —अवद्यभाषिणि आभीरिके ! तिष्ठ तिष्ठ; एषोऽहं सद्य एत्र तवैतत् प्रायश्चित्तं कारयन्नस्मि इति निगद्य मां प्रत्युवाच,--प्रियवयस्य ! भवन्मृदुलवचनद्रुतघृतधारया संर्वाद्धित-गर्व्ववैश्वानराभिरमूभिः सुष्ठु भवन्तमुपालभ्य मामपि बद्ध्वा नेतुं व्यवसीयते ।।४१८।।

ततोऽहं,—सखे ! सत्यं सत्यं यथा विना राजधानीजयेन तद्देशाः सुष्ठु वशा न भवन्ति; तथैतद्-यूथेशा-पराभवमन्तरेण तदीयाः कथममूरमूका न भवन्तु इति निगद्य राधाननाथं कुञ्जं पश्यन् सनिर्व्वेदं पुनरवदम् किं कर्त्तव्यं सा किलैतद्भयेनैव मत्सानिध्यं नासादितवती इति निशम्य द्रुतमुद्ग्रीविका-वलोकनात् सङ्कुचन्ती राधा कुञ्जमध्ये निविष्टा बभूब ।।४१९।।

सत्यभामा,—ततस्ततः ? ।।४२०।।

कृष्णः– ततोऽह,–नान्दीमुखि ! ललितादीनां तारुण्यधनादपि तस्यास्तारुण्यधनं प्रचुरतरममूल्य-मपीति ज्ञायताम् ।।४२१।।

नान्दीमुखी,—कथमिव ? ।।४२२।।

मयोक्तं,—यत आसां तावत् सम्पुटद्वयपरिमितं तत् तस्यास्तु महामतङ्गजकुम्भतोऽपि निस्तलत्वे-नोन्नतत्वेन परिणाहेन च प्रवीणतरे हृन्मध्यस्थे गोकुलप्रसिद्धतस्करभीत्येव मृगमदपङ्कादिलेपेन वर्णान्तर-मापिते हिरण्मयकुम्भयुगले परिपूर्णं तत् ।।४२३।।

नान्दीमुखी,— मोहन ! अति सुगुप्तमेतद्धनं कदापि भवद्दृष्टचरं वृत्तमस्ति ? ।।४२४।।

ततोऽहं सस्मितं,—नान्दीमुखि ! विद्युच्चिमत्कृतमिव सकृदीक्षितमस्ति ।।४२५।।

नान्दीमुखी,—कदा ? ।।४२६।।

मयोक्तम्—एकस्मिन्नवसरे निज-सरोवरस्नानादुत्तीर्य्य निजमधुराङ्गतश्चोनांशुकेन रहसि तया निःसार्य्यमाणे पयसि सुमनोहरणाय दैवात्तत्रैवागतेन मया मनागेवावलोकितं तत् ततः सा सभयमिव सहसैव श्यामलशाटिकाञ्चलेनावृतवती सम्प्रति मद्भाग्यवशाद्वदि कुत्रापि यौवनधनगर्व्विता सास्मद्राज्याभि-लाषिणी मच्चक्षुषोरपरोक्षीभवेत् तदा नखदशनभटसामन्तानन्तरेणापि छायाद्वितीयेन मया करकमलयुगेनैव तत्कुम्भद्वयमालोड्य तारुण्य धनान्यात्मसात्कृत्य साध्वसलब्धकम्पपुलकायां तस्यां यूथनाथायां निर्वचनी-कृतायां तदमात्यघटेयं महावैकुल्येन स्वस्वतारुण्यधन गृहीत्वा पलायितुमपि सुष्ठुस्थानमपि नाप्स्यति किम्वा तद्धनसमर्पणपूर्व्वकं शुद्धभावेन मामेव परिचरिष्यति ! तदतिक्षुद्राभिराभिः स्वमहिमोन्नाहग्लानि-कारिणा वाकोवाकेन किम ? ।।४२७।।

ततः किञ्चित् स्मित्वा नान्दीमुखीं प्रति राधा अनुच्चै प्राह,—अयि चपलब्रह्मचारिणि ! अपेहि अपेहि ।।४२८।।

विशाखा, अहो ! उड्डीय चलितुमशक्यस्य विम्बीमात्रैकभोजिनो वुभुक्षितस्य लोलुभशुकस्य मनसि दुर्लभमधुरद्राक्षाभक्षणमेतत् ।।४२९।।

मधुमङ्गलः,—प्रियवयस्य ! मदभीष्टपारितोषिकं (करे) देहि ध्रुवमधुनैव भवद्राज्याभिलाषिणीं राधां तां भवत्करगतां विधास्ये ।।४३०।।

ततोऽहं,—सायं मिष्टान्नभोजनं दास्ये ।।४३१।।

मधुमङ्गलः,—माथुरराजपार्श्वे फुत्कृत्य तदश्वारूढ़ानां शतमानीय पृष्ठदेशे चर्म्मरज्ज्वा कफोणिद्वयवन्धनपूर्व्वकं कशाभिस्तत्पतिरभिमन्युस्तथा ताड़यितव्यः यथा स एव तामानीय ददाति ।। ततः सर्व्वे स्मयन्ति स्म ।।४३२।।

ललिता,—विशाखे ! कमपि महाभागमुद्दिश्य यत् किञ्चिन्निवेदयामि तत् शृणु ।।४३३।।

विशाखा,—कथ्यताम् ।।४३४।।

ततः कदम्बभूरुहाग्रमभिवीक्ष्य ललिता,—भो वृन्दावनचरतपस्विवर ! त्वं-तावत् फलाहारी ख्यातस्तत्स्वमर्य्यादामुल्लङ्घ्यभवदयोग्यपरमदुर्ल्लभसाध्वी-हृदयङ्गममहाधने लालसामुद्वहन कथं कलुषितो भवन्नसि ? ।।४३५।।

विशाखा,—ललिते ! वुभुक्षितोऽयं तपस्वी फलमनालभ्य एतदयोग्यमपि कर्त्तुं प्रवृत्तोऽस्ति, तदुत्तमफलमस्मै समुद्दिश्यताम् । तवापि धर्म्मवृद्धिर्भविष्यति ।।४३६।।

ललिता स्मितमपवार्य्य,—विशाखे ! किमसौ मानसजाह्नवीं न जानाति ? ।।४३७।।

विशाखा,—सर्व्वत्र भ्रमणशीलोऽयमतिप्रसिद्धां तां कथं न ज्ञास्यति ।।४३८।।

ललिता,—तद्वायव्यतीरे सर्व्वतश्चला काचिदपूर्व्व पद्मास्फुटमेका वल्लरी वर्त्तते, तस्या मध्यभागे परममनोहरम् अह्रस्वं तुम्बीफलद्वन्द्वं तथाग्रे च अक्षीणमकटुबिम्बीफलयुगलमस्ति ।।४३९।।

विशाखा,—गोस्वामिन् ! त्वरितमेव तत्र गत्वा त्वद्योग्यतदनुत्तमफलोपभोगेन साध्वीधनलोभमपहाय स्वधर्म्मं पालयता भवता परमसुखिना भूयताम् ।।४४०।।

ततः सर्व्वासु हसन्तीषु मयोक्तं,—ललिते ! तपस्य-सावयाचितवृत्तिः करपात्र भक्षणे निषिद्धं तुम्बीफलं नोपभुङ्क्ते ! किन्तु अत्रैव निर्भरनिजप्रद्योतभरेण या दृश्यमानापि न दृश्यते; तस्याः कांचनवल्याः क्रोड़े मधुररसमयश्रीफलद्वन्द्वं यद्विद्योतते; तत् स्वयमेव सैवागत्यप्रणयपूर्व्वकं मधुरवचनेनैनं निमन्त्र्यास्य करे यदि परिवेशयति, तदा तदुपभोगेन सुखो भवन्नसौ तथाशिषयति यथा तत्फलोन्नतिर्महती स्यात् ।।

ततस्तन्निशम्य राधा अनुच्चैः,—नर्म्मलम्पटोऽयं धूर्त्तः, शङ्के वैदग्ध्येनात्रत्यां मदवस्थितिमवधार्य्य (अवधाय) मामेव कदर्थयितुमिमां वचनभङ्गीं वितनोति; तदितः कुञ्जान्तरमासाद्य स्वगोपनमेव नूनमुचितम् ।।४४२।।

इति मनसि भावयन्त्यां तस्यां पुनर्मयोक्तम्—प्रिय-सखि ललिते ! अयं वृन्दावनचारी महाविनोदो क्षुण्णयूथेशां त्वां पट्टराज्ञीं विधाय त्वया सहैकसिंहासने उपविश्य विशाखाप्रभृति-वृन्दावनचरीणां लास्यविलासमालोकयितुमभिलसति तदाज्ञाप्यतामेता नृत्यन्तु ।।४४३।।

ललिता सक्रोधं—नान्दीमुखि ! अस्मन्मुक्ताकेदारिकाकरपरिवर्त्तनेन किमस्य विदूषकस्य नर्म्मधनमेव दापयितुं वयमत्र व्याघोटयानीताः स्मः ? तदेतां नर्म्म दिगतिक्रियामपहाय यथासौ सुबलेन सह यथार्थं लेखमाचर्य्य केदारिकाकरं ददाति तथा विधायास्मान् द्रुतं गृहाय प्रस्थापय ।।४४४।।

नान्दीमुखी—भवतीनां कियान् करः सम्मतः स्यात् तं तावत् कथय ।।४४५।।

ललिता, श्यामाकादिक्षेत्रकरतो धान्यस्याधिकः करो लगति, ततोऽपि कार्पासस्य, ततोऽपि वास्तु-भूमेः प्रचुरतरः अपूर्व्वामूल्य मुक्ताकेदारस्य ततोऽपि परार्द्धगुणः. तदलौकिकमुक्ताकेदारिकामिमां धर्म्म-शास्त्रोक्तवृन्दावनराज्यविहितालौकिकमानदण्डेन परिमाय लेखं विधाय च सुबल एव कथयतु ।।४४६।।

नान्दीमुखी,—कियत् प्रमाणं स खलु मानदण्डः ? ।।४४७।।

ललिता;—मया कथ्यमानः स खलु केन प्रतीयताम्; तदेतत्क्षेत्रपालिकया सर्व्वशास्त्राभिज्ञया वृन्दयैव स निरूपयितव्यः ।।४४८।।

नान्दीमुखी,—भद्रं; वृन्दे ! मध्यस्थया त्वयैव मुक्ता मानदण्डः कृत्वा दीयताम् ।।४४९।।

वृन्दादेवी,—

वास्तु-धान्यादि-कङ्क्वादि-कार्पास-मौक्तिकक्षमाः ।
मीयन्तेऽङ्गुष्ठमारभ्य क्रमादङ्गुलिपञ्चकैः इति ।।

अन्यत्र च—अपूर्व्वमुक्ताक्षेत्राणामनर्घ्यकरतो बुधैः ।
अनामिकाङ्गुलिप्रायो मानदण्डः प्रकीर्त्तितः इति ।।

नान्दीमुखी,—बचनद्वयनिरुक्ताङ्गुल्योः कतरात्र प्रमाणम् ? ।।४५१।।

ललिता,—क्षुरप्रमात्रखानितभूमेरनायासेनैवानर्घ्यशस्योत्पादकत्वात् कनिष्ठैव ।।४५२।।

नान्दीमुखी,—ललिते ! यद्यपि तदेव युक्तं भवति तथापि व्रजेन्द्र-कुमार-मुखमालोक्य भगवती परिचारिकां माञ्च दृष्ट्वा अनामिकैव स्थाप्यताम् ।।४५३।।

ललिता,—वृन्दे ! त्वं तावल्लेखक्रियायां मानविषये च निपुणासि तत् सर्व्वाभिः सम्भूय गत्वा नान्दीमुखीसुबलसम्मति–पूर्व्वकं परिमीयागम्यताम् ।।४५४।।

नान्दीमुखी,—क्षुण्णयूथेश्वरि ! एकं प्रार्थयितुमिच्छामि ।।४५५।।

ललिता,—कामं कथ्यतां; योग्यञ्चेत् कर्त्तव्यम् ।।४५६।।

नान्दीमुखी,—अयं तावत् स्वदेशं विहायात्रागतो नवीन प्राघुणः तत्रापि वृन्दावनराज्ञीमाश्रितो ऽस्ति ईहापि वह्वायासेनोज्जटभूमिं कृष्ट्वा वः प्रकामधनलाभं वर्द्धयन्नस्ति; तस्मान्माने कृते भवतीनां भोगरागादिव्ययेन वहुहान्या पुनः कृषिकरणो विमनस्क इव भविष्यति, कृतेऽपि माने करं दातुमपि न शक्यते; अतो मानकरणं विहाय (परिहाय) निजभागमादाय तत्समुचितांशमपि प्रदायास्य प्रकाममुत्साहं विवर्द्धयन्तु भवत्यः ।।४५७।।

वृन्दा,—कीदृशः स भागः ।।४५८।।

नान्दीमुखी,–त्वया किं न ज्ञायते ? यदस्य परमोज्ज्वलक्षेत्रस्य समान एव द्वयोर्भागः । तथायं परग्रामादागत्य कृषिवृत्तिं कुर्व्वन्नास्ते ।।४५९।।

रङ्गणमाला अनुच्चैः—असौ परग्रामवासी भौमिको न स्यात्, साम्प्रतं एतस्मिन् (अस्मिन्) वने वासमाचर्य्य श्रीवृन्दावनेशाकृषिभाचरन्नस्ति; तदस्य षष्ठो भाग एव प्राप्तव्यो भवति कथं समानं लभताम् ।।४६०।।

विशाखा,—अयि मुग्धे ! (मुग्धाः !) भागनिर्णयचालनया किमस्माकं यतो मानपूर्व्वकं सर्व्वदा करदानं कर्त्तुमेव महाराज्ञीनामाज्ञालेखः समागतोऽस्ति तत्कथमस्माभिः स्वातन्त्र्येणैव कर्त्तुं शक्यते ।।४६१

ततो ललिता विशाखयोर्मुखमवलोक्य स्वकर्णावतंसं नान्दीमुख्यै नेत्रकूणनेन बृन्दा दर्शितवती। ततोऽल्पं स्मित्वा नान्दीमुखी किञ्चिदुपसृत्य बृन्दया सह उत्कोचदानकथनमुद्राभिनयेन तयोरोपदिङ्गितमेवाधिगम्य मदन्तिकमागता सानुच्चभाषं मोहन ! बृन्दावनराज्ञ्याः सर्व्वाध्यक्षसचिवे खलु ललिताविशाखे तदनयोः परमोत्तममुत्कोचं कमपि देहि तदैव, तवाभिमतमेत द्रुतं सम्पादयितव्यमेताभ्याम् ।।४६२।।

तदाहं सानन्दं—सखि नान्दीमुखि ! यथा अन्या न जानन्ति तथा इमे एव निर्ज्जनकुञ्जे मत्समीपमानीयेतां यथा एतदभीष्टमुत्कोचं दत्त्वा प्रीणयामि ।।४६३।।

नान्दीमुखी,—सुन्दर ! एताः खल्वनयोरभिन्ना एव तदसङ्कोचं प्रकटमत्रैव देहि ।।४६४।।

ततोऽहं स्वाभिमतार्थलाभेन विना पूर्व्वमेव कथं दातव्यं-यदि मय्यप्रतीतिः स्यात्तर्हि त्वय्येव स्थापयामि ।।४६५।।

नान्दीमुखी—सशिरश्चालनं न हि न हि ।।४६६।

ततोऽहम्—आं ब्रह्मचारिण्यास्तुविषयस्पर्शे कालुष्यमिति चेत्तदा मत्प्रतीतिपात्र्यां साध्वीप्रवरायां रङ्गणमालिकायामेव तदर्पयामि ।।४६७।।

नान्दीमुखी,—रसिकशेखर ! प्रथमं तावत् श्रावय किम्वा कियद्वा दातव्यं तेन तावतैवानयोः सन्तोषो भवेन्न वेति निर्द्धारयामः ।।४६८।।

तदा मयोक्तं,—भवतु; श्रूयतां वृन्दावन-राजस्य मम वनपालनमपहाय धनलोभेन मद्राज्ञीं राधिकामनुसृतेयं वृन्दा, तत्प्रथममुत्कोचदानेन कायस्थामेनामात्मनो वशां विदधामि ।।४६९।।

नान्दीमुखी,—भद्रमेतत् ।।४७०।।

ततोऽहं—चरमशर्व्वर्य्यां परमाकल्पनाचार्य्यया गाढानुरागविह्वलया गान्धर्व्वया येन मद्वक्षोगगनमाकल्पितं तेनैव निरवद्यार्द्धचन्द्रपदकराजेन स्वहस्तेनैनां भूषयामि। ततः कौस्तुभादप्यधिकदेदीप्यमानेनातुलतत्सहोदर मच्चुम्बकमणिना यद्गान्धर्व्वया प्रगुण परस्परप्रणयोद्धुर केलिकौतुकेन वकुलराजतले परिवर्त्तितं अपूर्व्वरससमुद्रसंलोड़नात् समुद्भूतघनीभूततत्सारांशरूपं मन्मणितोऽप्यनर्घ्यं स्वचुम्बकमहारत्नं तत्तदङ्केतदयितमपि ललितायै दास्यामि। यथास्फुटमसौ तेन स्वकर्णाभ्यर्णमलं करोति। ततः पुनःपुनर्विशाखावदनमीषदवलोक्याहं सस्मितमवदम्—अनुक्षणपरमानुरागभरेण स्वकराभ्यां सुष्ठु विरचय्य स्वकुण्डकुड्ङ्गाङ्गने एतत् प्रियसखी गान्धर्व्वा सुवैदग्ध्येन यां मह्यमर्पितवती; तयैव विचित्राङ्क मालया मद्हृदय काशविशाखां विशाखामप्यलङ्कृत्य परितोषयामि ।।४७१।।

तच्छ्रुत्वा-अलीकराजेन्द्र ! तिष्ठ तिष्ठेति व्याहरन्ती राधा मनसैव लीलाकमलेन मां ताड़यति स्म ।।४७२।।

ललिता,—पद्माधररसाहिफेनाशनप्रमत्त ! अपेहि अपेहि ।४७३।।

विशाखा,—आर्य्य विदूषकप्रवर मधुमङ्गल ! भवद्वयस्यः किं भवतोऽपि गुरुः किम्वा तस्य भवान् गुरुरित्यवगन्तुं सर्व्वाः समभिलषन्ति ।।४७४।।

ललिता,—विशाखे। श्रूयतां—कपटनाटकस्य यः कुसुमशरनामा नटस्तस्य सुप्रसिद्धो यः शुचिनामा विदूषकस्तेनाय धूर्त्तः शिष्यत्वेन कृपयानुगृहीतोऽस्ति। मधुमङ्गलस्तु भिन्नसम्प्रदायिभोजन लम्पटनाम्नो विदूषकाचार्य्यस्य प्रथीयान् शिष्यः ।।४७५।।

विशाखा,—ललिते ! तदेनं ब्राह्मणं मिष्टान्नं भोजयितुमिच्छामि ।।४७६।।

ललिता,- विशाखे ! असौ कर्म्मसूचकः परमानुचानो महाब्राह्मणः तत्कथमस्माकं ब्राह्मणेतर-गोपजातीनां राद्धमन्नमश्नातु ।।४७७।।

विशाखा,—परमोत्तमद्विजाभ्यां मल्लीभृङ्गीभ्यां स्वहस्ते नाम्नं संस्कृत्य परमादरेण यथासौ भोज्यते तथैव सम्पादनीयम् ।।४७८।।

ततस्तच्छ्रवणतः क्रोधेन कम्पमान इव मधुमङ्गलः प्राह—अये ! अवद्यवादिनि गर्व्विताभीरिके ! एदद्दुःश्रवणनर्म्मोत्कटकटुलवणदिग्धदग्धार्द्धपक्कपर्य्युसितवाग्गोधूमरोटिकाः संभोज्य मम मधुरकर्णविव सुष्ठु कटुकृतौ; किं पुनर्मुखविवर, तद्विदूषक-गोपवधूनां युष्माकं छाया–निकटभूमिमपि कदापि न स्पृशामि; किन्तु प्रातरेवास्मज्जातियाज्ञिकवधूवर्गमुपसर्पियामि ! ततस्तेन वधूवर्गेण परमादरेण मच्चरणक्षालन-पूर्व्वकं कौशेयदूकूले परिधाप्य सकर्पूरवासितोपलापानक-मधुरपरमान्न-ससैन्धवार्द्रक-लिम्पाक-नानाविध-व्यञ्जनवेष्टितसघृतसुगन्धिशाल्यन्नफानितशङ्कुलीकुण्डलिका-लड्डूक-घनावर्त्तितदुग्ध-रसाला सशर्करबद्ध-दधि-विविधवटकोत्तम-मरीचादिभिस्तथाहं भोजयिष्ये, यथा वर्त्मनि सुच्छायतरुमूलेषु स्वपन् स्वगृहमागत्य सङ्गवावधि स्वपन्नेव तिष्ठामि ।।४७९।।

ततस्तच्छ्रवणेन हासकोलाहले वृत्ते,—मयोक्तं,—नान्दीमुखि ! क्षुद्रगामिनैरेव स्वस्वग्राम-सीमार्थं मध्यस्तमालम्व्य न्यायः क्रियते; राजानस्तु राज्य स्वदोर्द्दण्डवलेनैव लभन्ते; तदेनद्राज्यहेतोर्न्यायेन किं मया सहैताः समरमाचरन्तु; तत्र यस्य जयोभवेत्तस्यैव राज्यं स्फुटं सेत्स्यति इत्युक्त्वा तदर्थमिव साटोपं किञ्चिदुपसर्पति मयि तासु च इतस्ततः सभयसहेलनमपसर्पन्तीषु ।।४८०।।

नान्दीमुखी,—वीर ! सम्प्रत्यसमत्समक्षमेतासामुज्ज्वलकुलविलसितवल्लभवधूनात् धर्षणमेतद्-भवतः परमसाम्प्रतमेव इत्यवधारयन्नारादेव तिष्ठेति मामाभाष्य ललितां प्रत्युवाच–ललिते ! साम्प्रतमस्य वनवीरस्य निर्ज्जनवनेऽस्मिन् प्रगल्भतामहती, भवतीनान्तु शिरीषकुसुममृदुलानि शरीराणि, तद्देशकाल-बलादिकं वीक्ष्य विवादं त्यज ।।४८१।।

तत्श्रुत्वा चन्द्रमुखी,—भो मुग्धा ! नान्दीमुखी सत्यं कथयति; तच्छृणुध्वम् वयमवलाः कोम-लाङ्गयः, अयन्तु निर्ज्जनवनपुरुषोऽतिचपलः । यस्याः दर्शनादेवायं साध्वसेन विह्वलो भवति; साप्यस्म-च्चक्रवर्त्तिनी नान्निकवर्त्तिनी सुदुर्मुखाभिमन्युप्रभृतिवाहिनीपतयोऽपि सम्प्रत्येतद्वृत्तानभिज्ञाः दूरे वर्त्तन्ते । तद्भूयानकदेशेऽस्मिन्नात्ममध्ये द्वन्द्वे पतिते सर्व्वतः सर्व्वे लुण्टाकदुष्टगमकाः समुत्थाय समस्तमौक्तिकानि विलुण्ठ्य नेष्यन्ति; तदास्माकमेव महती हानिर्भविष्यति । अस्य तु षष्ठांश एव ततोऽलहानिः, तत् यदि सर्व्वाभ्यो रोचते तर्हि वयं सौम्या इव भवत्यः सम्प्रति राज्य वार्तामपहाय समुचितादप्यधिकमूल्येन मौक्तिकान्यादय अस्य चिल्लातकस्य स्पर्शमात्रेणैव जनिष्यमाण- दुष्कीर्त्तिभरादात्मानमपि संरक्ष्य स्वगृहमासादयामः । पश्चादेतद्वृत्तान्तश्रवणादेव वृन्दावन महाराज्ञी तन्मुक्ताप्रदानेन द्रुतमेव गुरुप्रभृतीन्सन्तोष्य महारागेणातिवेगेन स्वयमत्रागत्य दूरत एव कटकाटोपमवष्टभ्य स्वयं समरमकुर्व्वाणा चञ्चलनयनाञ्चलप्रेरणया नीततीक्ष्णधारविषमशरास्त्रसम्वर्द्धितभ्रूकुटिधनुर्द्धर-सुमुखकञ्जभीषणाभिमन्युप्रभृतिवाहिनीपतिद्वारैव तथा विग्रहभङ्गीमाटोपयिष्यति; यथायं वनमध्य एव वीरम्मन्यस्त्वरितमेव साध्वसेन कम्पमानः सन् वृंहितहाहेतिकमलरागमणिप्रकरखचितचारुचाटुचिन्तारत्न निकररचितमञ्जुलमालां निजकण्ठादुत्तार्य्योपटौकितीकृत्य तच्चरणपरिसर शरणमुपगच्छन्नेतत्समुदितगद्-गदगदितखरद्युति (द्युति)-लवेन तत्कालद्रुतचित्तनवनीतया तया कारुण्येन प्रसादीकृतेनैव तद्याव-

कारुणमणिद्रवेणाभिनवशिखण्डावतंसं शोनमिव रचयन्नेतद्राज्यं तदुत्पन्ननिखिलमौक्तिकादिकमपि समर्प्य स्वयमपि तामेवानुचरिष्यति ।।४८२।।

एतच्छ्रवणेन सानन्दोल्लाससस्मितं राधाकुञ्ज तिर्य्यगवलोकयति मयि ।।४८३।।

नान्दीमुखी स्मित्वा,—गोकुलप्रवीर ! त्वदनुरूपविषमशरसमरप्रवीणया वृन्दावनचक्रवर्त्तिन्या सममेव भवत्समरपरिपाटी पर शोभते ! एताः पुनरतीव कोमलास्तदभ्यर्णमन्तरेण त्वया सह तादृशविग्रह विलासं कथमाचरन्तु तदलीकविरोध परित्यज्य साम्प्रतमन्यासामपि मौक्तिकमूल्य निर्णीयताम्, पश्चाद्भग-वत्यैव राज्य-न्यायं विचारयिष्यति ।।४८४।।

ततस्तासां साकूतवचनमवधार्य्यैव गर्व्वितगोप्यो"जिता जिता" इति वदन् स्वमुखे वाममुष्टिं भेरीकृत्य वादयन् मधुमङ्गलः सानन्दं ताण्डवमातनोति ।।४८५।।

वृन्दा,—भो नटवर मधुमङ्गल ! अस्मच्चक्रवर्त्तिन्यामत्राया तायामपि तदाह्लादनार्थमात्मप्रिय-सखस्य हाहेतिढक्कावाद्ये न शिक्षावैशिष्ट्येन षट्पदो भवन्नुड्डीयोड्डीय भ्रमरिकामाददानः स्फुटमितो रङ्गादस्मादधिकमुद्दण्डं ताण्डवयन्ननेन द्विपदगोपेन सार्द्धं सुगहनं नन्दीश्वरगोष्ठमास्यसि तदानीं तद-वलोकनाद् वयमपि चक्षुःसाफल्यमुत्स्फारयिष्यामः ।।४८६।।

ततोऽहं विहस्य,—नान्दीमुखि ! सा इयं चन्द्रमुखी सामञ्जस्यरता ललितादिवद्द्वन्द्वपातिनो न भवति; अतो विना मूल्येनाप्यस्यै सन्तुष्टेन मया मौक्तिकानि देयानि किन्त्वियं मन्त्रविदां मूर्द्धन्या ततः श्वः परश्वो वा परमशुचिः सती रह स्थानमागत्य स्नानादिना परमशुचये कान्तदर्पाभिधाचार्य्यनिरुक्तमन्त्र-पटल मह्यमुपदिशतु; यथेह वृन्दावने गोपेनैव मया सुराधिकाश्रीर्द्रुतमेव लभ्यते ।।४८७।।

ततश्चन्द्रमुखी कुटिलं मामवलोकयन्त्याह,—अहो ! मामपि हितोपदेशिनीं कृतानभिज्ञस्त्वं कदर्थयितुमुद्यतोऽसि ? नाह तव मन्त्राभिज्ञा तन्मन्त्रचतुरा काञ्चनलतैवाचार्य्या क्रियतां भवता । ४८८।।

ततोऽहम्—काञ्चनलते ! भवद्वैदग्ध्यावलोकनेन मन्मनोभ्रमरस्त्वयि प्रकाममनुरज्यन्नतीवोत्-कण्ठते तत्परमसुन्दरताराधिका भवदुपकण्ठवर्त्तिनी मञ्जुलतरैकावलिरेका सस्मितमालोकयन्तीनामासां समक्षमेव परमोत्कण्ठिते मदुरसि स्नेहभरेण स्वयमेव त्वया यद्याधीयते तर्हि मूल्यमन्तरेणापि भवदभीष्ट-मौक्तिकान्यवश्य वितरिष्यामि । अपि च मत्परिष्वङ्गललितरत्नहारत्रयेण भवत्कण्ठमध्यनाभिप्रदेशानलं प्रसाधयिष्यामीति तामनुसरति मयि सा मां तिर्य्यगवलोकयन्ती हुंकुर्व्वती किञ्चिदपससार राधा च सस्मितं कुर्व्वती आत्मनि शङ्कामाधाय सम्भ्रममवाप ।।४८९।।

ततो विशाखा तर्ज्जन्यङ्गुष्ठछोटिकया नान्दीमुखीम् अभिमुखीकृत्य नेत्रकूणनेन रङ्गनमालिका-तुलसीके दर्शितवती ।।४९०।।

नान्दीमुखी विहस्य,—मोहन ! इमे राधिका-प्रियचरणतत्परे तदतीव प्रिये रङ्गणमालिका-तुलसीके तां विनाक्षणमपि कुत्राप्यवस्थातुं न शक्नुवतस्तदनयो मुंक्तामूल्यं निर्णीय तूर्णमेते तदन्तिके प्रस्थापय ।।४९१।।

ततोऽहं सान्तरानन्दं विहस्य,—नान्दीमुखि ! तुलस्या अदृष्टचरचञ्चलनयनाञ्चलावलोक-नलवमरिचक्षोदमिश्रितसुस्मितनवघनसारलवपरिमलिताश्रुतचरनवनवभाषितमकरन्दपायनेन विह्वलीकृत-

मिव मां स्नेहविश्वला रङ्गणमालिका मदुरसि निजकुचकुट्नलाभ्यामवष्टभ्य मज्जीवातुरूपस्वाधरपीयूषपायनेन द्रुतं सन्धूक्षयत्विति ।।४६२।।

ततः सर्व्वासु हसन्तीष्ववनतमुख्यौ ते विशाखा-पृष्ठलग्ने बभूवतुः ।।४६३।।

नान्दीमुखी,—मुक्ताफलवाणिज्यविलासिन् ! यूथेशयोरपि राधाविशाखयोर्मौक्तिकमूल्यनिर्णये यन्मनो न धत्से; तत्र किं कारणम् ? ।।४६४।।

ततोऽहं,– सा यूथेशा मत्सविधमागत्य चेत् स्वयं निर्णयति; तदैव निर्णयनीयम्; तदगोचरे केन निर्णीयताम् ।।४६५।।

नान्दीमुखी,– वीर ! मूल्यं तावत् प्रकाशय; यथा तच्छ्रवणेन तन्मूल्यद्रव्यानां समाहृतिस्तया क्रियते ।।४६६।।

मयोक्तं—राधाविशाखयोरद्वैताद्द्वयोरपि मदतीव प्रिययोर्यत्किञ्चिन्मूल्यं कथ्यते तच्छ्रूयताम्-मत्पृष्ठमञ्जुलतरतमालसम्वलितमसृणतरदक्षिणसव्यभुजस्वर्णलतयोर्गान्धर्व्विकाविशाखयोः—ललितनतांसनिहितविलासोल्लसितपरिमलितसुप्रचण्डदोर्द्दण्डयुगलस्य सुरभिकुसुमकुलपरिवासितवनविहारमाधुरीमनुसृतस्य परस्परमविषमनिरुपमप्रेमकलापावलोकनकौतुकेन मम गण्डरङ्गस्थले तन्मधुरवदनसुधाकरप्रवीणनटप्रवरौ युगपत् पृथग्वा मृदुमृदु ताण्डवं समुल्लासयन्तौ मदानन्दकन्दं कन्दलयताम् । किञ्च,–राधाकुण्डतटीकुञ्जभवनाङ्गने भ्रमद्भ्रमरझङ्कृतिपरिमिलितसुरभिकुसुमवृन्दस्यन्दमानमकरन्दमञ्जुल वकुलतलामलकनक वेदिकायां मञ्जुलमल्लिकुसुमदलकुलकल्पित प्रशस्तसुकुमारतल्पोपरि स्वर्णयूथिकाकुसुमकृतचन्द्रोपधाने वामकफोणिमवष्टभ्य सङ्कुचितजानुद्वयं सुखोपविष्टस्य मन्मनोमधुपाश्रयवासन्त्या विशाखया स्वर्णसम्पुटस्थितकुङ्कुमरसं किञ्चित् श्लथमिवालोकयन्त्या स्वसख्यप्रणयमधून्मादेन निस्तलनिजवक्षोजयुगलादाकृष्टदरकठिनीभूतसुरभिकुङ्कुमपङ्कमिलनादीयद्घनीकृत्य तेन मृदुमृदु रूषिते मम पुलकितवक्षसि मत्प्राणपञ्जरशारिका राधिका कदाचित् स्वस्य कदाचित् विशाखायाः कुचसम्पुटविकृष्टनवमृगमदद्रवेण सरोमाञ्च चम्पककलिकाग्रेण वल्लरिमकराङ्कुरपत्राणि प्रगुणाकल्पकल्पनया कल्पयन्ती निर्भरपरस्परासमानोर्द्धसौहार्द्दसौरभ्यभरेण चमत्कृतिवलितमद्देहमनोवाक्यानि परं परिवासयत्विति । अतो राधाविशाखे सस्नेहं युगपत् सपुलकपरस्परचातुरक्षिकवीक्षणेन लज्जिते बभूवतुः ।।४६७।।

विशाखा,– ललिते ! लम्पटतानाट्ये तल्लम्पटनटाभ्याम् असम्भवमनोरथनामनाटकस्य विधीयमानाभिनयवीक्षणाय निर्ज्जनवनरङ्गेऽस्मिन् यथार्थनाम्नी नान्दीमुखीयं मौक्तिकप्रदाननिमित्तकवितथावाक् प्रस्तुत्यास्मान् सभासदः कर्त्तुं संरक्ष्य प्रकारेण विडम्बयितुमुद्युक्तास्ति; तदत्र रङ्गे यस्या रङ्गो विद्यते सा किल कुलवती साध्वी स्फुटमस्य चतुःषष्टिकलाविदग्धस्य नटस्य लास्यमत्रोपविश्य पश्यन्ती भद्रेण कुलद्वयमुत्कीर्त्तयतु अहन्तु गृहं गच्छामि ।।४६८।।

ततो नान्दीमुखी,– सखि विशाखे ! अस्य नर्म्मकर्म्मठशीलस्य दुर्ल्लोलस्य वचनविलासमात्रेणैव कथं निर्विद्य खिद्यसे ? क्षणं तिष्ठ, निःसन्देहमधुनैव मुक्ता पादयिष्यन्त्यस्मि" इति तामाभाष्य निवर्त्त्य च मत्सविधमासाद्य मां प्राह—दुर्ल्लोल गोपयुवराज ! भवद्विसदृशनर्म्मालापश्रवणेन विशाखादयो मदुपरि शश्वत् खिद्यन्ते; तत्कृपया सम्प्रति नर्म्मकर्म्मपञ्जिका (प्रपञ्जिका) प्रपञ्चं संरक्ष्यक्रयविक्रयपञ्जिकामुद्घाट्य द्रविणादिमूल्येन मुक्ताः प्रदाय ध्रुवममूर्भवत्स्निग्धगान्धर्व्वाचमूस्त्वरितमनुरञ्जय ।।४६९।।

ततोऽहं —नान्दीमुखि ! यद्यपि राधा मयि काठिन्यमेव सन्ततमातनोति तथापि सहजस्निग्धस्य

मम मनस्तु तन्नाममात्रश्रवणादेव नाङ्गमेव समस्तं द्रुतमनुसन्धत्ते तदासु तत्सहचरीषु काठिन्येन किं ? ततो दिनद्वयाभ्यन्तरे यावन्निर्णीतमूल्यमुपस्थापयन्ति; तावदेव तत्सुवर्णालङ्कारादिरौप्यादिरङ्गादिरसादिप्रिय-गवादिकं धनं मयि स्थाप्यतया मयि संरक्ष्य एतदनुरूपकियन्मौक्तिकानि गृह्णन्तु" इत्याभाष्य पुनः क्षणं मौनेन विमृश्याह,—नान्दीमुखि ! सन्ततदयितगोचारणलीला वने वने भ्रमता मयैतत् सर्व्वं कुत्र रक्षितव्यम्, प्रतीतिपात्रमपि कोऽपि न दृश्यते, रक्षिते च पररमणी-द्रव्ये लज्जापकीर्त्तितो महद्भयं लभ्यते, तत् सत्यमुच्यते--प्रस्तुतमूल्य विना एतत् किमपि न सम्पद्यते एव ।५००॥

नान्दीमुखी,— मोहन ! एतदपूर्व्वमूल्यं कुत्रापि न दृष्टं, न वा श्रुतमस्ति ॥५०१॥

ततोऽहं,—विदग्धे नान्दीमुखि ! ईदृशमेतद्भूमिजातापूर्व्वमौक्तिकं त्वया ब्रह्माण्डे कुत्रापि दृष्टचरं श्रुतचरं वा अस्ति ? तदपूर्व्वपदार्थस्य मूल्यमप्यपूर्व्वं, तत्रापि न वयं मुक्ताव्यापारिणः किन्तु केवलं भगवतीपादानामादेशेन भवदाग्रहेण चात्र प्रवर्त्तिताः स्म । तस्माच्चेदिच्छा स्यात्तर्हि मिथो निर्द्धारितमूल्य प्रस्तुतं दत्त्वा परमचतुरा एता मौक्तिकानि गृह्णन्तु नो चेद् गृहं गच्छन्तु; पश्य मध्याह्नप्रायो दिवसो जातस्तद्वयमपि गोधनसम्भालनाय गोवर्द्धनं गच्छामः ॥५०२॥

ततो नान्दीमुखी सनिर्वेदमिव ललितान्तिकमुपेत्य अनुच्चैः—सखि ललिते ! सखि विशाखे ! भोः सर्व्वाः प्रियसख्यः ! निजाभीष्टैतन्मूल्यलब्धिं विना हठी नागरोऽयं मुक्ता न दास्यत्येवेति मयोपरोधत्वेन निर्द्धारितमस्ति । मौक्तिकान्यवश्यमेव ग्राह्याणि अतो मयैतन्मन्त्र्यते यदस्मिन्नेव मूल्ये केनापि व्याजेन किञ्चिन्मात्रसम्मति प्रदानेनामुं सन्तोष्य मौक्तिकान्यादाय गृहे गते को नाम कस्य मूल्यं गृह्णातु को वा ददातु ॥५०३॥

ततः अद्भुततपस्विनि ! तिष्ठ तिष्ठेति नान्दीमुखीमाक्षिप्य मां प्रति ललिता स्मित्वा—धीर ललितयुवराज ! अपूर्व्वा वृन्दावन-केदारिका, अपूर्व्वमेतन्मौक्तिकवीजम्, अपूर्व्वाणि मौक्तिकानि, अपूर्व्वोऽयं मौक्तिकविक्रयी वणिक्, अपूर्व्वमेतन्मूल्यं, न वयमपूर्व्वा भवामस्तत् कथमस्माकमेतदपूर्व्वमूल्यप्रदाने सामर्थ्यं भवतु किन्तु नान्दीमुखीयं तावदस्मास्वतीव स्निग्धा अस्मदभिन्ना च त्वञ्च तावदपूर्व्वब्रह्मचारी तस्मादपूर्व्वब्रह्मचारिणीयम् अपूर्व्वतपस्याबलात् भवदभिमतापूर्व्वमूल्यप्रदानेन भवन्तं सन्तोष्य मौक्तिकान्यादास्यते वयन्तु गृहाय चलिताः स्म इतिसप्रणयेर्ष्यमिव विविधसात्त्विकोल्लासविलसिताः किञ्चित्तिर्य्यग ग्रीवाभिरामं स्मितशवलितनयनापाङ्गेन क्षणे क्षणे मामवलोकयन्त्यस्तथाविधां विविधसात्त्विकभावोल्लासविलसितां राधां पुरस्कृत्य राधाकुण्डतीरोपान्तमञ्जुलवकुलकुञ्जमन्दिरं ताः सर्व्वा जग्मुः ॥५०४॥

ततः परमानन्दसन्दोहेन मया विचित्य विचित्य परमोत्तममौक्तिकसञ्चयैः स्वहस्तेन विचित्र-शिल्पकल्पनया राधाङ्गप्रत्यङ्गाभरणानि विरचय्य सुवर्णसम्पुटे निधाय तन्नाममुद्रया चिह्नितीकृत्य ललिता-विशाखादिसखीमण्डलीनाञ्च भूषणानि तथैव निर्म्माय पृथक् पृथक् सम्पुटे न्यस्य तत्तन्नाममुद्रया चिह्नितीकृत्य तथैवाग्रथितान्यत्तप्युममौक्तिकानि बहूनि च नान्दीमुख्या सह मधुमङ्गल सुबल-तत्कालागतोज्ज्वल-वसन्त-कोकिलादिहस्तेन राधाकुण्डनिकुञ्जमन्दिरे प्रहितानि ॥५०५॥

राधया स्मित (ललित) ललिताविशाखादिसखीभिः समं स्मितशवलितहर्षेणादाय सादरमधुर-प्रचुरतरपक्वान्नताम्बूलवीटिकाभिर्मधुमङ्गलं प्रणयरूपगन्धचन्दनैर्व्वरताम्बूलैश्च सुबलादिकञ्च सन्तोष्य तद्धस्तेन स्वहस्तसम्पादितसुरभिसुकुमारारुणकुसुमविचित्रितकाञ्चनयूथिकामाल्यकर्पूरवासितताम्बूलो-

पटोकनेन निर्भरमानन्दितोऽहं प्रणयाधिक्येन तन्माल्यभूषितस्तत्ताम्बूलमुपयुञ्जानः सखिभिः सह गोसम्भालनाय गोवर्द्धनमागतः ।।५०६।।

ततश्च स्वर्णसम्पुटं समुद्घाट्य ललिता तदलङ्करणेन सानन्दमानन्दितां राधां प्रसाधयामास ५०७

तदनु ललिताविशाखादयः सख्योऽपि परस्परं तत्तत्सम्पुटाभरणनात्मानं भूषयामासुः । ततस्ताः स्वस्वगृहे गत्वा तत्प्रचुरतराद्भुतमौक्तिकप्रदानेन स्वस्वपतिं स्वस्वगुरूंश्च परं सन्तोष्य पुनर्गान्धर्व्वासरस्तीरगान्धर्व्वास्थानीमवाप्य मिथो मन्मधुरमधुरनर्म्मवार्त्ताविनोदेन सुखं विजह्रुः ।।५०८।।

सत्या,—गोकुलविलासारामत्तकोकिल ! ततस्ततः ? ।।५०९।।

कृष्णः,—प्रिये ! श्रुतं श्रोतव्यं; तदलं तदतिवार्त्तयेति ब्रुवन्नेव तन्मधुर (मधुर) रहस्यकेलिवृत्तान्तोद्घाटनवैकुल्यातिशयेनाधैर्य्यम्—

मत्कण्ठस्य सुवर्णबन्धुरमणिव्रातोल्लसन्मालिका
मच्छब्दग्रहयोरलं परिलसत्स्वर्णावतंसद्वयी ।
मत्कायस्य सुगन्धिकुङ्कुमलसच्चर्च्चा परा सा कदा
हाहा यास्यति दृक्पथं मम पुन पुण्यैरगण्यैरिह ।।१।।

इति क्षणं मौनमालम्ब्य पुनः सौत्सुक्यम्—

मद्वक्षःस्थलचम्पकावलिरियं मन्नेत्रपद्मद्वयी-
सौधासिक्तिरियं मदेकविलसत्सर्व्वाङ्गलक्ष्मीरियम् ।
मत्प्राणोरुविहङ्गवल्लरिरियं मत्कामितश्रीरियं
मज्जीवातुरियं मया पुनरहो ! हाहा कदा लप्स्यते ।।२।।

इति विलपन् साश्रुधारस्तल्लीलास्मरणविह्वलं भूमौ निपत्य सशब्दं रुदन्तं मधुमङ्गलमालिङ्ग्य तदनु—प्राणवल्लभे ! त्वमेव जीवातुरूपा राधासीति सकम्पं सगद्गदं लपन् तां सत्यां परिष्वज्य मुहुर्मुहुर्दीर्घमुष्णञ्च उच्चैर्निश्वसन्नासीत् ।।५१०।।

सत्यभामा च—सम्भ्रमेण साश्रुरोमांचा निजशाटिकांचलेन तं वीजयन्ती तूष्णीमासीत् ।।५११।

इत्यखिलवृत्तान्तं पौर्णमासीशिष्या समंजसा-मुखादाकर्ण्य सरोमांचं सकौतुकं सव्यथं लक्ष्मणा प्राह—सखि समंजसे ! ततस्ततः ? ।।५१२।।

समंजसा—ततः प्रथममतिसम्भ्रमेण क्षणं तूष्णीं स्थित्वा तदनु । प्राणनाथ ! निखिलव्रजजनैकजीवन । जय जय धैर्य्यमवलम्बस्व धैर्य्यमवलम्बस्व समाश्वसिहीति समाश्वसिहीति वैयग्र्यविशङ्कटध्वनि भाषमाणया मुहुर्मुहुर्वीजनेन मृदुमृदुमधुराङ्गमार्ज्जनेन गोकुलगमनार्थप्रार्थनादिभिरेव निज-जीवितनाथं शनैः शनैः सन्धुक्षितीकृत्य निजानन्तसुखसुधासिन्धून् निजानन्तप्राणपरम्परामपि तृणवद्ध्रुवमनपेक्ष्य सदा चिकीर्षितनिजपरमाभीष्टतत्सुखाभासलवलेशया तच्चरणपङ्कजैकगत्या सत्यया तदानीमेव सखीद्वारा तत्रानीत श्रीमदुद्धवमन्त्रिराजसन्निरूपिते समागामिनि परश्वोऽहनि मधुरदध्यन्नादिभोजनानन्तरं गुरुदिनसितदशमीधनिष्ठाभशुभयोगसम्भावितविविधगुणाभिराजिताभिजिन्नामसन्मूहूर्त्तवरे सर्व्वतोनैर्व्विघ्न्येन झटिति समस्तप्रशस्तशस्तोत्पादनपुरः सरगोकुलपुरप्रवेशसम्पादयित्रीं परममङ्गलकुलोज्ज्वलितयात्रां

विधाय सविनयनिर्व्वन्धेन पूज्यचरण श्रीमदग्रजमहानुभावं गोकुलगमनार्थमत्युत्-कण्ठितमपि द्वारकापुराभिभावनार्थमभिसंरक्ष्य तत्र भवती श्रीभगवतीपादपद्मान् पुरो निधाय सार्द्धं मुद्धवरोहिणीश्वरीभ्यां सकलमङ्गलालिङ्गितो मधुमङ्गलालङ्कृतिः श्रीश्रीमद्व्रजनवयुवराजस्तत्क्षणादेव द्रुतमितश्चलित्वा श्रीमता नान्दीघोषरथेन श्रीगोकुलोपशल्यमासाद्य प्रमदसम्भृतचिराभिलषितनिजाभीरशृङ्गारनिकरेणातिभ्राजमानः सन् श्रीमति निजव्रजपुरे शुभप्रवेशमवश्यं करिष्यतीति सुदृढं सर्व्वसम्मतया निर्णीतमस्तीति तत्परिवेशितमधुरसमाचारसुधासारमानन्दसारसंप्लुता श्रवणचषकैः समाचम्य परमसौभाग्यवतीशिरोमणिमञ्जरीसत्यभामासमकक्षपट्टमहिषी सकलसल्लक्षणगुण-लक्षोज्ज्वलितलक्ष्मणा सौत्सुक्यं संललाप—सखि समञ्जसे ! एतन्मधुररसवार्त्ताश्रवणादतीव उत्कण्ठिताहं श्रीयादवेन्द्रेन सार्द्धं गोष्ठेन्द्रगोष्ठमवाप्य राधा-सख्यपुष्पसौरभ्येनात्मानं वासयितुमभिलषामि ।।५१३।।

समञ्जसा,—सखि ! तथैव सर्व्वथा भवतु भवत्या इति ।।५१४।।

आददानस्तृणं दन्तैरिदं याचे पुनः पुनः । श्रीमद्रूपपदाम्भोजधूलिः स्यां जन्मजन्मनि ।।१।।

यस्याज्ञासुधया प्रबोधितधिया मुक्ताचरित्रैर्मया गुच्छः पुष्पभरैर्व्यधायि इह श्रीरूपसंशिक्षया ।
जीवाख्यस्य मदेकजीविततनोस्तस्यैव दृक्षट्पदी
घ्राणैस्तं परिभूषित नु तनुतां तत्केलिशीध्रत्कधीः ।।२।।

मुक्ताचरित्रपुष्पौघैर्गुच्छं गुम्फितमद्भुतम् ।
वतंसयतु मत्स्नेहात् श्रीमद्रूपगणो रहः ।।२।।

यस्य सङ्गवलतोऽद्भुता मया मौक्तिकोत्तमकथा प्रचारिता ।
तस्य कृष्णकविभूपतेर्व्रजे सङ्गतिर्भवतु मे भवे भवे ।।४।।

इति श्रीपाद रघुनाथदास गोस्वामि विरचितं श्रीश्रीमुक्ताचरित्रं सम्पूर्णम् ।।

▫ अन्य उपलब्ध भक्ति साहित्य ▫

श्रीगोपालचम्पू	१६०/–
श्रीविदग्धमाधव नाटक	१५/–
श्रीललितमाधव नाटक	२०/–
श्रीमद्‌भगवद्‌गीता	५०/–
श्रीतत्वसन्दर्भ	२५/–
श्रीभक्तिसन्दर्भ	६०/–
श्रीभगवत्‌सन्दर्भ	८०/–
श्रीकृष्णसन्दर्भ	यन्त्रस्थ
श्रीहंसदूत	१०/–
श्रीउद्धव सन्देश	१०/–
श्रीब्रह्म संहिता	१५/–
श्रीब्रज दर्शन	२५/–
श्रीराधारस-सुधानिधि	८०/–
श्रीउज्जवलनीलमणि	१००/–
श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्ण स्तव	१००/–
श्रीमद्भागवत (१-२ स्कन्ध)	१५०/–
श्रीप्रेमभक्ति चन्द्रिका-नरोत्तम चरित्र	१०/–
श्रीनवधाभक्ति	६/–
श्रीभगवत् करपद युगलचिह्न	४/–
श्रीराधाकृष्ण कृपाकटाक्ष स्तोत्र	३/–
श्रीभक्तभाव संग्रह	२५/–
श्रीदम्पतिविलास	१५/–
महाभावस्वरूपा श्रीराधा नाम	१०/–
श्रीकिशोरी करुणा कटाक्ष	१५/–
श्रीकृष्ण कर्णामृत	८/–
श्रीकृष्ण भक्ति	१५/–
परब्रह्म स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण	४/–
श्रीवृन्दावन महिमामृतम्	३५/–
श्रीरासलीला रहस्य	५/–
श्रीचैतन्यचरितामृत (सम्पूर्ण)	२५०/
श्रीचैतन्य भागवत	११०/–
श्रीनिताईचाँद	१०/–
महाप्रभु श्रीगौरांग	६०/–
चैतन्य प्रेमसागर (सात भाग)	६०/–
गौर करुणा वैशिष्ट्य	५/–
गम्भीरा में श्रीविष्णुप्रिया	६०/–
श्रीशिक्षाष्टक	४/–
श्रीगौरांगलीला	२/–
श्रीचैतन्य भक्तगाथा	५०/–
श्रीगौड़ीयगोस्वामिवृन्द	८/–
श्रीमद्वैष्णव सिद्धान्त रत्न संग्रह	१५/–
श्रीमानसी सेवा	३०/–
श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु	१००/–
श्रीभक्तिरसामृत सिन्धुबिन्दु	१०/–
जीवतत्व	५/–
महत्कृपातत्व	१/–
माधुर्यकादम्बिनी	४०/–
साध्य साधन निर्णय	२५/–
बृहद्भागवतामृत	५०/–
श्रीविलाप कुसुमांजलि	१५/–
Prema Bhakti	५/–
आपकी दिनचर्या	२/–
श्रीनरोत्तम प्रार्थना	४/–
नित्यपाठ गुटका	५/–
श्रीमुक्ता चरित्र	२५/–
श्रीराधा सहस्रनाम	यन्त्रस्थ

श्रीहरिनाम संकीर्तन मण्डल ★ श्रीधाम वृन्दावन

मुद्रण : श्रीहरिनामप्रेस ★ वृन्दावन ८/९५